ॐ

श्रीमाणिक्यनन्द्याचार्यविरचितं

परीक्षामुखम् ।

श्रीअनन्तवीर्याचार्यविरचित--

प्रमेयरत्नमालासहितम् ।

सटिप्पणि च ।

श्रीमता पं० फूलचन्द्रशास्त्रिणा काशीहिन्दू
विश्वविद्यालयजैनधर्माध्यापकेन
संशोध्य संपादितम् ।

तथा

श्री वालच[illegible]

प्रकाशितम्

वीरसंवत्सरम्
२४५४ १९२८

मुद्रक——

जयकृष्णदास गुप्ता—

विद्याविलास प्रेस, गोपालमंदिर, के उत्तर फाटक

बनारस सिटी।

समर्पणम्

श्रीमत्पूज्यपादानां विद्वद्व-

र्यन्यायाचार्यपण्डित

गणेशप्रसादवर्णि-

महोदयानां

करकमलेषु

सादरसमर्पितोऽयं ग्रन्थः ।

प्रस्तावना।

यद्यपि प्रमेयरत्नमाला सहित परिक्षामुख कई दफे मुद्रित हो चुकी है। परन्तु पाठकों के समक्ष यह नया रूप ही है जो उनके मन को मुग्ध करने वाला होगा। मूलग्रन्थ रहने से प्रायः कर पठन पाठन शैली में बहुत कठनाई पडती थी। साथ ही मूल ग्रन्थ का जो भाव खुलना चाहिये था वह नहीं खुल सकता था, इसलिये कठिन स्थलों के सरल करने को टिप्पणी सहित यह ग्रन्थ प्रकाशित किया गया है। इस ग्रन्थ के प्रकाशित होने में पूरा श्रेय श्रीयुक्त भाई जगदीश चन्द्र जी जैन वसेड़ा (मुजफ्फर नगर) को है जिनकी असीम कृपा से टिप्पणी सहित यह ग्रन्थ पठन पाठन शैली में उत्तम रीति से आसका है। यद्यपि प्रमेयरत्नमाला की टिप्पणी बहुत स्थलों पर पाई जाती थी, परन्तु अभी तक किसी महाशय ने न तो स्वयं प्रकाशित की है और न दूसरों से ही प्रकाशित करवाई है। परन्तु आप को इस बात से अरुचि है। आप का कहना है कि जब तक जैनसिद्धान्त को प्रतिपादन करने वाले मौलिक ग्रन्थ संसार के सामने न रक्खे जायेंगे तब तक जैन धर्म का संसार में प्रसार होना मुश्किल है, इसी उद्देश्य को सामने रख कर आपने प्रमेयरत्न माला की टिप्पणी को मुझे देकर मुद्रित करवाई, इसलिये

आप अनेक हार्दिक धन्यवाद के पात्र है। तथा श्री युक्त पं० फूलचन्द्र जी शास्त्री जैन धर्म अध्यापक हिन्दू विश्व-विद्यालय काशी ने कठिन परिश्रम से इस ग्रन्थ को संशोधित कर संपादित किया इसलिये वे भी अनेक धन्यवाद के पात्र हैं। विशेष कर श्रीमत्पूज्यवर गुरुवर्य्य न्यायाचार्य पं० गणेश प्रसाद जी वर्णी महोदय की असीम कृपा से ही मैं टिप्पणी सहित इस ग्रन्थ का आप लोगों के समक्ष रख सका हूं। आप ही की कृपा से मूल ग्रन्थ में जहां पर जो पाठ छूट गये थे वे जोड़ दिये गये हैं।

अन्त में पाठकों से मेरा नम्र निवेदन है कि मैं इस ग्रन्थ को बड़ी कठिनता से आप लोगों के समक्ष रख सका हूं। जहां तक मुझसे बना है ग्रन्थको सब तरह से सुन्दर बनाया है। फिर भी कहीं पर किसी प्रकार की त्रुटियां रह गई हों तो विद्वानों से मेरी यह नम्र प्रार्थना है कि वे मुझे उसके सूचित करने की कृपा करें ताकि आगे के संस्करण में वे त्रुटियां अलग की जासकें।

प्रकाशक —

सूत्रकार श्री आचार्य माणिक्यनन्दि का

परिचय

प्राचीन समय में एक प्रकार की पद्धती थी कि जो विद्वान् किसी भी ग्रन्थ को लिखते थे उस में वे अपना कुछ भी परिचय नही देते थे। बल्कि कई तो ऐसे ग्रन्थ हैं जिनके कर्ता का अभी तक पता नहीं चलता है कि इस के कर्ता कौन है। ऐसी हालत में किसी भी ग्रन्थ कर्ता के सम्बन्ध में समूचा इतिहास तैयार करना बहुत ही कठिन समस्या है। प्रस्तुत सूत्रकार श्री माणिक्यनन्दिस्वामी उन में से एक है जिनके सम्बन्ध में अभी बहुत कुछ खोज बाकी है। फिर भी अभी तक जो कुछ भी सामग्री प्रस्तुत सूत्रकार या अन्य जैनाचार्यों के सम्बन्ध में उपलब्ध हुई है। उसका श्रेय श्रीमान् पं० नाथूरामजी प्रेमी मालिक हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय बम्बई को है। आपने अपने कठिन परिश्रम से जैनधर्मके स्तंभरूप पूज्य आचार्यों के सम्बन्ध में जो भी मौलिक सामाग्री इस जैन समाज को भेंट की है, उसके लिये यह जैन समाज सर्वदा आपकी ऋणी रहेगी।

आचार्य श्रीमाणिक्यनन्दि स्वामी के पांडित्य का परिचय देना सूर्यको दीपक दिखा कर अपनी हंसी कराना है। जिन विद्वानों ने परीक्षामुख का अध्ययन किया होगा वे उनके

पांडित्य का अनुमान कर सकते हैं। जैन न्यायको सूत्रवद्ध करने वाले सबसे प्रथम आपही हैं। यद्यपि इस कृतिके पहिले भगवान् समंत भद्र और भट्टाकलंक देव आदि अनेक आचार्यों की मौलिक कृतियों ने दार्शनिकों के ऊपर अपना सिक्का जमा लिया था। परन्तु जैनधर्म के लिये न्यायशास्त्र के सूत्रवद्ध न रहने से जो त्रुटि रह जाती उसकी पूर्ति आपने ही की है।

समय निर्णय

श्री पं० वंशीधरजी शास्त्री सोलापुरने प्रमेयकमल मार्तण्ड की प्रस्तावना में विक्रम संवत् ५६९ में श्रीमाणिक्यनन्दि स्वामी को परीक्षामुख का कर्ता लिखा है। साथ ही यह भी उल्लेख किया है कि भट्टाकलंकदेव उनसे पहिले अपने ज्ञान सूर्यका प्रकाश लोक में कर चुके थे। जिससे पण्डितजी को भट्टाकलंकदेव के बाद माणिक्यनन्दि स्वामीका होना इष्ट है ऐसा प्रतीत होता है। परन्तु आपने यह समय निर्णय किस आधार पर किया है इसके सम्बन्ध में आप सर्वथा मौन हैं।

भट्टाकलंकदेव का जीवन काल विक्रम की आठवीं शताब्दी का पूर्वभाग माना जाता है। अनेक विद्वानों ने इसी बातकी पुष्टि की है। साथ ही प्रभाचन्द्र आचार्य ने न्यायमुकुन्दचन्द्रोदय के प्रथम अध्याय में लिखा है कि मुझे स्वामी अकलंकदेव के चारणों की सेवा से बोधलाभ हुआ है। श्लोक ये है।

बोधः कोप्यसमः समस्तविषयं प्राप्याकलंकं पदं,
जातस्तेन समस्तवस्तुविषयं व्याख्यायते तत्पदम् ।
किं न श्रीगणभृज्जिनेन्द्रपदतः प्राप्तप्रभावः स्वयं,
व्याख्यात्यप्रतिमं वचो जिनपतेः सर्वात्मभाषामयम् ।

इससे निर्विवाद सिद्ध है कि प्रभाचन्द्राचार्य स्वामी भट्टाकलंकदेव के समय में थे । इधर आपने प्रमेयकमल मार्तण्ड की समाप्ति में श्रीमाणिक्यनन्दि स्वामी का गुरु रूप से स्मरण किया है यथा—

गुरुः श्रीनन्दिमाणिक्यो नंदिताशेषसज्जनः ।
नंदताद्दुरितैकान्तरजो जैनमतार्णवः ॥ १ ॥

इससे भी विदित होता है कि भट्टाकलंकदेव स्वामी के समय में परीक्षामुख सूत्रकार मौजूद थे । भट्टाकलंकदेव का समय श्रीराजवार्तिक से विदित हो सकता है अतएव यहां पर उल्लेख नहीं किया है । इसलिये माणिक्यनन्दि स्वामी का जीवन कालभी भट्टाकलंकदेव के समान मानना चाहिये परन्तु इतना अवश्य है कि इन सब आचार्यों में प्रधान भट्टाकलंकदेव समझे जाते थे । जिसकी पुष्टि स्वामी अनन्त वीर्य ने भी की है ।

अकलंकवचोंभोधेरुद्दध्रे येन धीमता ।
न्यायविद्यामृतं तस्मै नमो माणिक्यनन्दिने ॥ २ ॥

स्वामी माणिक्यनन्दि ने किस संघ को सुशोभित किया इसके सम्बन्ध में हम कुछ भी नहीं लिख सकते हैं ।

गार्हस्थ्य जीवन भी आपका कैसा व्यतीत हुआ किस कुलको आपने सुशोभित किया इसका भी पता नहीं चलता है। परन्तु अनुमान इतना अवश्य होता है कि इनको भी तत्कालीन अन्य आचार्यों की तरह दक्षिणदेशीय होना चाहिये।

प्रमेयरत्नमाला कर्ता

अभी तक आपके बाबत निश्चित कुछ भी नहीं हुआ कि आपने कब अपने ज्ञान सूर्यसे संसार को प्रकाशित किया इसलिये मैं पाठकों के समक्ष आपके बाबत कुछ भी नहीं लिख सकता हूं। परन्तु इतना निश्चित है कि प्रमेयरत्नमाला प्रमेयकमलमार्तण्ड के पीछे उसी के आधार पर लिखी गई है। कई प्रमेयकमलमार्तण्ड और प्रमेयरत्नमाला के ऐसे प्रकरण हैं जो बराबर मिलते जुलते हैं। परन्तु प्रमेयकमल मार्तण्ड को संक्षेप कर जिस उत्तमता से प्रमेयरत्नमाला लिखी गई है वह विद्वानों को मुग्ध कर लेने वाली है। ग्रन्थकर्ता ने स्वयं प्रमेयरत्नमाला की आदि में इस बातकोस्वीकार किया है कि मैं श्री प्रभाचन्द्र आचार्य के उदार बचनों को जिस प्रकार समुद्र का जल न्यूतन घट में भराजाता है इस प्रकार इस ग्रन्थ में समाविष्ट करता हूं।

संपादक—

॥ श्रीः ॥

ग्रन्थपरिचय

श्री आचार्य माणिक्यनन्दि ने जैन न्याय को सूत्रबद्ध किया था, जिसका नाम परीक्षामुख है। सचमुच में यह ग्रन्थ परीक्षा का आदिस्थान है। जिस पुरुष की इस में प्रवृत्ति हो जायगी उस को संसार के संपूर्ण न्याय शास्त्र साध्य हो सकते हैं। साथ ही इसमें दूसरे दर्शनों का समावेश करके जिस उत्तमता के साथ उनका विचार किया गया है वह दार्शनिकों के मन को मुग्ध करने वाला है।

इस के छह अधिकार हैं प्रमाणस्वरूपाधिकार, २ प्रत्यक्ष प्रमाणाधिकार, ३ परोक्षप्रमाणाधिकार ४ प्रमाणविषयाधिकार ५ प्रमाणफलाधिकार ६ प्रमाणाभासाधिकार। इन अधिकारोंमें जिस विषय का वर्णन हैं वह अधिकारों के नाम से ही मालूम हो जाता है। परीक्षामुख के सूत्रों पर दो टीकायें लिखी गई हैं। एक प्रभाचन्द्र आचार्य कृत प्रमेयकमलमार्तंड और दूसरी आचार्य अनन्तवीर्यकृत परीक्षामुख लघुसूत्रवृत्ति. इसका दूसरा नाम प्रमेयरत्नमाला भी है। इस समय मैं पाठकों के समक्ष दूसरी टीका को ही रख रहा हूं। यद्यपि यह ग्रन्थ कई दफे मुद्रित हो चुका है परन्तु जिस रूप में मैं इस को उपस्थित कर रहा हूं, यह पाठकों को एक नई वस्तु ही है। अभी तक यह मूल रूप में ही पाठकों के सामने आया था

परन्तु अब वह टिप्पणी सहित प्रकाशित किया गया है जिससे प्रमेयरत्नमाला के संपूर्ण कठिन स्थल उससे खुल जाते हैं। मूल ग्रन्थ में भी जहां जो पाठ छूटगये थे उस स्थल पर वे जोड़ दिये गये हैं। साथ ही जो परम्परा से अशुद्धियां आरहीं थीं वे भी निकाल दी गई हैं। इस ग्रन्थ में यौग, बौद्ध, पुरुषाद्वैतवादी, चार्वाक, प्राभाकर और भाट्ट के सिद्धान्तों को पूर्वपक्ष में रखकर बड़ी उत्तम रीति से विचार किया गया है।

संपादक—

॥ श्रीः ॥

॥ परीक्षामुखम् ॥

॥ प्रमेयरत्नमालासहितम् ॥

॥ ॐ नमः सिद्धेभ्यः ॥

नतामरशिरोरत्न-प्रभाप्रोतनखत्विषे ॥

नमो जिनाय[2] दुर्वारमार[3]वीरमदच्छिदे ॥ १ ॥

---

१ प्रणतचतुर्णिकायदेवमानवपरिवृढचटुलमुकुटघटितमणिगणकिमीरितपद-नखमरीचये । मंगलं द्विविधं मुख्यममुख्यं चेति । मुख्यमंगलं जिनेन्द्रगुण-स्तोत्रममुख्यमंगलं दध्यक्षतादि, तत्र मुख्यमगलं द्वेधा निवद्धमनिवद्धं चेति । तत्र निवद्धं स्वेन कृत मनिवद्धं परकृतम् । तदपि द्विविधं परापरभेदात् । आ-प्तनमस्कारः परमंगलं गुरुपरम्परानमस्कारोऽपरमंगलम् । २ जिनाय समस्त-भगवदर्हत्परमेश्वराय नमो भूयात् । बहुविधं विषमगहनभ्रमणकारणं दुःकृतं जयतीति जिनस्त्रिलोकगोचरपरमजिन इत्यर्थ स्तस्मै । ३ दुर्वारमारवीरमदच्छि-दे—मां लक्ष्मीं राति ददातीति मारो लक्ष्मीदायको मोक्षमार्गस्य नेतेति यावत् । विशेषण ईर्ते सकलपदार्थजातं प्रत्यक्षीकरोतीति वीरः सर्वज्ञो विश्वतत्त्वानां ज्ञातेति यावत् । मारश्चासौ वीरश्च मारवीरः । मदं मानकषायं छिनत्ति भिदा-रयतीति मदच्छित्, उपलक्षणपदमिदं कर्मभूभृतां भेत्तेति यावत् । मारवीरश्चासौ

अकलङ्कवचोऽम्भोधेरुद्दध्रे[1][2] येन[3] धीमता[4] ॥
न्यायविद्यामृतं तस्मै नमो माणिक्यनन्दिने ॥ २ ॥
प्रभेन्दुवचनोदारचन्द्रिकाप्रसरे सति ॥
मादृशाः क्व नु गण्यन्ते ज्योतिरिङ्गणसन्निभाः ॥ ३ ॥
तथाऽपि तद्वचोऽपूर्वरचनारुचिरं सताम् ॥
चेतोहरं भृतं यद्वन्नद्या नवघटे जलम् ॥ ४ ॥
वैजेयप्रियपुत्रस्य हीरपस्योपरोधतः ॥
शान्तिषेणार्थ[5]मारब्धा परीक्षा[6]मुखपञ्जि[7]का ॥ ५ ॥

मदच्छिच्च मारवीरमदच्छित्, दुर्वारो वादिभिरजय्योऽप्रतिहतशक्तिरिति यावत्, दुर्वारश्चासौ मारवीरमदच्छिच्च दुर्वारमारवीरमदच्छित्तस्मै । अथवा मा प्रमेयपरिच्छेदकं केवलज्ञानमेव रविरशेषपदार्थप्रकाशकत्वात्, इरा मृदुमधुरगंभीरनिरुपमहितदिव्यध्वनिः । मारविश्च इरा च मारवीरे, दुर्वारे कुहेतुदृष्टान्तै र्निवारयितुमशक्ये मारवीरे यस्य स तथोक्तः । मदेनोपलक्षिता रागादयस्तेन मदच्छिद्रागाद्यशेषदोषच्छिदिति निश्चीयते । उक्तस्यैव विवरणम् मदच्छिदे कर्मभूभृतांभेत्रे, दुर्वारमारवये विश्वतत्वानां ज्ञात्रे, दुर्वारेराय मोक्षमार्गस्य प्रणेत्रे ।

१ अकलंको भट्टाकलंकः स्वामी, अथवा न विद्यते ऽज्ञानादिकलंको यस्यासौऽकलंको जिनदेवः, अथवाकलंकश्च तद्वचश्चेत्यकंलकवचो दिव्यध्वनिरित्यर्थः । २ प्रकटीकृतम् । ३ माणिक्यनंदिना कर्त्रा । ४ प्रशस्तविशालातिशयितज्ञानवता । ५ शान्तिषेणपठनार्थं । ६ लक्षितस्य लक्षणमुपपद्यते नवेति विचारः परीक्षा । अथवा स्वरूपं तदाभासः, संख्या तदाभासः, विषयस्तदाभासः, फलं तदाभास एतेषां विचारः परीक्षा अथवा विरुद्धनानायुक्तिप्राबल्यदौर्बल्यावधारणाय प्रवृतमानो विचारः परीक्षा । ७ कारिकास्वल्पवृत्तिस्तु, सूत्रं सूचनकं

श्रीमन्न्याय[1]वारपारस्यामेय[2]प्रमेयरत्नसार[3]स्यावगाहनमव्युत्पन्नैः कर्तुं न पार्यत इति तदवगाहनाय पोतप्रायमिदं प्रकरणमाचार्यः प्राह ॥ तत्प्रकरणस्य च सम्बन्धादित्रयापरिज्ञाने सति प्रेक्षावतां प्रवृत्तिर्न स्यादिति तत्त्रयानुवादपुरःसरं वस्तुनिर्देशपरं प्रतिज्ञा[11]श्लोकमाह—

स्मृतं । टीका निरन्तरं व्याख्या, पञ्जिका पदभञ्जिका ।१। १ पूर्वापरविरोधरहितत्वलक्षणा श्रीः, निर्बाधकत्वलक्षणा, श्रद्धानादिगुणोत्पन्नलक्षणा वा श्रीः । २ नयप्रमाणात्मको न्यायः । निपूर्वादिणगतावित्यस्माद्धातोः करणे घञ्प्रत्यये न्यायशब्दसिद्धिः । नितरां इयते ज्ञायते ऽर्थो ऽनेनेति न्यायः । प्रमाणशास्त्रक्षीरसमुद्रस्य श्रीमदित्यादिनियमेन कथंचित्सावधारणत्वेन प्रमेयस्वरूपमियते गम्यते येन स न्यायः, नयप्रमाणयुक्तिस्तत्प्रतिपादकत्वादिति युक्तिशास्त्रमपि न्यायः । श्रीमांश्चासौ न्यायश्चेति श्रीमन्न्यायः । ३ अमेयानि कुदृष्टिभि र्बोद्धुमशक्यानि विशेषतोऽनंतानंतानि वा प्रमेयाणि परिच्छेद्यानि जीवादिवस्तूनि रत्नेषु साराणि, उत्कृष्टरत्नानि रत्नसाराणि पुनर्बहुव्रीहिरमेयप्रमेयरत्नैः सार उत्कृष्ट इति तत्पुरुषो वा । युक्तिशास्त्रसंस्काररहितैः पुरुषैः । ४ प्रायो भूमोपमार्तक्यप्रभृत्यन्नानिवृत्तिषु । ५ माणिक्यनन्दिदेवः । ६ परीक्षामुखप्रकरणस्य । ७ आदिशब्देनाभिधेयशक्यानुष्ठानेष्टप्रयोजनम् । ८ विचारवतां । ९ उक्तस्य सार्थकं पुनर्वचनमनुवादः । १० प्रमाणतदाभासलक्षणभिधेयकथनपरम् । ११ वर्तमानस्यांगीकारः प्रतिज्ञा ।

प्रमाणा[1]दर्थ[2]संसिद्धिस्तदाभासा[3]द्विपर्ययः ॥
इति वक्ष्ये तयोर्लक्ष्म सि[4]द्धमल्पं[5] लघी[6]यसः ॥१॥

इत्यस्यार्थः—अहं वक्ष्ये प्रतिपादयिष्ये । किं तल्लक्ष्म, लक्ष[7]णम् । किं विशिष्टं लक्ष्म ? सिद्धं, पूर्वाचार्यप्रसिद्धत्वात् । पुनरपि कथंभूतं ? अल्पमल्पग्रन्थवाच्यत्वात् । ग्रन्थतोऽल्पम-र्थतस्तु महदित्यर्थः । कान् ? लघीयसो विनेया[8]नुद्दि[9]श्य । ल[10]घवं मतिकृतमिह गृह्यते न परिमाणकृतं नाऽपि कालकृतं तस्य प्र-

---

१ अत्र प्रमाणशब्दः कर्तृकरणभावसाधनः । तत्र प्रतिबन्धविगमविशेषव-शात्स्वपरप्रमेयस्वरूपं प्रमिनोति यथावज्जानातीति प्रमाणमात्मा प्रतिबन्धापाये प्रादुर्भूतज्ञानपर्यायस्य प्राधान्येनाश्रयणात्प्रदीपादेः प्रभाभारात्मकप्रकाशवत् । साधकतमत्वादिविवक्षायां तु प्रमीयते येन तत्प्रमाणम्, प्रमितिमात्रं वा प्रमाणं २ अर्थः स्याद्विषये मोक्षे, शब्दवाच्ये प्रयोजने । व्यवहारे धने शास्त्रे, वस्तुहेतुनिवृत्तिषु । १ । अर्यते गम्यते ज्ञायते यः सोर्थः । ३ तन्न भवति तथापि तद्वदवभासते प्रतिभातीति तदाभासः । ४ स्वरुचिविरचितत्वदूषणपरिहारार्थं सिद्धमित्युच्यते । ५ पिष्टपेषणदूषणपरिहारार्थमल्पमित्युच्यते । ६ तीव्रमतीन्म-न्दमतींश्च शिष्यान् । ७ व्यतिकीर्णवस्तुव्यावृत्तिहेतुर्लक्षणम् । ८ शिष्यान् । ९ अनुलक्षीकृत्य । १० लाघवं त्रिविधं मतिकृतं कालकृतं कायपरिमाणकृतं चेति । तत्र नांत्यद्वयमत्र ग्राह्यम् व्यभिचारात्तथाहि—विमतो व्युत्पाद्यः काल-कृतलाघवादित्युक्ते गर्भाष्टमवर्षजातज्ञानसंपन्नसंयतेन व्यभिचारात् । विमतो व्युत्पाद्यः कायकृतलाघवादित्युक्ते विदितशास्त्रेण कुब्जादिनानेकांतात्तयो व्युत्पा-

तिपाद्यत्व[१]व्यभिचारात्[२]। कयोस्तल्लक्ष्म तयोः प्रमाणतदाभासयोः। कुतः यतोऽर्थस्य परिच्छेद्यस्य संसिद्धिः संप्राप्तिर्ज्ञप्तिर्वा भवति। कस्मात्प्रमाणात्। न केवलं प्रमाणादर्थसंसिद्धिर्भवति। विपर्ययो भवति। अर्थसंसिद्ध्यभावो भवति। कस्मात्तदाभासात् प्रमाणाभासात्। इतिशब्दो[३] हेत्वर्थे, इति हेतोः। अयमत्र समुदायार्थः[४]। यतः कारणात्प्रमाणादर्थसंसिद्धिर्भवति। यस्माच्च तदाभासाद्विपर्ययो भवति। इति हेतोस्तयोः प्रमाणतदाभासयोर्लक्ष्म लक्षणमहं वक्ष्ये इति॥ ननु सम्बन्धा[५]भिधेयशक्यानुष्ठानेष्टप्रयोजनवन्ति हि शास्त्राणि भवन्ति। तत्रा[६]स्य प्रकरणस्य यावदभिधेयं सम्बन्धा वा नाभिधीयते न

दकत्वात्। १ शिष्यत्व। २ साध्याभावे प्रवृत्तमानो हेतुर्व्यभिचारी भवति। ३ इति हेतुप्रकरणप्रकर्षादिसमाप्तिषु। ४ अवयवार्थमुक्त्वा समुदायार्थः प्रतिपाद्यते ऽवयवार्थप्रतिपत्तिपूर्विका समुदायार्थप्रतिपत्तिरिति न्यायात्। ५ सम्बन्धशब्दस्याल्पाच्त्वात्पूर्वनिपातो ऽन्यथाभिधेयपूर्वकत्वात्सम्बन्धशब्दस्य पूर्वनिपातत्वं नोपपद्यते। प्रकृतस्यार्थस्यानुरोधेनोत्तरोत्तरस्य विधानं सम्बन्धः। सिद्धार्थं सिद्धसम्बन्धं श्रोतुं श्रोता प्रवर्तते। शास्त्रादौ तेन वक्तव्यः सम्बन्धः सप्रयोजनः॥ १॥ व्याख्याशुद्धिस्त्रिधा शास्त्रे, स्थानमार्गप्रमेयतः। स्थानं त्रिधा द्विधा मार्गः प्रमेयं च त्रिधा विदुः॥ २॥ तत्र पातनिकस्थानं, समर्थनस्थानं विवरणस्थानं चेति त्रिधा स्थानम्। पातनिकस्थानं द्विविधं सूत्रपातनिका, ग्रन्थपातनिकेति। अन्वयमार्गो, व्यतिरेकमार्ग इति मार्गो द्विधा। प्रकृतप्रमेयं, प्रासंगिकप्रमेयमानुषंगिकप्रमेयमिति त्रिधा प्रमेयम्। ६ एवं सति, त्रिषु।

तावदस्योपादेयत्वं भवितुमर्हति । एष[1] वन्ध्यासुतो यातीत्यादिवाक्यवत् । दशदाडिमादिवाक्यवच्च[2] ॥ तथा शक्यानुष्ठानेष्टप्रयोजनमपि शास्त्रादाववश्यं वक्तव्यमेव । अशक्यानुष्ठानेष्टप्रयोजनस्य[3] सर्वज्वरहरतक्षकचूडारत्नालङ्कारोपदेशस्येव[4] प्रेक्षावद्भिरनादरणीयत्वात् । तथा शक्यानुष्ठानस्याप्यनिष्टप्रयोजनस्य विद्वद्भिरवधीरणान्मातृविवाहादिप्रदर्शकवाक्यवदिति[5][6] ।

सत्यं[7], प्रमाणतदाभासपदोपादानादभिधेयमभिहितमेव[8],प्रमाणतदाभासयोरनेन प्रकरणेनाभिधानात् । सम्बन्धश्चार्थायातः प्रकरणतदभिधेययोर्वाच्यवाचकभावलक्षणः[9][10] प्रतीयत एव । तथा प्रयोजनं चोक्तलक्षणमादिश्लोकेनैव संलक्ष्यते, प्रयोजनं हि द्विधा भिद्यते । साक्षात्परम्परयेति । तत्र साक्षात्प्रयोजनं[11] वक्ष्ये इत्यनेनाभिधीयते । प्रथमं शास्त्रव्युत्पत्तेरेव[12] विनेयैरन्वेषणात्[13] ॥ पारम्पर्येण तु प्रयोजनमर्थसंसिद्धिरित्यनेनोच्यते शास्त्र-

---

१ एष बन्ध्यासुतो याति, खपुष्पकृतशेखरः । मृगतृष्णांभसि स्नात्वा, शशशृङ्गधनुर्धरः ।१। इत्यनेनाभिधेयो नाभिधीयते। अत्र सम्बन्धो वर्तते परन्त्वभिधेयत्वं नास्ति । २ दश दाडिमानि, षट् पूपाः, कुण्डकव्यमजाजिनं इत्यमुनासूचतोऽसंवन्धः । ३ शास्त्रादौ शक्यानुष्ठानं मास्त्विष्टप्रयोजनमस्त्विति शंकानिवारणार्थम् । ४ तक्षको नागभेदे स्याद्वर्धकिद्रुमभेदयोरित्यनेकार्थस्तत्रपन्नगार्थोऽत्र गृह्यते । ५ अनादरणीयत्वात् । ६ यजुर्वेदप्रवृत्तिलक्षणे, मातरमपि विवृणीयात्पुत्रकाम इति श्रुतिः । ७ अर्धाङ्गीकारे । ८ कथितमेव । ९ वाच्यमभिधेयम् । १० वाचकंप्रकरणम् । ११ शास्त्रव्युत्पत्तिः साक्षात्प्रयोजनम् । १२ मतेर्विशेषेण संशयाविपर्ययानध्यवसायव्यवच्छे-

व्युत्पत्त्यनन्तरभावित्वादर्थसंसिद्धेरिति ॥ ननु निःशेषविघ्नोपशमनायेष्टदेवतानमस्कारः शास्त्र[1]कृता कथं न कृत इति न वाच्यम्। तस्य[2] मनःकायाभ्यामपि सम्भवात् अथवा वाचनिकोऽपि नमस्कारोऽनेनैवा[3]दिवाक्येनाभिहितो वेदितव्यः। केषाञ्चिद्वाक्यानामुभयार्थप्रतिपादनपरत्वेनापि दृश्यमानत्वात्। यथा श्वेतो धावतीत्युक्ते श्वा इतो धावति श्वेतगुणयुक्तो धावति इत्यर्थद्वयप्रतीतिः ॥ तत्रादिवाक्यस्य नमस्कारपरताभिधीयते ॥ अर्थस्य हेयोपादेयलक्षणस्य संसिद्धिर्ज्ञप्तिर्भवति। कस्मात्? प्रमाणात्। अनन्तचतुष्टयस्वरूपान्तरङ्गलक्षणा, समवसरणादिस्वभावा बहिरङ्गलक्षणा लक्ष्मीर्मा इत्युच्यते। अणनं[4]णः शब्दो मा च आणश्च माणौ प्रकृष्टौ माणौ यस्यासौ प्रमाणः। हरिहराद्यसम्भविविभूतियुक्तो दृष्टेष्टा[5]विरुद्धवाक्च भगवानर्हन्नेवाभिधीयत इत्यसाधारणगुणोपदर्शनमेव भगवतः संस्तवनमभिधीयते। तस्मा[6]त्प्रमाणादवधि[7]भूतादर्थसंसिद्धिर्भवति तदाभासाच्च हरिहरादेरर्थसंसिद्धिर्न भवति। इति हेतोः सर्वज्ञतदाभासयोर्लक्ष्म[8] लक्षणमहं वक्ष्ये—सामग्रीविशेषेत्यादिना ॥ अथेदानीमुपक्षिप्तप्रमाणतत्त्वे स्वरूपसंख्याविषयफललक्ष-

---

देनोत्पत्ति व्युत्पत्तिः। १२ शोधनात्। १ माणिक्यनन्दिविभुना। २ नमस्कारस्य। ३ प्रमाणादर्थसंसिद्धिरित्यनेनैव। ४ अण्यते शब्द्यते येनासावाणो दिव्यध्वनिरित्यर्थः। ५ प्रत्यक्षपरोक्षाभ्यामविरुद्धवाग्यस्य सः। ६ सर्वज्ञात्। ७ अर्थसंसिद्धेःप्रथमकारणभूतात्। ८ स्वरूपविप्रतिपत्तिर्यथा स्वापूर्वार्थव्यवसायात्मकं ज्ञानं प्रमाणमित्यार्हतः। इन्द्रियवृत्तिः प्रमाणमिति कापिलाः

णासु चतसृषु विप्रतिपत्तिषु मध्ये स्वरूपविप्रतिपत्तिनिराकरणार्थमाह—

स्वापूर्वार्थव्यवसायात्मकं ज्ञानं प्रमाणमिति ॥१॥

प्रमातृव्यापारः प्रमाणमिति प्राभाकराः । अनधिगतार्थाधिगंतृ प्रमाणमिति भाट्टाः । अविसंवादिविज्ञानं प्रमाणमिति सौगताः । प्रमाकरणं प्रमाणमिति यौगाः । कारकसाकल्यं प्रमाणमिति जरन्नैयायिकाः । संख्याविप्रतिपत्तिर्यथा-प्रत्यक्षमेकं चार्वाकः कारणात्सौगताः पुनः । अनुमानं च तच्चैव सांख्याः शब्दं च ते अपि ॥ १ ॥ न्यायैकदेशिनो ऽप्येव मुपमानं च केन च । अर्थापत्या सहैतानि चत्वार्याहुः प्रभाकराः ॥ २ ॥ अभावषष्ठान्येतानि भाट्टा वेदान्तिनस्तथा । सम्भवैतिह्ययुक्तानि तानि पौराणिका जगुः ॥ ३ ॥ प्रत्यक्षपरोक्षभेदाद्विविधं प्रमाणमिति जैनाः वदन्तिः । विषयविप्रतिपत्तिर्यथा—प्रमाणतत्वस्य सामान्यमेव विषय इति कापिलाः पुरुषाद्वैतवादिनश्च, विशेषमेव विषय इति बौद्धाः । सामान्यं विशेषश्च द्वयमपि स्वतन्त्रेण विषय इति योगाः, सामान्यं विशेषश्चाभेदेन विषय इति मीमांसकाः । उभावपि कथञ्चिद्भेदाभेदाभ्यां विषय इति जैनाः । फलविप्रतिपत्तिर्यथा—फलं प्रमाणाद्भिन्नमिति कापिलाः यौगाश्च, प्रमाणादभिन्नमिति सौगताः प्रमाणात्कथञ्चित्फलमभिन्नंभिन्नमिति जैनाः । १ सूत्रं द्विविधं तद्यथागमप्रमाणमनुमानप्रमाणश्च तदुक्तं श्लोकवार्तिकालंकारे—प्रमाणमागमः सूत्रमाप्तमूलत्वसिद्धितः । लैङ्गिकं चाविनाभावि लिङ्गात्साध्यस्य निर्णयात् ॥ १ ॥ तथेदं सूत्रमनुमानप्रमाणं भवति, अल्पाक्षरत्वे सति बह्वर्थसूचकत्वं सूत्रत्वम् , अल्पाक्षरमसन्दिग्धं न्यायवद्विश्वतोमुखम् । अस्तोभमनवद्यञ्च सूत्रं सूत्रविदो विदुः ॥२॥ स्वस्यात्मनो ऽपूर्वार्थस्यानिश्चतस्य बाह्यस्य पदार्थस्येतिस्वापूर्वार्थयो र्निश्चयस्वरूपकम् । २ मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानि ज्ञानमिति सम्यग्ज्ञानानां सामान्यज्ञान-

प्रकर्षेण संशयादिव्यवच्छेदेन मीयते परिच्छिद्यते वस्तुतत्त्वं येन तत्प्रमाणम् ॥ तस्य च ज्ञानमिति विशेषणमज्ञानरूपस्य सन्निकर्षादेर्नैयायिकादिपरिकल्पितस्य प्रमाणत्वव्यवच्छेदार्थमुक्तम् ॥ तथा ज्ञानस्यापि स्वसंवेदनेन्द्रियमनोयोगिप्रत्यक्षस्य निर्विकल्पकस्य प्रत्यक्षत्वस्य प्रामाण्यं सौगतैः परिकल्पितं तन्निरासार्थं व्यवसायात्मकग्रहणम् ॥ तथा बहिरर्थापह्नोतॄणां

पदेन सङ्ग्रहात्, हेतुहेतुमद्भावज्ञापनार्थं ज्ञानमिति भिन्नपदकमिति, ज्ञानं प्रमाणं भवितुमर्हति स्वापूर्वार्थव्यवसायात्मकत्वात् । ज्ञानमिति विशेषणेनाव्याप्तिपरिहारः । व्यवसायात्मकमिति विशेषणेनातिव्याप्तिपरिहारः । स्व इति विशेषणेनासंभवदोषनिराकरणम् । २ प्रमेयप्रमितेराभिमुख्येन चेतनात्मकः । यः प्रमातुः प्रयत्नः स्यात्तत्प्रमाणं जिनैर्मतम् ॥ १ ॥ १ सामान्यप्रत्यक्षाद्विशेषस्मृतेश्च संशयः । आदिशब्देन विपर्ययानध्यवसायौ ग्राह्यौ । २ करणत्वप्रतिपन्नज्ञानस्य । ३ इन्द्रियार्थयोः सम्बन्धः सन्निकर्षः, कारकाणां समूहः कारकसाकल्यम्, लघुनैयायिकानां सन्निकर्षो जरन्नैयायिकानां कारकसाकल्यं, कापिलानामिन्द्रियवृत्तिः, प्राभाकराणाम् ज्ञातृव्यापारोऽज्ञानरूपोऽपि । ४ सर्वचित्तचैत्तानामात्मसंवेदनं स्वसंवेदनप्रत्यक्षम्, ५ इन्द्रियार्थसमनन्तरभवमिन्द्रियप्रत्यक्षं, स्वविषयानन्तरविषयसहकारिकारणेन्द्रियज्ञानेन समनन्तरप्रत्ययेन जनितं मनःप्रत्यक्षम्, क्षणिकभावनापरमप्रकर्षपर्यन्तजं योगिप्रत्यक्षम् । योगाचारवैदान्तिकमाध्यमिकानां, सर्वं माध्यमिके शून्यं योगाचारेऽवहिर्गतम् । सौत्रान्तिकेऽनुमेयं स्यात् सर्वं वैभासिके स्फुटम् ॥ १ ॥ ६ निश्चयात्मक । ७ अपलापिनाम् ।

विज्ञानाद्वैतवादिनां पुरुषाद्वैतवादिनां पश्यतोहरा[1]णां शून्यैकान्तवादिनां च विपर्यासव्युदासार्थमर्थग्रहणम् ॥ अस्य चापूर्व विशेषणं गृहीतग्राहिधारावाहिज्ञानस्य प्रमाणतापरिहारार्थमुक्तम् ।। तथा परोक्षज्ञान[2]वादिनां मीमांसकानामस्वसंवेदन[3]ज्ञानवादिनां सांख्यानां ज्ञानान्तर[4]प्रत्यक्षज्ञानवादिनां यौगा[5]नां च मतमपाकर्तुं[6] स्वपदोपादानमित्यव्या[6]प्त्यतिव्या[7]प्त्यसम्भव[8]दोषपरिहारात् सुव्यवस्थितमेव प्रमाणलक्षणम्॥ अस्य च प्रमाणस्य यथोक्तलक्षणत्वे साध्ये प्रमाणत्वादिति हेतुरत्रैव द्रष्टव्यः । प्रथमा[9]न्तस्यापि हेतुपरत्वेन निर्देशोपपत्तेः ॥ प्रत्य[10]क्षं विशदं ज्ञानमित्यादिवत् ॥ तथाहि—प्रमाणं स्वापूर्वार्थव्यवसायात्मकं ज्ञानं भवति प्रमाणत्वात् ॥ यत्तु स्वापूर्वार्थव्यवसायात्मकं ज्ञानं न भवति न तत्प्रमाणम् । यथा संशया[11]दिर्घटा[12]दिश्च । प्रमाणं च विवादापन्नम् । तस्मात्स्वापूर्वार्थव्यवसायात्मकं ज्ञानमेव भ-

---

१ पश्यन्तमनादृत्यहर्तॄणाम् । २ परोक्षं जैमिनेर्ज्ञानं, ज्ञानमात्मा प्रभाकृतः । ज्ञानं फलं च भट्टस्य शेषं प्रत्यक्षमिष्यते ।१। ३ ज्ञानमस्वसंविदितमचेतनत्वात्, ज्ञानमचेतनं प्रधानपरिणामित्वादिति वादिनाम् । ४ एकात्मसमवेतानन्तरज्ञानवेद्यमर्थज्ञानं न स्वसंवेदितमित्यर्थः ५ नैयायिकवैशेषिकाणाम् । ६ लक्षणत्वेनाभिमते वस्तुनि क्वचित्प्रवर्त्तनं क्वचिच्चाप्रवर्तमव्याप्तिः । ७ तत्रान्यत्र च वर्तन मतिव्याप्तिः ८ यत्र लक्ष्ये क्वाप्यवर्त्तनमसंभवः । ९ पञ्चम्यन्तस्यैव हेतुत्वं प्रथमान्तस्य कथमित्याशंक्याह प्रथमान्तस्येति यथा गुर्वोराजमाषाः नभक्षणीया इत्यत्र प्रथमांतोऽपि गुरुत्वादिति हेतुः । १० प्रत्यक्षं धर्मी विशदं ज्ञानं भवितुमर्हति प्रत्यक्षत्वात । ११ बौद्धं प्रति दृष्टान्तः । १२ नैयायिकं प्रति

वतीति ॥ न च प्रमाणत्वमसिद्धम् । सर्वप्रमाणस्वरूपवादिनां प्रमाणसामान्ये विप्रतिपत्त्यभावात् ॥ अन्यथा स्वेष्टानिष्टसाधनदूषणायोगात् । अथ धर्मिण एव हेतुत्वे प्रतिज्ञार्थैकदेशासिद्धो हेतुः स्यादिति चेन्न । विशेषं धर्मिणं कृत्वा सामान्यं हेतुं ब्रुवतां दोषाभावात् ॥ एतेनापक्षधर्मत्वमपि प्रत्युक्तम् । समानस्याशेषविशेषनिष्ठत्वात् ॥ न च पक्षधर्मताबलेन हेतोर्गमकत्वमपि त्वन्यथानुपपत्तिबलेनेति, सा चात्र नियमवती विपक्षे बाधकप्रमाणबलान्निश्चितैव । एतेन विरुद्धत्वमनैकान्तिकत्वं च निरस्तं बोद्धव्यम् । विरुद्धस्य व्यभिचारिणश्चाविनाभावनियमनिश्चयलक्षणत्वायोगात् । अतो भवत्येव साध्यसिद्धिरिति केवलं व्यतिरेकिणोऽपि हेतोर्गमकत्वात् । सात्मकं जीवच्छरीरं प्राणादिमत्त्वादितिवत् ॥ अथेदानीं स्वोक्तप्रमाणलक्षणस्य ज्ञानमिति विशेषणं समर्थयमानः प्राह—

हिताहितप्राप्तिपरिहारसमर्थं हि प्रमाणं,

दृष्टान्तः । १ सर्वेषु प्रमाणेषु प्रमाणत्वसंभवात् विवादाभावात् सामान्येनैककथनात् । २ धर्मधर्मिसमुदायः प्रतिज्ञा तदेकदेशो धर्मो धर्मी वा हेतुश्चेत् प्रमाणत्वस्य स्वरूपासिद्धत्वं माभूत्प्रतिज्ञार्थैकदेशासिद्धत्वं स्यादित्याशंक्यते । ३ हेतोरन्यथानुपपत्तिनियमनिश्चयसमर्थनेन । ४ विवादाध्यासितं तथा चेदं प्रमाणं न भवतीति । ५ अविनाभाववती । ६ प्रमाणत्वस्य हेतोः सन्निकर्षादावप्रवर्तकत्वात् । ७ साध्यसाधनेन । ८ साध्यविपर्ययव्याप्तस्तु विरुद्धः । ९ हेतोरसिद्धविरुद्धानैकान्तिकदोषत्रयाभावः समर्थितो यतः । १० यन्न सात्मकं तन्न प्राणादिमद्दृष्टं यथा मृतकशरीरम् ११ असाधारणप्रमाणस्वरूपकथनानन्तरं

तता ज्ञानमेव तदिति ॥ २ ॥

हितं[1] सुखं तत्कारणं[2] च । अहितं[3] दुःखं तत्कारणं[4] च । हितं चाहितं च हिताहिते । तयोः प्राप्तिश्च परिहारश्च तत्र समर्थम्[5] ॥ हिशब्दो यस्मादर्थे । तेनायमर्थः[6] सम्पादितो भवति । यस्माद्धिता हितप्राप्तिपरिहारसमर्थं प्रमाणं । ततस्तत्प्रमाणत्वेनाभ्युपगतं[7] वस्तु[8] ज्ञानमेव भवितुमर्हति नाज्ञानरूपं सन्निकर्षादि ॥ तथा च प्रयोगः प्रमाणं ज्ञानमेव हिताहितप्राप्तिपरिहारसमर्थत्वात् । यत्तु न ज्ञानं तन्न हिताहितप्राप्तिपरिहारसमर्थम् । यथा घटादिः । हिताहितप्राप्तिपरिहारसमर्थं च[9] विवादापन्नम्[10] तस्मात्[11] ज्ञानमेव भवतीति[12] ॥ नचैतदसिद्धं[13] । हितप्राप्तयेऽहितपरिहाराय च प्रमाणमन्वेषयन्ति[14] प्रेक्षापूर्वकारिणो न व्यसनितया[15] सकलप्रमाणवादिभिरभिमतत्वात् ॥ अत्राह सौगतः—भवतु नाम सन्निकर्षादिव्यवच्छेदेन ज्ञानस्यैव प्रामाण्यं[16] न तदस्माभिर्निषिध्यते । तत्तु व्यवसायात्मकमेवेत्यत्र न युक्तिमुत्पश्यामः । अनुमानस्यैव व्यवसायात्मनः[17] प्रमाण्याभ्युपगमात्[18] प्रत्यक्षस्य[19]

सूत्रसामान्यस्वरूपं प्रतिपाद्य । १ स्रग्वस्त्रादि २ सम्यग्दर्शनादि । ३ अहितं कण्टकादि । ४ मिथ्यादर्शनादिकम् । ५ शक्तियुक्तम् । ६ वक्ष्यमाणार्थः । ७ अङ्गीकृतम् । ८ प्रमाणम् । ९ उपनयस्तथा चेदम् । १० ज्ञानमज्ञानं चेति विप्रतिपन्नं प्रमाणं भवति । ११ हिताहितप्राप्तिपरिहारसमर्थत्वात् । १२ निगमनम् । १३ एतत्साध्यसाधनमसिद्धमित्युक्ते आह । १४ विचारयन्ति । १५ कार्यं विना प्रवृत्तिर्व्यसनम् । १६ उपादेयभूतार्थक्रियाप्रसाधकार्थप्रदर्शकत्वम् । १७ निश्चयात्मनः । १८ अंगीकारात् । १९ कल्प-

तु निर्विकल्पकत्वेऽप्यविसंवादकत्वेन प्रामाण्योपपत्तेरिति तत्राह—

तन्निश्चयात्मकं समारोपविरुद्धत्वादनुमानवदिति ॥ २ ॥

तत् प्रमाणत्वेनाभ्युपगतं वस्त्विति धर्मिनिर्देशः । व्यवसायात्मकमिति साध्यम् । समारोपविरुद्धत्वादिति हेतुः । अनुमानवदिति दृष्टान्त इति ॥ अयमभिप्रायः—संशयविपर्यासानध्यवसायस्वभावसमारोपविरोधिग्रहणलक्षणव्यवसायात्मकत्वे सत्येवाविसंवादित्वमुपपद्यते । अविसंवादित्वे च प्रमाणत्वमिति चतुर्विधस्यापि समक्षस्य प्रमाणत्वमभ्युपगच्छता समारोपविरोधिग्रहणलक्षणं निश्चयात्मकमभ्युपगन्तव्यम् ॥ ननु तथापि समारोपविरोधिव्यवसायात्मकत्वयोः समानार्थकत्वात् कथं साध्यसाधनभाव इति न

नापोढमभ्रान्तं प्रत्यक्षम् । १ अव्यवसायात्मकत्वेऽपि । २ प्रमाणभूतं ज्ञानम् । ३ निश्चयात्मकम् । ४ संशयविपर्ययानध्यवसायलक्षणसमारोपस्तत्प्रतिपक्षत्वात्। प्रत्यक्षस्य प्रामाण्यमविसंवादकत्वेन, तदपि—अर्थक्रियास्थितत्वेन, तदप्यर्थप्रापकत्वेन, तदपि प्रवर्तकत्वेन, तदपि स्वविषयोपदर्शकत्वेन, तदपि निश्चयोत्पादकत्वेन तदपि गृहीतार्थाव्यभिचारत्वेन । ५ अंधकार प्रकाशयो राहिनकुलयोः, रूपरसयोः सहानवस्थानवध्यघातकपरस्परपरिहारास्थितिलक्षणेषु विरोधेष्वत्र सहानवस्थानलक्षणविरोधो ग्राह्यः । ६ अनुमानप्रमाणवत् । ७ इदमपि व्यापकं प्रमाणत्वस्य । ८ स्वसंवेदनेन्द्रियमनोयोगिप्रत्यक्षस्य । ९ प्रत्यक्षस्य । १० अङ्गीकुर्वता सौगतेन । ११ज्ञानम् । १२ बौद्ध आह । १३ साध्यसमोऽयं हेतुः ।

मन्तव्यम् । ज्ञानस्वभावतया तयोर्[1]भेदेऽपि व्या[2]प्यव्याप[3]कत्वधर्माधारयता भेदोप[4]पत्तेः । शिंशपात्ववृक्षत्ववत् ॥ अथेदानीं सविशेष[5]णमर्थग्रहणं समर्थयमानस्तदेव स्पष्टीकुर्वन्नाह—

अनिश्चितोऽपूर्वार्थ इति ॥ ४ ॥

यः प्रमाणा[6]न्तरेण संशयादिव्यव[7]च्छेदेनानध्यवसितः सोऽपूर्वार्थः ॥ तेनेहा[8]दिज्ञानविषयस्यावग्रहादिगृहीतत्वेऽपि न पूर्वा-

---

१ समारोपविरोधिव्यवसायात्मकत्वयोः । २ तदभाववदवृत्तित्वं व्याप्यत्वम् । ३ तत्समानाधिकरणात्यन्ताभावाप्रतियोगित्वं व्यापकत्वम् । ४ अनुमानपुरस्सरेण साधनान्तरेण भेदम् व्यवस्थापयति जैनः । निश्चयो ग्रहणं ह्यस्ति, तच्चासत्येऽपि सत्यवत् । ज्ञाने यत्तु समारोपविरुद्धं सत्यमेव तत् ॥ १ ॥ व्यापकं तदतन्निष्ठं, व्याप्यं तन्निष्ठमेव च । व्याप्यं गमकमादिष्टं, व्यापकं गम्यमिष्यते ॥ २ ॥ अत्र व्यवसायात्मकं तत्तु विपर्ययज्ञानेऽपि विद्यते, समारोपविरोधित्वं व्याप्यं तत्तु व्यवसाय एव न तु विपर्यये तस्माद्भेदः । ५ व्यवसायात्मकं भवत्वर्थविशेषणमास्त्विति विज्ञानाद्वैतवादिनाम्, अपूर्व इति विशेषणेन सह वर्तमानम् । ६ प्रकृतात्प्रमाणादन्यत्प्रमाणान्तरं तेन येनकेनचित्प्रमाणान्तरेण । ७ त्यागेन । अनिश्चितः ८ अवग्रहो विशेषाकांक्षेहावायो विनिश्चयः । धारणा स्मृतिहेतुः स्यान्मतिज्ञानं चतुर्विधम् ॥३॥ विषयविषयिसन्निपाते सति दर्शनं भवति तत्पश्चादर्थरूपग्रहणमवग्रह उच्यते यथा चक्षुषा शुक्लं रूपमिति ग्रहणमवग्रह । ९ अवग्रहेण गृहीतार्थस्य विशेषपरिज्ञानाकांक्षणमीहा कथ्यते । यथा शुक्लं रूपं मया दृष्टं तद्बलाका आहोस्वित्पताका वेति विशेषाकांक्षणमीहा, तदनन्तर मेषोत्पतति निपतति पक्षविशेषादिकं करोति तेन ज्ञायतेऽनया बलाकया

र्थत्वम् । अवग्रहादिनेहादिविषयभूतावान्तरविशेषनिश्चयाभावा-
त् ॥ अथोक्तप्रकार एवापूर्वार्थः किमन्योऽप्यस्तीत्याह—

दृष्टोऽपि समारोपात्तादृगिति ॥ ५ ॥

दृष्टोऽपि गृहीतोऽपि न केवलमनिश्चित एवेत्यपिशब्दार्थः । तादृगपूर्वार्थो भवति । समारोपादिति हेतुः ॥ एतदुक्तं भवति- गृहीतमपि ध्यामलिताकारतया यन्निर्णेतुं न शक्यते तदपि वस्त्वपूर्वमिति व्यपदिश्यते प्रवृत्तसमारोपाव्यवच्छेदात् ॥ ननु भवतु नामापूर्वार्थव्यवसायात्मकत्वं[२] विज्ञानस्य स्वव्यवसायं तु न विद्म इत्यत्राह—

स्वोन्मुखतया प्रतिभासनं स्वस्य व्यवसाय इति ॥६॥

स्वस्योन्मुखता स्वोन्मुखता तया स्वोन्मुखतया स्वानुभवतया प्रतिभासनं स्वस्य व्यवसायः ॥ अत्र दृष्टान्तमाह—

अर्थस्येव तदुन्मुखतयेति ॥ ७ ॥

तच्छब्देनार्थोऽभिधीयते । यथाऽर्थोन्मुखतया प्रतिभासनमर्थव्यवसायस्तथा स्वोन्मुखतया प्रतिभासनं स्वस्य व्यवसायो भवति ॥ अत्रोल्लेखमाह—

घटमहमात्मना वेद्मीति ॥ ८ ॥

ननु ज्ञानमर्थमेवाध्य[३]वस्यति न स्वा[४]त्मानम् । आमोत्त्वं[५]

भवतिव्यमेवं याथात्म्यावगमनं वस्तुरूपनिर्द्धारणमवाय इति । अवायस्य सम्यक्परिज्ञानस्य यत्कालान्तराविस्मरणकारणं साधारणा । १ विस्मृतपदार्थवत् । २ ज्ञानस्वरूपम् । ३ प्रत्यक्षीकरोति । ४ स्वरूपम् । ५ पुरुषं कर्तारं न

फलं वेति केचित्। कर्तृकर्मणोरेव प्रतीतिरित्यपरे। कर्तृकर्म क्रियाणामेव प्रतीतिरित्यन्ये। तेषां मतमखिलमपि प्रतीति-बाधितमिति दर्शयन्नाह—

कर्मवत्कर्तृकरणक्रियाप्रतीतेरिति ॥ ९ ॥

ज्ञानविषयभूतं वस्तु कर्माभिधीयते। तस्यैव ज्ञप्तिक्रियया व्याप्यत्वात्। तस्येव तद्वत्। कर्त्ता आत्मा। करणं प्रमाणम्। क्रिया प्रमितिः। कर्त्ता च करणं च क्रिया च तासां प्रतीतिः तस्या इति हेतौ कां प्रागुक्तानुभवोल्लेखे यथाक्रमं तत्प्रतीतिर्द्र-ष्टव्या॥ ननु शब्दपरामर्शसचिवेयं प्रतीतिर्न वस्तुतत्ववलोप-जातेत्यत्राह—

शब्दानुच्चारणेऽपि स्वस्यानुभवनमर्थवदिति ॥ १०

प्रत्यक्षीकरोति। १ अज्ञाननिवृत्तिर्हानोपादानोपेक्षाश्च फलम्। २ कर्मक्रिययोरेव प्रतीतिरिति वृत्तावनुक्तमुपलक्षणीयमिति प्राभाकराः। परोक्षं जैमने र्ज्ञानं ज्ञानमात्मा प्रभाकृतः। ज्ञानं फलं च भट्टस्य शेषं प्रत्यक्ष-मिष्यते।१। ३ तस्येति सूत्रेणवार्थे षष्ठ्यन्तात्कर्मशब्दाद्वत्प्रत्ययः प्रकर-णवलाज्ज्ञेयम्। प्रमातृप्रमाणप्रमितिक्रियाणां प्रतिभासनात्। ४ हेतौ गुणोऽस्त्रि-यामितिनिषेधात्कथं पञ्चमीति नाशकनीयं "ल्यब्लोपे कर्माधारे" इति सूत्रेणपञ्च-मी भवति, प्रतीतिमवलम्ब्येत्यर्थः। ५ ज्ञानविषयभूतं कर्म कथं भवति "क्रि-याव्याप्यं कर्मेति" सूत्रसद्भावादिति दूषणं न भवत्येकार्थत्वादिति। ६ प्रमाता ७ प्रमाणम्। ८ प्रमितिः। ९ फलज्ञानम्। १० पञ्चमी। ११ शब्दवि-

यथा घटादिशब्दानुच्चारणेऽपि घटाद्यनुभवस्तथाऽहमहमिकया योऽयमन्तर्मुखाकारतयावभासः स शब्दानुच्चारणेऽपि स्वयमनुभूयत इत्यर्थः ॥ अमुमेवार्थमुपपत्तिपूर्वकं परं प्रति सोल्लुण्ठमाचष्टे—

को वा तत्प्रतिभासिनमर्थमध्यक्षमिच्छंस्तदेव तथा नेच्छेत् ॥ ११ ॥

को वा लौकिकः परीक्षको वा । तेन ज्ञानेन प्रतिभासितुं शीलं यस्य स यथोक्तस्तं प्रत्यक्षविषयमिच्छन् विषयीधर्मस्य विषये उपचारात् तदेव ज्ञानमेव तथा प्रत्यक्षत्वेन नेच्छेत् । अपि त्विच्छेदेव । अन्यथा अप्रामाणिकत्वप्रसङ्गः स्यादित्यर्थः ॥ अत्रोदाहरणमाह—

प्रदीपवदिति ॥ १२ ॥

इदमत्र तात्पर्यम्—ज्ञानं स्वावभासने स्वातिरिक्तसजाती-

कल्पप्रधानानां तेषां कर्मादीनाम् । १ अन्तर्जल्पाकारतया । २ ज्ञानम् । ३ ज्ञानस्य ग्राहकशक्तिशालित्वमर्थस्य ज्ञेयशक्तिशालित्वम् । ४ मुख्यतयार्थः प्रत्यक्षरूपो नास्ति किन्तूपचारात्प्रत्यक्षव्यवहारस्तत्र निमित्तं विषयविषयिसन्निपातः । ज्ञानधर्मः प्रत्यक्षत्वं घटाद्यर्थे उपचारः, मुख्याभावे सति प्रयोजने निमित्ते चोपचारः प्रवर्तत इति वचनात् । ५ यथैव हि प्रदीपस्य प्रकाशतां प्रत्यक्षतां वा विना तत्प्रतिभासिनोऽर्थस्य प्रत्यक्षता न स्यात् । ६ अर्थान्तरानपेक्षे—इत्येतावति साध्ये घटादिभिः सिद्धसाध्यता स्यात् तदुक्तं

यार्थान्तरानपेक्षं प्रत्यक्षार्थगुणत्वे सति अदृष्टानुयायिकरणत्वा-त्प्रदीपभासुराकारवत् ॥ अथ भवतु नामोक्तलक्षणलक्षितं प्रमाणं, तथापि तत्प्रामाण्यं स्वतः परतो वा । न तावत्स्वतः अविप्रतिपत्तिप्रसङ्गात् । नापि परतः—अनवस्थाप्रसङ्गादिति

सजातीयेति तस्मिन्नप्युच्यमाने पुरुषान्तरविज्ञानेन सिद्धसाध्यता स्यात्तन्निषेधार्थं स्वातिरिक्तग्रहणं, तथापि परार्थानुभवनेन सिद्धसाध्यता स्यादतस्तत्परिहारार्थं स्वाभासनग्रहणं साध्यं प्रति । १ करणत्वादित्येतावति साधने ऽदृष्टेन व्यभिचारोऽत उक्तमदृष्टानुयायीति, तथापि कुठारादिभिर्व्यभिचारोऽत उक्तं गुणत्वे सतीति, तथापि सन्निकर्षेण व्यभिचारोऽत उक्तं प्रत्यक्षार्थेति पुनरपि प्रकारान्तरेण व्यभिचारवारणायोच्यते करणत्वादिति साधने सति कुठारादिभिर्व्यभिचारस्तत्परिहारार्थं प्रत्यक्षार्थगुणत्वे सतीत्युच्यते, तावत्युच्यमानेऽदृष्टेन शक्तिना व्यभिचारोऽतस्तत्परिहारार्थमदृष्टानुयायिकरणत्वादित्युच्यते, अस्मिन्नुच्यमानेऽपि चक्षुरादिना व्यभिचारो ऽतस्तत्परिहारार्थं प्रत्यक्षार्थगुणत्वे सतीत्युच्यते । २ प्रदीपवदित्युक्ते प्रदीपस्य द्रव्यत्वेनागुणत्वात्साधनविकलोऽयं दृष्टान्तोऽत उक्तं भासुराकारवत् । ३ प्रामाण्यं स्वतोऽप्रामाण्यं परत इति मीमांसकाः, अप्रामाण्यं स्वतः प्रामाण्यं तु परत इति ताथागताः, उभयं स्वत इति सांख्याः, उभयमपि परत इति नैयायिकाः, उभयमपि कथञ्चित्स्वतः कथञ्चित्परत इति स्याद्वादिनो जैनाः । इत्येवं बहुवादिविप्रतिपत्तेः संशयः स्यात्तन्निराकरणार्थं प्रामाण्यं निरूपणीयमिति । ४ प्रामाण्यं सर्वथा स्वतश्चेदविप्रतिपत्तिप्रसङ्गोऽस्तु, तथा नास्ति । ५ जलज्ञानं प्रामाण्यं स्नानपानक्रियान्यथानुपपत्तेस्तद्यनुमानस्य प्रामाण्यं कुतोऽन्यस्मादेवमनवस्था-

मतद्वयमाशंक्य तन्निराकरणेन स्वमतमवस्थापयन्नाह—

तत्प्रामाण्यं[1] स्वतः परतश्चेति ॥ १३ ॥

सोपस्कार[2]ाणि हि वाक्यानि भवन्ति। तत इदं प्रतिपत्तव्यं—अभ्यासदशायां स्वतोऽनभ्यासदशायां च परत इति ॥ तेन[3] प्रागुक्तैकान्तद्वयनिरासः। नचानभ्यासदशायां परतः प्रामाण्येऽप्यनवस्था समा[4]ना, ज्ञानान्तरस्याभ्यस्तविषयस्य स्वतः प्रमाणभूतस्याङ्गीकरणात् ॥ अथवा प्रामाण्यमुत्पत्तौ परत एव, विशिष्टकारणप्रभवत्वाद्विशिष्टकार्यस्येति। विषये[5]-परिच्छित्तिलक्षणे प्रवृत्तिलक्षणे वा स्वे[6]कार्ये अभ्यासेतरदशापेक्षया क्वचित्स्वतः परतश्चेति निश्चीयते। ननू[7]त्पत्तौ विज्ञानकारणातिरिक्तका[8]रणान्तरसव्यपेक्षत्वमसिद्ध[9]म् प्रमाण्यस्य तदित[10]रस्यैवाभावात्। गुणा[11]ख्यमस्तीति वाङ्मात्रं, विधि-

---

चमूरिका परतः प्रामाण्यवादं चंचमीति। १ तस्य प्रमाणस्य (ज्ञानस्य) प्रामाण्यमिति तत्प्रामाण्यं प्रतिभातविषयाव्यभिचारित्वं सुनिश्चतासम्भववाधकत्वमिति। उत्पत्तिर्ज्ञप्तिश्चेति द्वेधा। २ शब्देन शब्दान्तरमेलनमुपस्कारस्तेन सहतानि सोपस्काराणि। ३ कारणेन। ४ जैनानां समाना। ५ जलज्ञाननिर्वृतिलक्षणे। ६ स्वस्य ज्ञानस्य कार्यं प्रामाण्यं तस्मिन्।

७ प्रामाण्यमुत्पत्तौ परत एव ज्ञानकारणातिरिक्तकारणान्तरसव्यपेक्षत्वात्प्रदीपवदित्युच्यमाने मीमांसकः प्राह। ८ चक्षुरादिनैर्मल्य। ९ यतो ज्ञानेनैव पुरुषा अनभ्यस्तप्रमाणकार्येऽपि प्रवर्तन्ते ततः ज्ञानातिरिक्तकारणान्तरसव्यपेक्षत्वमसिद्धमिति। १० ज्ञानातिरिक्तकारणान्तरस्यैव। ११ नयने गुणाः

मुखेन[1] कार्यमुखेन[2] वा गुणानामप्रतीते[3]: ॥ नाप्यप्रामाण्यं स्वत एव, प्रामाण्यं तु परत एवेति विपर्ययः शक्यते कल्पयितुम्[4] ॥ अन्वयव्यतिरेकाभ्यां हि त्रिरूपाल्लिङ्गादेव[5] केवलात्[6] प्रामाण्यमुत्पद्यमानं दृष्टम् । प्रत्यक्षादिष्वपि[7] तथैव प्रतिपत्तव्यं नान्यथेति । तत एवाऽऽप्तोक्तत्वगुणसद्भावेऽपि न तत्कृतमागमस्य प्रामाण्यम् । तत्र[8] हि गुणेभ्यो दोषाणामभावस्तदभावाच्च संशयविपर्यासलक्षणाप्रामाण्यद्वयासत्त्वेऽपि प्रामाण्यमौत्सर्गिकमनपोदितमास्त[9][10] एवेति । ततः[11] स्थितं प्रामाण्यमुत्पत्तौ न सामग्र्यन्तरसापेक्षमिति[12] ॥ नापि[13] विषयपरिच्छि-

---

सन्ति यथार्थोपलब्धेः प्रामाण्यान्यथानुपपत्तेरिति । १ प्रत्यक्षेण । २ अनुमानेन । ३ न खलु प्रत्यक्षं गुणान्प्रत्येतुं समर्थं तस्यातीन्द्रियार्थाप्रवृत्तेर्न गुणानां तेन प्रतीतिः, विरोधात्, नाप्यनुमानं तस्य प्रतिबन्धबलेनोत्पत्त्यभ्युपगमात्, प्रतिबन्धश्चेन्द्रियगुणैः सह लिङ्गस्य, स च प्रत्यक्षेण गृह्यतेऽनुमानेन वा ? न तावत्प्रत्यक्षेण तस्य तत्सम्बन्धग्रहणविरोधात्, नाप्यनुमानेन तस्यापि गृहीतसम्बन्धालिङ्गप्रभवत्वात, तत्राप्यनुमानान्तरेण तत्सम्बन्धग्रहणेऽनवस्थाप्रसङ्गात् । ४ यतः प्रत्यक्षानुमानादौ स्वतः प्रामाण्यप्रतिपादनादिति । ५ पक्षधर्मत्वसपक्षसत्वाविपक्षव्यावृत्तिरूपात् । ६ गुणानिरपेक्षात् । ७ इद जलमिति प्रत्यक्षज्ञाने तत्कारणादेव प्रामाण्यमुत्पद्यते इति प्रतिपत्तव्यं न भिन्नकारणेन । ८ आगमे । ९ स्वाभाविकम् । १० अबाधितमनिराकृतमिति । ११ विज्ञानकारणादेव प्रामाण्यमुत्पद्यमानं प्रतिभासते यतः । १२ विज्ञानातिरिक्तकारणान्तरापेक्षम् । १३ ज्ञप्तिपक्षोऽयम् ।

त्तिलक्षणे स्वकार्ये[1] स्वग्रहणसापेक्षम्[2] । अगृहीतप्रामाण्यादेव ज्ञानाद्विषयपरिच्छित्तिलक्षणकार्यदर्शनात् ॥ ननु[3] न परिच्छित्तिमात्रं प्रमाणकार्यं तस्य मिथ्याज्ञानेऽपि सद्भावात् । परिच्छित्तिविशेषं तु नागृहीतप्रामाण्यं विज्ञानं जनयतीति ॥ तदपि बालविलसितम् । नहि प्रामाण्यग्रहणोत्तरकालमुत्पत्त्यवस्थातः परिच्छित्तेर्विशेषोऽवभासते ऽगृहीतप्रामाण्यादपि विज्ञानान्निर्विशेषविषय[4]परिच्छेदोपलब्धेः ॥ ननु[5] परिच्छित्तिमात्रस्य शुक्तिकायां रजतज्ञानेऽपि सद्भावात्तस्यापि प्रमाणकार्यत्वप्रसङ्ग इति चेत्—भवेदेवं[6], यद्यर्थान्यथात्व[7]प्रत्ययस्वहेतूत्थदोषज्ञाना[8]भ्यां तन्नापाद्येत[9] ॥ तस्माद्यत्र[10] कारणदोषज्ञानं बाधकप्रत्ययो[11]

---

१ ज्ञानकार्ये । २ पूर्वमात्मनैव ज्ञानं (कर्तृ) प्रामाण्यं गृह्णातीत्ययमभिप्रायोऽस्य । ३ मीमांसकं प्रति नैयायिकः प्राह, प्रमाणकार्यं परिच्छित्तिमात्रं वा परिच्छित्तिविशेषो वेति पक्षद्वयमवलम्ब्य दूषयति । ४ पूर्वं यज्जलादि वस्तु दृष्टं तद्विहायान्यत्सुवर्णादिकं न दृश्यते इति निर्विशेषविषयपरिच्छेदोपलब्धिः । ५ नैयायिकः प्राह ।

६ मीमांसकः प्राह । प्रथमं सर्वज्ञानं प्रमाणमेवोत्पद्यते तस्माच्छुक्तिकायां रजतज्ञानमपि प्रथमं प्रमाणं भवेत् । ७ अर्थस्य रजतलक्षणस्यान्यथात्वं नेदं रजतं शुक्तिकेयं नीलपृष्ठत्रिकोणदर्शनादित्यनेन ज्ञानेन । ८ चक्षुरादिगतकाचकामलादिदोषज्ञानेन । ९ न निराक्रियेत । १० वस्तुनि । ११ शुक्तिकेयमि-

षा नोदेति, तत्र स्वत एव प्रामाण्यमिति ॥ नचैवमप्रामाण्ये-ऽप्याशङ्कनीयं, तस्य विज्ञानकारणातिरिक्तदोषस्वभावसामग्री-सव्यपेक्षतयोत्पत्तेः निवृत्तिलक्षणे च स्वकार्ये स्वग्रहणसापेक्ष-त्वात् ॥ तद्धि यावन्न ज्ञातं न तावत्स्वविषयात्पुरुषं निवर्तय-तीति ॥ तदेतत्सर्वमनल्पतमोविलसितम् ॥ तथाहि—न ताव-त्प्रामाण्यस्योत्पत्तौ सामग्र्यन्तरापेक्षत्वमसिद्धम् । आप्तप्रणीत-त्वलक्षणगुणसन्निधाने सत्येवाप्तप्रणीतवचनेषु प्रामाण्यदर्शनात्। यद्भावाभावाभ्यां यस्योत्पत्त्यनुत्पत्ती तत् तत्कारणकमिति लोके-ऽपि सुप्रसिद्धत्वात् ॥ यदुक्तम्—"विधिमुखेन कार्यमुखेन वा गुणानामप्रतीतिरिति" तत्र तावदाप्तप्रणीतशब्दे न प्रतीतिर्गु-णानामित्ययुक्तमाप्तप्रणीतत्वहानिप्रसङ्गात् ॥ अथ चक्षुरादौ गुणानामप्रतीतिरित्युच्यते तदप्ययुक्तम् । नैर्मल्यादिगुणाना-

---

त्यादि बाधकज्ञानम् । १ केवलं विज्ञानकारणचक्षुराद्यपेक्षयैव प्रामाण्यं परतः प्रतिपद्यते न तु गुणाद्यपेक्षया । उक्तञ्च—स्वतः सर्वप्रमाणानां प्रामाण्यमिति गम्यताम् । नहि स्वतोऽसती शक्तिः कर्तुमन्येन पार्यते । २ उत्पत्त्यवस्था-यामिति शेषः । ३ अप्रामाण्यं स्वत इति नाशंकनीयमिति । ४ यदि शुक्तिकायां रजतज्ञाने विज्ञानकारणातिरिक्तदोषाद्यपेक्ष्यस्तर्हि तन्निवृत्तिलक्षणे स्वग्रहणं कथमिति तन्निरूपयति । ५ आत्मग्रहणमिति । ६ यदा शुक्तिकायां रजतज्ञानं भवति तदा तन्निवृत्तिलक्षणेकार्ये न रजतं किन्तु शुक्तिकेयमिति ज्ञप्तिपक्षेऽप्रामाण्यं परत एवेति प्रदर्श्यते । ७ नैर्मल्यादि-गुण । ८ यत्सदसद्भ्यां । ९ मीमांसकः प्राह । १० गुणानां

मबलाबालादिभिरप्युपलब्धेः ॥ अथ[1] नैर्मल्यं स्वरूपमेव न गुणः तर्हि[2] हेतोरविनाभाववैकल्यमपि स्वरूपविकलतैव न दोष इति समानम्[3] ॥ अथ तद्वैकल्यमेव दोषः तर्हि लिङ्गस्य[4] चक्षुरादेर्वा तत्स्वरूपसाकल्यमेव गुणः कथं न भवेत् ? आप्तोक्तेऽपि[5] शब्दे[6] मोहादि[7]लक्षणस्य दोषस्याभावमेव यथार्थज्ञानादि[8]लक्षणगुणसद्भावमभ्युपगच्छन्यत्र[9] तथा[10] नेच्छतीति कथमनुन्मत्तः[11] ? अथोक्तमेव—शब्दे गुणाः[12] सन्तोऽपि न प्रामाण्योत्पत्तौ व्याप्रियन्ते किन्तु दोषाभाव एवेति । सत्यमुक्तं, किन्तु न युक्तमेतत् । प्रतिज्ञामात्रेण साध्यसिद्धेरयोगात् । नहि गुणेभ्यो दोषाणामभाव इत्यत्र किञ्चिन्निबन्धनमुत्पश्यामोऽन्यत्र महामोहात्[13] । अथानुमानेऽपि त्रिरूपलिङ्गमात्रजनितप्रामाण्योपलब्धिरेव तत्र[14] हेतु[15]रिति चेन्न । उक्तोत्तरत्वात्[16] । तत्र[17] हि

प्रतीतिः सर्वथा नास्तीति वदति मीमांसकः । तस्मात्कुत्रचित्स्थले गुणाः सन्तीतिदर्शयित्वाग्रेतन्मतं खण्डयति । १ गुणगुणिनोरभेदात् । २ अतो दोषोऽपि न भिन्नः । ३ यथा नैर्मल्यादिगुणाभावे स्वतः प्रामाण्यं जैनानां समायाति तथा दोषाभावे स्वतोऽप्रामाण्यं मीमांसकानामपि स्यादिति समानम् । ४ कारणस्य ।

५ न केवलमपौरुषेये वेद इत्यपि शब्दार्थः । ६ आगमे । ७ आदिशब्देन रागद्वेषौ गृह्येते । ८ आदिशब्देन वैराग्यक्षमे गृह्येते । ९ नैर्मल्यादौ । १० गुणसद्भावं । ११ काकुः । १२ पूर्वापरविरोधरहितत्वादयः । १३ महामोहं वर्जयित्वा । १४ दोषाभावे । १५ कारणम् । १६ तर्हि लिङ्गस्य चक्षुरादेर्वा तत्स्वरूपसाकल्यमेव गुण इत्यादिप्रकारेण । १७ हेतौ ।

त्रै[1]रूप्यमेव गुणो यथा तद्वैकल्यं दोष इति ना[2]संमतो हेतुः । अपि चाप्रामाण्येऽप्येवं वक्तुं शक्यत एव । तत्र हि दोषेभ्यो गुणानामभावस्तदभावाच्च प्रामाण्यासत्त्वे ऽप्रामाण्यमौत्सर्गिकमस्त इत्यप्रामाण्यं स्वत[3] एवेति तस्य भिन्नकारणप्रभवत्ववर्णनमुन्मत्तभाषितमेव स्यात् । किञ्च[4] गुणेभ्यो दोषाणामभाव इत्यभिदधता[5] गुणेभ्यो गुणा एवेत्यभिहितं स्यात् । भावान्तर[6]स्वभावत्वादभावस्य[7] । ततोऽप्रामाण्यासत्त्वं प्रामाण्यमेवेति नैतावता परपक्षप्रतिक्षेपः, अविरोधकत्वात् । तथा अनुमानतो[8]ऽपि गुणाः प्रतीयन्त एव, तथाहि—प्रामाण्यं विज्ञानकारणातिरिक्तकारणप्रभवं, विज्ञानान्यत्वे[9] सति कार्यत्वादप्रामाण्यवत् । तथा प्रमाणप्रामाण्ये भिन्नकारणजन्ये, भिन्नकार्यत्वात्, घटवस्त्रवदिति च । ततः स्थितं प्रामा-

---

१ अविनाभावित्वम् गुणस्तद्वैकल्यमेव दोषः । २ कथं न सम्मतो हेतुः । ३ एवं च सति प्रामाण्यं परत एव जायते गुणेभ्यो दोषाणामभाव इत्यादिना । ४ प्रकारान्तरेण वदति । ५ त्वया मीमांसकेन । ६ भावान्तरस्वभावो हि कयाचित् व्यपेक्षया घटाभावस्य कपालस्वभाववत् । ७ प्रध्वंसाभावस्य । ८ प्रत्यक्षप्रकारेणोक्तमनुमानतोऽपि गुणाः प्रतीयन्ते न केवलं प्रत्यक्षादित्यपि शब्दार्थः । ९ कार्यत्वादित्युक्ते विज्ञानेन व्यभिचारो यतस्तत्कार्यं परन्तु तत्र साध्यत्वं नास्ति ततो हेतोः साध्यविरुद्धव्याप्तत्वाद्व्यभिचारित्वमतो विज्ञानान्यत्वेसतीत्युक्तमेवं सति नित्यत्वादात्मना व्यभिचारो यतोऽसौ विज्ञानादन्यो भवति कारणप्रभवो न भवति ततः सर्वं साधनमिति ।

ण्यमुत्पत्तौ [१]परापेक्षमिति । [२]तथा विषयपरिच्छित्तिलक्षणे वा स्व[३]कार्ये स्वग्रहणं नापेक्षत इति नैकान्तः क्वचिदभ्यस्तविषय एव परानपेक्षत्वव्यव[४]स्थानात् । अनभ्यस्ते तु जलमरीचिका-साधारणप्रदेशे जलज्ञानं परापे[५]क्षमेव । सत्यमिदं जलं, विशिष्टा-कारधारित्वात् घटचेटिकापेटकदर्दुरारावसरोजगन्धवत्त्वाच्च, परिदृष्टजलवदित्यनुमानज्ञानादर्थक्रिया[६]ज्ञानाच्च, स्वतःसिद्ध-प्रामाण्यात्प्राचीनज्ञान[७]स्य याथार्थ्य[८]माकल्प[९]मवकल्प्[१०]यत एव ॥ य[११]दप्यभिहितं प्रा[१२]माण्यग्रहणोत्तरकालमुत्पत्त्यवस्थातः परिच्छि-त्तेर्विशेषो नावभासत इति । तत्र यद्यभ्यस्तविषये[१३] नावभा-सत इत्युच्यते तदा तदि[१४]ष्यत एव । तत्र प्रथममेव निःसंशयं विषयपरिच्छित्तिविशेषाभ्युपगमात् । अनभ्यस्तविषये तु तद्[१५]ग्रह-णोत्तरका[१६]लमस्त्येव विषयावधारणस्वभावपरि[१७]च्छित्तिविशेषः । पूर्वं [१८]प्रमाणाप्रमाणसाधारण्या एव परिच्छित्तेरुत्पत्तेः । न[१९]नु

१ अनुमानापेक्षम् । २ यथोत्पत्तावनुमानस्य परानपेक्षत्वं न घटते । ३ प्रमाणकार्ये । ४ समर्थनात् । ५ अनुमानादि । ६ स्नानपानादि । ७ पूर्वजलज्ञानस्य । ८ परमार्थत्वं । ९ कल्पपर्यन्तम् । १० निश्चीयते । ११ त्वया मीमांसकेन । १२ विकल्पद्वयं कृत्वोच्यते । १३ अनुमानसापेक्षं परिच्छित्तिविशेषः । १४ मयापि तदिष्यते यदतीतानागतवर्तमानेषु त्रिषु कालेषु दूषणं नास्तीत्यर्थः । १५ प्रमाणग्रहण । १६ सप्तम्यर्थेऽकर्मकधातुभिरित्यादिना द्वितीया । अन्धकूपवद्यथान्धकूपे जलं नास्तीति निश्चितं वर्तते तदाप्ययं प्रतिपादयति यदन्धकूपे जलं नास्तीति । १७ नियमेन सत्यमेव जलमित्यादिपरिच्छित्तिविशेषः । १८ अनभ्यस्तविषय एव । १९ मीमांसकः प्राह ।

प्रामाण्यपरिच्छित्त्योरभेदात्कथं पौर्वापर्यमिति ? नैवम् । नहि सर्वाऽपि परिच्छित्तिः प्रामाण्यात्मिका, प्रामाण्यं तु परिच्छित्त्यात्मकमेवेति न दोषः[1] । यदप्युक्तम्—बाधककारणदोषज्ञानाभ्यां[2] प्रामाण्यमपोद्यते[3][4] इति—तदपि फल्गुभाषितमेव । अप्रामाण्येऽपि तथा वक्तुं शक्यत्वात् । तथाहि—प्रथममप्रमाणमेव ज्ञानमुत्पद्यते पश्चाद्बाधबोधगुणज्ञानोत्तरकालं तदपोद्यत इति । तस्मात्प्रामाण्यमप्रामाण्यं वा स्वकार्ये क्वचिदभ्यासनभ्यासापेक्षया स्वतः परतश्चेति निर्णेतव्यमिति[5] ॥

देवस्य सम्मतमपास्तसमस्तदोषं
वीक्ष्य प्रपञ्चरुचिरं रचितं समस्य ।
माणिक्यनन्दिविभुना शिशुबोधहेतो-
र्मानस्वरूपममुना[6] स्फुटमभ्यधायि ॥ १ ॥

इति परीक्षामुखलघुवृत्तौ प्रमाणस्य स्वरूपोद्देशः ॥ १ ॥

---

१ इति न विरोधः । २ ज्ञानवरणादि बाधकं, काचकामलादिदोषः, बाधकं च कारणदोषज्ञानञ्च ताभ्याम् । ३ परिच्छित्यात्मकम् । ४ निराक्रियते । ५ स्वतो बुद्धो ऽन्यतो यौगो ज्ञप्त्युत्पत्योर्द्वयं स्वतः । प्रामाण्यं परतोऽन्यच्च, जैमिनिः कपिलो यथा । ६ अदस्तु विप्रकृष्टं दूरतरं तेन,

अथ प्रमाणस्वरूपविप्रतिपत्तिं निरस्येदानीं संख्याविप्रतिपत्तिं प्रतिक्षिपन्सकलप्रमाणभेदसन्दर्भसंग्रहपरं प्रमाणेयत्ताप्रतिपादकं वाक्यमाह—

तद्द्वेधेति ॥ १ ॥

तच्छब्देन प्रमाणं परामृश्यते । तत्प्रमाणं स्वरूपेणावगतं द्वेधा द्विप्रकारमेव । सकलप्रमाणभेदानामत्रैवान्तर्भावात् ॥ तद्द्वित्वमध्यक्षानुमानप्रकारेणापि सम्भवतीति तदाशङ्कानिराकरणार्थं सकलप्रमाणभेदसंग्रहशालिनीं संख्यां प्रव्यक्तीकरोति—

प्रत्यक्षेतरभेदादिति ॥ २ ॥

प्रत्यक्षं वक्ष्यमाणलक्षणं, इतरत्परोक्षं, ताभ्यां भेदात्प्रमाण-

---

अनन्तवीर्येण मया । १ परस्परापेक्षाणां पदानां निरपेक्षसमुदायो वाक्यम् । २ तच्छब्देन व्याप्तिप्रत्यासत्त्योः प्रत्यासत्तिः गरीयसीति न्यायमाश्रित्य प्रामाण्यं न परिगृह्यतेऽपि तु गौणमुख्ययोर्मुख्ये कार्यः सम्प्रत्यय इति प्रमाणमेव परामृश्यते, यतः प्रमाणस्य मुख्यत्वं प्रकृतप्रमेयत्वात् प्रामाण्यस्य गौणत्वमानुषङ्गिकप्रमेयत्वादिति । ३ सकलं निर्धारणमेवेति न्यायादेवकारः । ४ अनुमानादीनाम् । ५ द्वित्वसंख्यायाम् । ६ व्यक्तिभेदे लक्षणैकत्वमन्तर्भावः । ७ अक्षमात्मानं प्रत्याश्रितं प्रत्यक्षमिति मुख्यप्रत्यमक्षमक्षं प्रति वर्तते इति प्रत्यक्षं सांव्यवहारिकप्रत्यक्षम् । ८ अक्ष्णोति व्याप्नोति तान्तान् गुणपर्यायानित्यक्ष आत्मा तस्मात्परावृत्तं परोक्षमथवा परैरिन्द्रि-

स्येति शेषः । न हि परपरिकल्पितैकद्वित्रिचतुःपञ्चषट्प्रमाणसंख्यानियमे निखिलप्रमाणभेदानामन्तर्भावविभावना शक्या कर्तुम् । तथाहि—प्रत्यक्षैकप्रमाणवादिनश्चार्वाकस्य नाध्यक्षे लैङ्गिकस्यान्तर्भावो युक्तः तस्य तद्विलक्षणत्वात्, सामग्रीस्वरूपभेदात् ॥ अथ नाप्रत्यक्षं प्रमाणमस्ति विसंवादसंभवात् । निश्चिताविनाभावाल्लिङ्गाल्लिङ्गिनि ज्ञानमनुमानमित्यानुमानिकशासनं, तत्र च स्वभावलिङ्गस्य बहुलमन्यथाऽपि भावो दृश्यते । तथाहि कषायरसोपेतानामामलकानामेतद्देशकालसम्बधिनां दर्शनेऽपि देशान्तरे कालान्तरे द्रव्यान्तरसम्बन्धे चान्यथाऽपि दर्शनात्स्वभावहेतुर्व्यभिचार्येव लताचूतवल्लताशिंशपादिस-

---

याभिरुच्यते सिंच्यते ऽभिवर्द्धत इति परोक्षम् । १ जैमिनेः षट्प्रमाणानि, चत्वारि न्यायवादिनः । सांख्यस्य त्रीणि वाच्यानि द्वे वैशेषिकबौद्धयोः ॥१॥ २ चार्वाकसौगतवैशेषिकसांख्यनैयायिकप्राभाकरभाट्टाः । ३ लिङ्गाज्जातस्यानुमानस्य । ४ प्रत्यक्षज्ञानविलक्षणत्वात् । ५ चार्वाकः प्राह । ६ इत्यत्र चार्वाकेन साध्यसाधनभावः स्वीकृतोऽनुमानेन तथापि नाङ्गीकरोति । ७ व्यभिचारसम्भवादर्थक्रियाकारित्वासम्भवादिति । ८ स्वभावकार्यानुपलब्धिभेदात् । ९ सौगताभिमतस्य । १० साध्यं विनाऽपि । ११ सद्भावः । १२ स्वभावहेतोर्व्यभिचारित्वं दर्शयति । १३ दुग्धादिद्रव्यसिंचने । १४ मधुरसोपेतत्वेनाऽपि । १५ इदं फलं कषायरसोपेतमामलकफलत्वात्परिदृष्टामलकफलवत्, इत्यत्र मधुरसोपेतामलकफलेन व्यभिचारः । १६ वृक्षोऽयं चूतत्वादित्यत्र देशान्तरे सम्भवलताचूतेन व्यभिचारः । १७ वृक्षोऽयं शिंशपात्वादित्यत्र देशान्तरसम्भवाशिंशपालतया

ऽभावनाच्च । तथा[1] कार्यलिङ्गमपि गोपाल[2]घटिकादौ धूमस्य शक्र[3]मूर्ध्नि चान्यथा[4]ऽपि भावात्पावकव्यभिचार्येव । ततः[5] प्रत्यक्षमेवैकं प्रमाणमस्यैवाविसंवादकत्वादिति । तदेतद्बालविलसितमिवाभात्युपपत्तिशून्यत्वात् । तथाहि—किमप्रत्यक्षस्योत्पादककारणाभावादालम्बनाभावाद्वा प्रामाण्यं निषिध्यते ? तत्र[6] न तावत्प्राक्तनः पक्षः । तदुत्पादकस्य सुनिश्चितान्यथानु[7]पपत्तिनियतनिश्चयलक्षणस्य साधनस्य सद्भावात् । नो खल्वप्युदीचीनः[8] पक्षः । तदा[9]लम्बनस्य पावकादेः सकलविचारचतुरचेतसि सर्वदा प्रतीयमानत्वात् । यदपि स्वभावहेतोर्व्यभिचारसम्भावनमुक्तम् । तदप्यनुचितमेव—स्वभावमात्रस्याहेतुत्वात् । व्याप्य[10]रूपस्यैव स्वभावस्य व्यापकं[11] प्रति गमकत्वाभ्युपगमात् । न च व्याप्यस्य व्यापकव्यभिचारित्वं व्याप्यत्वविरोधप्रसङ्गात् ॥ किञ्चैवं[12]-वादिनो नाध्यक्षं प्रमाणं व्यवतिष्ठते । तत्रा[13]प्यसंवादस्य[14] गौणत्वस्य[15] च[16] प्रामाण्याविना-

---

व्यभिचारोऽतः स्वभावहेतुर्व्यभिचारी । १ कार्यहेतोर्व्यभिचारित्वं दर्शयति । २ इन्द्रजालघटिकादौ । ३ वामलूरशिरसि । ४ अग्निं विनापि । ५ स्वभावकार्यहेत्वोरविनाभावित्वाभावात्तदुद्भूतानुमानस्य प्रमाणत्वं न घटते यतः । ६ उत्पादककारणत्वालम्बनयोर्मध्ये । ७ साध्यमन्तरेण साधनानुपपत्तिः । ८ द्वितीयः पक्षः । ९ अप्रत्यक्षालम्बनस्य । १० शिंशपात्वस्य । ११ वृक्षत्वं प्रति । १२ अनुमानप्रमाणवादिनस्तव स्वभावहेतुर्व्यभिचारीति वादिनः । १३ प्रत्यक्षेऽपि । १४ प्रत्यक्षं प्रमाणमविसम्वादकत्वादगौणत्वाच्चेत्यनुमानेन । १५ मुख्यत्वस्य । १६ प्रत्य-

भावित्वेन निश्चेतुमशक्यत्वात् । यच्च कार्यहेतोरप्यन्यथा[1]पि सम्भावनं तदप्यशिक्षितलक्षितं सुविवेचित[2]स्य कार्यस्य कारणाव्यभिचारित्वात् । यादृशो हि धूमो ज्वलनकार्यं भूधरनितम्बादावतिबहलधवलतया प्रसर्पन्नुपलभ्यते, न तादृशो गोपालघटिकादाविति ॥ यदप्युक्तम् "शक्रमूर्द्धनि धूमस्यान्यथापि भाव इति" तत्र किमयं शक्रमूर्द्धा अग्निस्वभावोऽन्यथा[3] वा ? यद्यग्निस्वभावस्तदाग्निरेवेति कथं तदुद्भूत[4]धूमस्यान्यथाभा[5]वः शक्यते कल्पयितुम् । अथानग्निस्वभावस्तदा तदुद्भवो[6] धूम एव न भवतीति कथं तस्य[7] तद्व्य[8]भिचारित्वमिति । तथाचोक्तम्—अग्निस्वभावः शक्रस्य मूर्द्धा चेदग्निरेव सः । अथानग्निस्वभावोऽसौ धूमस्तत्र कथं भवेदिति ॥ १ ॥ किञ्च प्रत्यक्षं प्रमाणमिति कथम[9]यं प[10]रं प्रतिपादयेत् । परस्य[11] प्रत्य[12]क्षेण गृहीतुमशक्यत्वात् । व्याहा[13]रादिकार्यप्रदर्शनात्त[14]त्तं प्रतिपादयेदिति चेदायातं तर्हि कार्यात्कारणानुमानम् । अथ लोकव्यवहारापेक्षये-

---

क्षप्रामाण्येऽप्रवर्तमानप्रत्यक्षेण निश्चेतुमशक्यस्य । १ अग्निं विनापि । २ सुनिश्चितस्य । ३ अनग्निस्वभावो वा । ४ अग्निस्वभाववामलूरोत्पन्नधूमस्य । ५ अग्निव्यभिचारित्वम् । ६ वामलूरोत्पन्नः । ७ धूमस्य । ८ अग्निव्यभिचारित्वम् । ९ चार्वाकः । १० शिष्यम् । ११ आत्मनः (शिष्यस्य) १२ प्रत्यक्षेण शरीरस्यैव ग्रहणादात्मनः शरीरादभिन्नत्वाच्छरीरेणात्मनोऽपि ग्रहणमिति चेन्न शरीरप्रत्यक्षेऽपि बुद्धिविकल्पे संशयात्ततः शरीरमात्रं दृष्ट्वा पण्डितोऽयं मूर्खो वेति निश्चयो न भवत्यन्यथा परीक्षामन्तरेणापि तस्य सन्मानावमानयोः प्रसङ्गात् । १३ वचनचातुर्यादि । १४ बुभुत्सुम् ।

ष्यत एवानुमानमपि, परलोकादावेवानभ्युपगमात्तदभावा-दिति । कथं तदभावोऽनुपलब्धेरिति चेत्—तदाऽनुपलब्धि-लिङ्गजनितमनुमानमपरमापतितमिति । प्रत्यक्षप्रामाण्यमपि स्वभावहेतुजातानुमितिमन्तरेण नोपपत्तिमियर्तीति प्रागेवोक्त-मित्युपरम्यते[1] ॥ यदप्युक्तं[2] धर्मकीर्तिना—प्रमाणेतरसामान्य-[3][4] स्थितेरन्यधियो[5][6] गतेः । प्रमाणान्तरसद्भावः प्रतिषेधाच्च कस्य-चिदिति ॥ २ ॥ ततः[9] प्रत्यक्षमनुमानमिति प्रमाणद्वयमेवेति सौगतः । सोऽपि[10] न युक्तवादी । स्मृतेरविसंवादिन्यास्तृती-यायाः प्रमाणभूतायाः सद्भावात् । न च तस्या विसंवादाद-प्रामाण्यम् । दत्तग्रहादि[11]विलोपापत्तेः । अथानुभूयमानस्य[12] विष-

---

१ तूष्णीं स्थीयते । २ बौद्धेन प्रमाणविनिश्चये । ३ अ-विसंवादित्वविसम्वादित्वस्वभावालिङ्गद्वयं विना प्रमाणसामान्याप्रमाण-सामान्यद्वयं न व्यवतिष्ठते, व्याहारादिकार्यमन्तरेणान्यधियो गतिः (पटुबुद्धि-निश्चयो) न भवति तथानुपलब्धिलिङ्गमन्तरेण परलोकादेः प्रतिषेधो न घटत इत्यनुपपद्यमानप्रमाणेतरसामान्यस्थित्यन्यधीगतिपरलोकप्रतिषेधसाधकस्वभावा-दिलिङ्गत्रयं प्रमाणान्तरस्यानुमानस्य समीचीनभावं साधयतीति सर्वो-ऽपि कारिकार्थः । ४ अप्रमाण । ५ शिष्य । ६ कार्यहेतो र्व्याहारादेः । ७ ज्ञानात् । ८ परलोकादेः । ९ चार्वाकं प्रमा-णान्तरापादनं यतः । १० सौगतोऽपि न यथार्थवादी । ११ यस्य हस्ते मया तद्धनं दत्तं सोऽमुक इति तन्मे स्वधनमियन्मात्रमित्यादिलक्षणस्मरणानु-त्पादस्तदभावाच्च स एवायं धनहर्तेत्येवमादिरूपप्रत्यभिज्ञानाभावादहमस्माद्ध-नमुपाददेऽसौ वा मदीयधनहर्ता भवतीति तत्र स्वधनं प्रार्थये । १२ ज्ञायमा-

यस्याभावात् स्मृतेरप्रामाण्यं, न[1], तथापि[2] अनुभूतेनार्थेन सावल-
म्बनत्वोपपत्तेः । अन्यथा[3] प्रत्यक्षस्याप्यनुभूतार्थविषयत्वादप्रा-[4]
माण्यमनिवार्यं स्यात् । स्वविषयावभासनं स्मरणेऽप्यविशिष्ट-
मिति । किञ्च स्मृतेरप्रामाण्येऽनुमानवार्तापि दुर्लभा । तया[5]-
ऽर्थाप्तेर्विपर्यीकरणे[6] तदुत्थानायोगादिति ॥ तत इदं वक्तव्यम्—
"स्मृतिः प्रमाणम्, अनुमानप्रामाण्यान्यथानुपपत्तेरिति" सैव
प्रत्यक्षानुमानस्वरूपतया प्रमाणस्य द्वित्वसंख्यानियमं विघट-
यतीति किं नश्चिन्तया । तथा[9] प्रत्यभिज्ञानमपि सौगतीयप्र-
माणसंख्यां विघटयत्येव । तस्यापि प्रत्यक्षानुमानयोरनन्तर्भा-
वात् । ननु[10] तदिति स्मरणमिदमिति प्रत्यक्षमिति ज्ञानद्वयमेव,
न ताभ्यां[11] विभिन्नं प्रत्यभिज्ञानाख्यं वयं प्रतिपद्यमानं प्रमाणा-
न्तरमुपलभामहे । कथं तेन[12] प्रमाणसंख्याविघटनमिति तदप्य[13]

तस्य पदार्थस्य । १ बौद्धं प्रति जैनः प्राहेति चेन्न । २ अनुभूय-
मानविषयाभावेऽपि । ३ उक्तविपर्ययार्थमन्यथा शब्दोऽनुभूतेनार्थेन स्मृतेः
सावलम्बनत्वेऽपि तदप्रामाण्ये । ४ भिन्नकालं कथं ग्राह्यमिति चेद्ग्राह्यतां
विदुः । हेतुत्वमेव युक्तिज्ञास्तदाकारार्पणक्षमम् ॥ १ ॥ इत्यनेन सौगतानामपि
प्रत्यक्षस्यातीतार्थविषयत्वात्तस्याप्यप्रामाण्यम् स्यादथवानुभूतार्थविषयमात्रेण
स्मृतेरप्रामाण्येऽनुमानेनाधिगतेऽर्थे यत्प्रत्यक्षं तदप्यप्रमाणं स्यादनुभूतार्थ-
विषयत्वाविशेषादिति । ५ स्मृत्या । ६ साध्यसाधनसम्बन्धस्य । ७ अ-
स्मरणे । ८ अनुमानप्रमाण्याभावादिति । ९ स्मृतिप्रकारेण ।
१० बौद्धः प्राह भो जैन । ११ स्मरणप्रत्यक्षाभ्याम् । १२ प्रत्यभिज्ञा-
नेन । १३ जैनः प्राह भो बौद्ध । त्वदुक्तमयुक्तमेव ततः संख्यां विघ-

घटितमेव, यतः स्मरणप्रत्यक्षाभ्यां प्रत्यभिज्ञानविषयस्यार्थस्य गृहीतुमशक्यत्वात्[१]। पूर्वोत्तरवि[२]वर्तवर्त्येकद्रव्यं हि प्रत्यभिज्ञाविषयः। न च तत्स्मरणेनोपलभ्य(क्ष्य)ते तस्यानुभूतविषयत्वात्। नापि प्रत्यक्षेण तस्य वर्त्तमान[३]विवर्तवर्तित्वात्। यदप्युक्तम्—"ता[४]भ्यां भिन्नमन्यत् ज्ञानं नास्तीति।" तदप्ययुक्तमभेदपरा[५]मर्शरूपतया भिन्नस्यैवावभासनात्। न [६]तयोरन्यतरस्य वाऽभेदपरामर्शकत्वमस्ति विभिन्नविषयत्वात्। न चै[७]तत्[८]प्रत्यक्षेऽन्तर्भवत्यनुमाने वा तयोः पुरोऽवस्थितार्थविषय[९]त्वेनाविनाभूतलिङ्गसम्भावितार्थविषय[१०]त्वेन च पूर्वापरविकारव्याप्येकत्वाविषयत्वात्। नापि स्मरणे, तेनापि तदेकत्व[११]स्याविषयीकरणात्॥

[१२]अथ सं[१३]स्कारस्मरणसहकृतमिन्द्रियमेव प्रत्यभिज्ञानं जनयतीन्द्रियजं चाध्यक्षमेवेति न प्रमाणान्तरमित्यपरः। सोऽप्यति

टयत्येव। १ कोऽयं प्रत्यभिज्ञानस्य विषय इति मनसि कृत्वा तमेवाह। २ पर्याय। ३ सम्बद्धं वर्तमानञ्च गृह्यते चक्षुरादिनामुना प्रमाणेन तस्य वर्तमानविषयत्वसमर्थनादिति। ४ स्मरणप्रत्यक्षाभ्याम्। ५ पूर्वोत्तरविवर्त्तवृत्त्येकद्रव्यपरामर्शोऽभेदपरामर्शः। ६ स्मरणप्रत्यक्षयोः। ७ प्रत्यभिज्ञानम्। ८ प्रत्यक्षानुमानयोः। ९ प्रत्यक्षस्य विषयः प्रदर्शितः। १० अनुमानस्य विषयः प्रदर्शितः। ११ पूर्वापरविकारव्याप्येकत्वस्य। १२ योगः प्राह। १३ प्रत्यक्षविशेषो धारणाज्ञानं संस्कारः। स्वाश्रयस्य प्रागुद्भूतावस्थासमानावस्थान्तरापादको ऽतीन्द्रियो धर्मो वा संस्कारः।

बालिश एव[1] । स्वविषयाभिमुख्येन[2] प्रवर्त्तमानस्येन्द्रियस्य सहकारिशतसमवधानेऽपि[3] विषयान्तरप्रवृत्तिलक्षणातिशयायोगात् । विषयान्तरं चातीतसाम्प्रतिकावस्थाव्याप्येकद्रव्यमिन्द्रियाणां रूपादिगोचरचारित्वेन चरितार्थत्वाच्च[4] ॥ नाप्यदृष्ट[5]सहकारिसव्यपेक्षमिन्द्रियमेकत्वविषयं । उक्तदोषादेव ॥ किञ्चादृष्टसंस्कारादिसव्यपेक्षादेवात्मनस्तद्विज्ञानमितिकिन्न[6] कल्प्यते[7]? दृश्यते हि स्वप्नसारस्वतचाण्डालिकादिविद्यासंस्कृतादात्मनो विशिष्टज्ञानोत्पत्तिरिति ॥ नन्वञ्जनादिसंस्कृतमपि[11] चक्षुः सातिशयमुपलभ्यत इति चेन्न, तस्य[12] स्वार्थानतिक्रमेणैवा[13]तिशयोपलब्धेर्न विषयान्तरग्रहणलक्षणातिशयस्य[14][15] । तथाचोक्तम्[16]—यत्राऽप्यतिशयो[17] दृष्टः स स्वार्थानतिलंघनात्[18] । दूरसू-

---

१ भो यौग प्रत्यक्षविषयं ब्रूषे तदयुक्तं किंच विषयान्तरमप्यस्तीत्यनूद्य प्रतिपादयति । २ विषयवृत्तित्वेन । ३ संनिधानेऽपि । ४ प्रवृत्तार्थत्वात् । ५ पुण्यपापलक्षण । मतान्तरं विधिनिषेधजन्यत्वे सत्यतीन्द्रियत्वमित्युक्तम् । ६ एकत्वग्राहकत्वमात्मनः कल्पनीयं नत्विन्द्रियस्य । ७ त्वया यौगेन । ८ अतीतानागतवर्तमानलाभालाभादिज्ञापिका स्वप्नविद्या । ९ असाधारणवादित्वकवित्वादिविज्ञापनी सारस्वतविद्या । १० नष्टमुष्ट्यादिसूचिका चाण्डालिका विद्या, मन्त्रविशेषः । ११ न केवलमात्मा । १२ चक्षुषो । १३ सांनिहितवर्तमानरूपानातिक्रमेणैव । १४ रसादि । १५ उपलब्धि । १६ भट्टेन मीमांसकश्लोकवार्तिके । १७ गृद्धवराहादिनेत्रादौ, यतो चक्षुःप्रावल्यं गृद्धस्य, श्रोतृप्रावल्यं वराहस्य । १८ स्वविषयानतिघङ्घनादेवातिशयो

क्षमादिदृष्टौ स्यान्न रूपे श्रोत्रवृत्तित इति ॥ ३ ॥ नन्वस्य वार्तिकस्य सर्वज्ञप्रतिषेधपरत्वाद्विषमो दृष्टान्त इतिचेन्न-इन्द्रियाणां विषयान्तरप्रवृत्तावतिशयाभावमात्रे सादृश्यात् दृष्टान्तत्वोपपत्तेः । न हि सर्वो दृष्टान्तधर्मो दार्ष्टान्तिके भवितुमर्हति । अन्यथा दृष्टान्त एव न स्यादिति । ततः स्थितं प्रत्यक्षानुमानाभ्यामर्थान्तरं प्रत्यभिज्ञानं सामग्रीस्वरूपभेदादिति । न चैतदप्रमाणं ततोऽर्थं परिच्छिद्य प्रवर्त्तमानस्यार्थक्रियायामविसम्वादात् प्रत्यक्षवदिति। नचैकत्वापलापे बन्धमोक्षादिव्यवस्थानुमानव्यवस्था वा । एकत्वाभावे बद्धस्यैव मोक्षादगृहीतसम्बन्धस्यैव लिङ्गस्यादर्शनादनुमानस्य च व्य-

---

दृष्टो नाविषये । १ योगो जैनं प्राह । २ उक्तानुक्तदुरुक्तव्यतिकारि वार्त्तिकम् । उक्तानुक्तदुरुक्तानां, चिन्ता यत्र प्रवर्तते । तं ग्रन्थं वार्तिकम् प्राहुर्वार्तिकज्ञा मनीषणः । १ । श्लोकवार्तिके वार्तिकस्येत्यनेन प्रकारेण लक्षणमुक्तम्—सूत्राणामनुपपत्तिचोदना तत्परिहारो विशेषाभिधानञ्च । ३ न त्वत्र सर्वज्ञनिराकरणम् । ४ पूर्वोत्तरविवर्त्तैकत्वं प्रत्यक्षानुमानयोरविषयो यतः । ५ प्रत्यभिज्ञानमप्रमाणं रजतज्ञानवदिति चेन्न । ६ प्रतिभिज्ञानात् । ७ ज्ञात्वा । ८ पुरुषस्य । ९ यो यत्रैव, स तत्रैव, यो यदैव स तदैव सः । न देशकालयोर्व्याप्ति र्भावानामिह दृश्यते । २ । इत्येकत्वापलापो बौद्धानां पूर्वोत्तरविवर्तवृत्त्येकद्रव्यस्यापन्हवे सति क्षणिकत्वाङ्गीक्रियमाणे च सति । १० गृहीतसम्बन्धस्यादर्शनं भवत्येकत्वापलापे सति । ११ महानसेऽग्निधूमयोर्गृहीतसम्बन्धस्य धूमलक्षणस्य लिङ्गस्यादर्शनादिति ।

वस्थायोगादिति । नचास्य[1] विषये बाधकप्रमाणसद्भावाद्-प्रामाण्यं तद्विषये प्रत्यक्षस्य लैङ्गिकस्य चाप्रवृत्तेः । प्रवृत्तौ वा प्रत्युत साधकत्वमेव न बाधकत्वमित्यलमतिप्रसंगेन । तथा[2] सौगतस्य प्रमाणसङ्ख्याविरोधिविध्वस्तबाधं तर्काख्य[3]-मुपढौकत एव । नचैतत्प्रत्यक्षेऽन्तर्भवति । साध्यसाधनयो-र्व्याप्यव्याप[4]कभावस्य साकल्[5]येन प्रत्यक्षाविषयत्वात् । न हि तदि[6]र्थतो व्यापारान्कर्तुं शक्नोति, अविचारक[7]त्वात् सन्निहि-[8]तविषयत्वाच्च । नाप्यनु[9]माने, तस्यापि देशादिविषयविशिष्ट-त्वेन व्याप्त्यविषयत्वात् । तद्विषयत्वे वा प्रकृतानुमानान्तर-विकल्पद्वयानतिक्रमात् तत्र[10] प्रकृतानुमानेन व्याप्ति[11]प्रतिपत्ता[12]-वितरेतराश्रयत्वप्रसङ्गः । व्याप्तौ हि प्रतिपन्नायामनुमानमा-त्मा[13]नमासादयति, तदात्मलाभे च व्याप्तिप्रतिपत्तिरिति,

---

१ प्रत्यभिज्ञानस्य । २ स्मृतिप्रत्यभिज्ञानप्रकारेण । ३ तीर्यते संशय-विपर्ययावनेनेति । ४ यावती शिंशपा सा वृक्षस्वभावा वृक्षत्वाभावे तदभावा-दिति तर्कस्यैव विषयत्वात् । ५ देशान्तरकालान्तरसाकल्येन । ६ यावान् कश्चिद्धूमः सः सर्वोऽप्यग्निजन्मानग्निजन्यो वा न भवतीयतो व्यापारान् । ७ निर्विकल्पकत्वात् । ८ सम्बन्धविषयत्वात् । ९ नाप्यनुमानेऽन्तर्भाव इति सम्बन्धः । १० प्रकृतानुमानानु-मानान्तरयोर्मध्ये । ११ अनियतदिग्देशकालादिविषया व्याप्तिः । १२ गृहीतायां सत्यां । १३ अनुमानस्वरूपम् ।

अनुमानान्तरेणाविनाभावप्रतिपत्तावनवस्थाचमूरी परपक्षचमूं चञ्चमीतीति नानुमानगम्या व्याप्तिः । नापि सांख्यादिपरिकल्पितैरागमोपमानार्थापत्त्यभावैः साकल्येनाविनाभावावगतिः तेषां समयसंगृहीतसादृश्यानन्यथाभूताभावविषयत्वेन व्याप्त्यविषयत्वात् परैस्तथाऽनभ्युपगमाच्च । अथ प्रत्यक्षपृष्ठभाविविकल्पात् साकल्येन साध्यसाधनभावप्रतिपत्तेर्न प्रमाणान्तरं तदर्थं मृग्यमित्यपरः, सोऽपि न युक्तवादी–विकल्पस्याध्यक्षगृहीतविषयस्य तदगृहीतविषयस्य वा तद्व्यवस्थापकत्वम्? आद्ये पक्षे दर्शनस्येव तदनन्तरभाविनिर्णयस्यापि

---

१ व्याप्तिरस्त्यनुमानान्यथानुपपत्तेरित्यनुमानान्तरात्प्रकृतानुमाने व्याप्तिसद्भावः स्यात्तथ्यत्रानुमानान्तरे व्याप्तिरस्तीत्यनुमानान्तरात्स्यात्तस्मिन्नप्यपरादित्यनवस्था । २ व्याप्तिप्रतिपत्तौ । ३ व्याघ्री । ४ सौगतपक्षसेनाम् । ५ चमु अदनेऽतिशयेन भक्षयतीति चञ्चमीति । ६ अक्षपादप्राभाकरजैमनीयैः । ७ प्रसिद्धसाधर्म्यात्साध्यसाधनमुपमानमुक्तञ्च, उपमानं प्रसिद्धार्थसाधर्म्यात्साध्यसाधनमिति । ८ प्रमाणषट्कविज्ञातो यत्रार्थो नान्यथा भवेत् । अदृष्टं कल्पयेदन्यत्सार्थापत्तिरुदाहृता । अथवा दृष्टः श्रुतो वाऽर्थोऽन्यथानुपपद्यत इत्यदृष्टार्थकल्पनार्थापत्तिः । अथवान्यथाभूतस्यार्थस्य दर्शनादर्थान्तरप्रतिपत्तिः । ९ आगमादीनाम् । १० देशान्तरकालान्तरसामस्त्येन । ११ व्याप्ति । १२ व्याप्तिग्रहणार्थम् । १३ बौद्धः । १४ अध्यक्षगृहीतमेव विषयो यस्य । १५ व्याप्तिव्यवस्थापकत्वम् । १६ प्रत्यक्षस्येव । १७ वि-

नियतविषयत्वेन व्याप्त्यगोचरत्वात् । द्वितीयपक्षेऽपि विकल्प द्वयमुपढौकत एव । तद्विकल्पज्ञानं प्रमाणमन्यथा वेति ? प्रथमपक्षे प्रमाणान्तरमनुमन्तव्यं, प्रमाणद्वयेऽनन्तर्भावात्[2] । उत्तरपक्षे तु न ततो[3]ऽनुमानव्यवस्था । न हि व्याप्तिज्ञानस्याप्रामाण्ये तत्पूर्वकमनुमानं प्रमाणमास्कन्दति सन्दिग्धादिलिंगादप्युत्पद्यमानस्य प्रामाण्यप्रसंगात् । ततो[4] व्याप्तिज्ञानं सविकल्पमविसंवादकं च प्रमाणं प्रमाणद्वयाद[5]न्यदभ्युपगम्यमिति न सौगताभिमतप्रमाणसंख्यानियमः । एतेनानुपलम्भात्कारणव्यापकानुपलम्भाच्च[10] कार्यकारणव्याप्यव्यापकभावसम्वित्तिरितिवदन्नपि प्रत्युक्तः[11] । अनुपलम्भस्य प्रत्यक्षविषयत्वेन[12] कारणाद्यनुपलम्भस्य च लिंगत्वेन तज्जनितस्यानुमानत्वात्

कल्पस्यापि । १ विशेषदेशकालतयावधृतविषयत्वेन । २ विकल्पस्य प्रत्यक्षानुमानयोरन्तर्भावः सम्भवतीति नाशंकनीयं कल्पनापोढमभ्रान्तमिति प्रत्यक्षलक्षणस्य तत्रासम्भवान्निश्चिताविनाभाविनियमलक्षणलिङ्गाभावान्नानुमानेऽपि । ३ अप्रमाणात्सविकल्पात् । ४ प्रत्यक्षपृष्ठभाविना विकल्पेन गृहीतुमशक्या व्याप्तिर्यतः । ५ बौद्धेन प्रत्यक्षानुमानाभ्यां भिन्नं प्रमाणमङ्गीकर्तव्यं तदेतत्संज्ञान्तरं सविकल्पकं तर्काख्यमेवेत्यभिप्रायः । ६ प्रत्यक्षानुमानयोर्व्याप्तिग्रहणनिराकरणपरेण । ७ प्रत्यक्षेण भूतले घटाद्यभावस्तत्रानुमानं नास्ति । ८ नास्त्यत्र भूतले घटोऽनुपलब्धेरितिस्वभावानुपलम्भः । ९ नास्त्यत्र धूमोऽनग्नेरितिकारणानुपलंभः । १० नास्त्यत्र शिंशपा वृक्षानुपलब्धेरितिव्यापकानुपलम्भः । ११ निराकृतः । १२ के

प्रत्यक्षानुमानाभ्यां व्याप्तिग्रहणपक्षोपक्षिप्त[1]दोषानुषङ्गात्[2]। एतेन[3] प्रत्यक्षफले[4]नोहा[5]पोह[6]विकल्पज्ञानेन व्याप्तिप्रतिपत्तिरित्य[7]प्यपास्त[8]म्। प्रत्मक्ष[9]फलस्यापि प्रत्यक्षानुमानयोरन्यत[10]रत्वे व्याप्तेरविषयीकरणात्, तदन्य[11]त्वे च प्रमाणान्तरत्वमनिवार्यमिति। अथ[12] व्याप्तिविक[13]ल्पस्य फ[14]लत्वान्न प्रामाण्यमिति न युक्तम्। फलस्याप्यनुमानलक्षणफलहेतुतया प्रमाणत्वाविरोधात्। तथा सन्निकर्षफल[15]स्यापि विशेषणज्ञा[16]नस्य विशेष्यज्ञा[17]नलक्षणफलापेक्षया प्रमाणत्वमिति न वैशेषिकाभ्युपगतोहापोहविकल्पः प्रमाणान्त[18]रत्वमतिव[19]र्त्तते। एतेन[20] त्रिचतुःपञ्चषट्प्रमाणवादिनो-

---

वलं विधिप्रतिपत्तेरेवान्यत्रप्रतिषेधरूपत्वादित्यष्टसहस्र्यामिति। १ आरोपित। २ सम्भवात्। ३ अनुपलम्भादिना व्याप्तिग्रहणे प्रत्यक्षानुमानपक्षोपक्षिप्तदोषदर्शनेन। ४ पूर्वपूर्वप्रमाणत्वे फलं स्यादुत्तरोत्तरमिति। ५ विज्ञातमर्थमवलम्ब्यान्येषु व्याप्त्या तथाविधतर्कणमूहः। ६ उक्तियुक्तिभ्यां विरुद्धार्थात्प्रत्यवायसम्भावनमपोहः। ७ वैशेषिकमतम्। ८ निराकृतम्। ९ प्रत्यक्षफलज्ञानं प्रत्यक्षानुमानाभ्यां भिन्नं, ताभ्यां व्याप्तिग्रहणंनास्ति फलज्ञानेनास्तिचेत्फलज्ञानं प्रमाणान्तरं स्यात्। १० प्रत्यक्षफलं, प्रत्यक्षमनुमानं वेति विकल्पद्वयं तयोर्मध्ये एकत्वे सति। ११ ताभ्यां प्रत्यक्षानुमानाभ्यामन्यत्वे भिन्नत्वे। १२ नैयायिकः। १३ व्याप्तिग्राहकस्य। १४ प्रत्यक्षज्ञानफलं व्याप्तिविकल्पः। १५ नागृहीतविशेषणाबुद्धिर्विशेष्ये इति न्यायात्। १६ दण्डज्ञानस्य। १७। दण्डिज्ञान। १८ व्याप्तिज्ञानम्। १९ न निराकरोति। २० बौद्धस्य प्रमाणसंख्याप्रतिपादनतासामर्थ्यसमर्थनेन।

ऽपि सांख्याक्षपादप्रभाकरजैमिनीयाः स्वप्रमाणसंख्यां न व्यवस्थापयितुं क्षमा इति प्रतिपादितमवगन्तव्यम् । उक्तन्यायेन[1] स्मृतिप्रत्यभिज्ञानतर्काणां तदभ्युपगत[2]प्रमाणसंख्यापरिपंथित्वादिति[3] प्रत्यक्षेतरभेदात् द्वे एव प्रमाणे इति स्थितम् । अथेदानीं प्रथमप्रमाणभेदस्य स्वरूपं निरूपयितुमाह—

विशदं प्रत्यक्षमिति ॥ ३ ॥

ज्ञानमित्यनुवर्तते । प्रत्यक्षमिति[4] धर्मिनिर्देशः[5] । विशदज्ञानात्मकं साध्यम् । प्रत्यक्षत्वादिति हेतुः[6] । तथाहि—प्रत्यक्षं विशदज्ञानात्मकमेव प्रत्यक्षत्वात् । यन्न विशदज्ञानात्मकं तन्न प्रत्यक्षं, यथा परोक्षम् । प्रत्यक्षं च विवादापन्नं[7], तस्माद्विशदज्ञानात्मकमिति । प्रतिज्ञार्थैकदेशासिद्धो हेतुरिति चेत् का पुनः प्रतिज्ञा तदेकदेशो वा ? धर्मिधर्मसमुदायः प्रतिज्ञा । तदेकदेशो धर्मो धर्मी वा ? हेतुः प्रतिज्ञार्थैकदेशासिद्ध[8][9] इति चेन्न—धर्मिणो हेतुत्वे असिद्धत्वायोगात् । तस्य पक्ष[10]प्रयोगकालव-

---

१ व्याप्तिज्ञानस्य प्रमाणत्वव्यवस्थापनेन स्मृत्यादीनां प्रमाणताव्यवस्थापनेनोक्तन्यायेन च । २ सांख्यादिना । ३ सांख्यादिस्वीकृतप्रमाणसख्याविपक्षित्वात् । ४ विवाक्षितं प्रत्यक्षं प्रमाणं धर्म्मी । ५ साध्यधर्माधारो धर्मी पक्षः । ६ व्यतिरेकी । ७ उपनयः । ८ वादिप्रतिवादिनोः प्रासिद्ध एव धर्मी भवति । ९ प्रतिज्ञा एवार्थः प्रतिज्ञार्थस्तस्यैकदेशः सो हेतुरसिद्धः । १० पक्षः

द्धेतुप्रयोगेऽप्यसिद्धत्वायोगात्। धर्मिणो हेतुत्वे अनन्वयदोष इति चेन्न-विशेषस्य धर्मित्वात्। सामान्यस्य च हेतुत्वात् तस्य च विशेषेष्वनुगमो विशेषनिष्ठत्वात्सामान्यस्य। अथ साध्यधर्मस्य हेतुत्वे प्रतिज्ञार्थैकदेशासिद्धत्वमिति तदप्यसम्मतम्, साध्यस्य स्वरूपेणैवासिद्धत्वान्न प्रतिज्ञार्थैकदेशत्वेन तस्यासिद्धत्वं, धर्मिणा व्यभिचारात्। सपक्षे वृत्त्यभावाद्धेतोरनन्वय इत्यप्यसत्। सर्वभावानां क्षणभङ्गसङ्गमेवाङ्गीकुर्वाणाः

प्रत्यक्षं तस्य प्रत्यक्षस्य प्रयोगकालः "प्रत्यक्षं विशदज्ञानात्मकं प्रत्यक्षत्वात्" यथा पक्षस्य प्रत्यक्षत्वं तथा हेतोः। १ वादिप्रतिवादिनोः प्रसिद्ध एव धर्मी भवतीत्यर्थः। २ पर्वतोऽयमग्निमान्पर्वतत्वादित्यादिवदनन्वयदोषः। ३ प्रत्यक्षत्वस्य। ४ अन्वयो वर्तते। ५ निर्विशेषं हि सामान्यं भवेच्छशविषाणवत्। सामान्यरहितत्वाच्च विशेषस्तद्वदेव हि। १। ६ भो यौग तव मते वर्तते। ७ न मया साध्यधर्मस्य हेतुत्वं प्रतिपद्यते। ८ कथमप्रस्तावे साध्यधर्मस्य हेतुत्वं ब्रूषे, शब्दो नित्यो भवितुमर्हति नित्यत्वादित्येवंप्रकारेण प्रतिवादिना (जैनेन) साध्यधर्मस्यानङ्गीकरणात्, किं च साध्यस्य हेतुत्वे स्वरूपासिद्धं च वक्तव्यं न प्रतिज्ञार्थैकदेशासिद्धत्वमन्यथा यो यः प्रतिज्ञार्थैकदेशः सः सोऽसिद्ध इति व्याप्तौ धर्मिणा व्यभिचारात्। अथवा यो य प्रतिज्ञार्थैकदेशः सः सोऽसिद्ध इति व्याप्तौ धर्मिणोऽपि प्रतिज्ञार्थैकदेशत्वाद्वादिप्रतिवादिनोः साध्यवत्तस्याप्यासिद्धता स्यात्। ९ साध्यसाधनधर्म्मा धर्म्मी सपक्षस्तस्मिन्। १० प्रत्यक्षत्वस्य हेतोः। ११ असपक्षधर्मत्वम्। १२ क्षणे क्षणे भंगः क्षणभङ्गः प्रतिसमयं नाश इत्यर्थः।

मङ्गीकुर्वतां ताथागतानां सत्त्वादिहेतूनामनुदय[1]प्रसङ्गात् । विपक्षे बाधक[2]प्रमाणाभावात् पक्षव्यापकत्वाच्चान्वयवत्वं प्रकृतेऽपि [3]समानम् । इदा[4]नीं स्वोक्तमेव विशदत्वं व्याचष्टे—

प्रतीत्यन्तराव्यवधानेन विशेषवत्तया वा
प्रतिभासनं वैशद्यमिति ॥ ४ ॥

एकस्याः प्रतीतेरन्या प्रतीतिः प्रतीत्यन्तरम् । तेनाव्यवधानं तेन प्रतिभासनं वैशद्यम् । [5]यद्यप्यवायस्यावग्रहेहाप्रतीतिभ्यां [6]व्यवधानं, तथापि न परोक्ष[7]त्वं विषयविषयिणोर्भेदे[8]ना-प्रतिप[9]त्तेः । [10]यत्र विषयविषयिणोर्भेदे सति व्यवधानं तत्र

१ सर्वं क्षणिकं सत्त्वादित्यत्रापि हेतोः सपक्षे वृत्तिर्नास्ति सर्वस्य पक्षीकृतत्वेन-सपक्षस्याभावात् । २ क्षणिकत्वे साध्ये नित्यत्वम् विपक्षः, नित्यो पदार्थो नास्ति क्रमयौगपद्याभ्यामर्थक्रियाकारित्वाभावात् खरविषाणवदिति बौद्धमते बाधक-प्रमाणम् । ३ अप्रत्यक्षे प्रत्यक्षत्वम् नास्ति परोक्षत्वात् शिंशपादिवदिति प्रकृतेऽपि प्रकृतानुमानेऽपि प्रत्यक्षेऽपि बाधकप्रमाणमास्ति । ४ प्रत्यक्षस्य-विशदज्ञानात्मकत्वसमर्थनानन्तरम् । ५ तर्ह्यवायस्य परोक्षत्वमस्त्ववग्रहा-दिप्रतीत्यन्तरेण व्यवधानादिति शङ्कायामुत्तरं ददाति । ६ पूर्वज्ञानमुत्तरज्ञानं व्यवधापयति, धारणायारपि व्यवधानमास्ति । ७ तर्हि प्रत्यक्षत्वं कुत इत्याह । ८ विषयस्यार्थस्य विषयिणो ज्ञानस्य च भेदासम्भवात्, कथम्! अवग्रहादिविषयभूतार्थस्यावायविषयभूतार्थस्य चावग्रहादिरूपेण परिणतस्यैकत्वादवग्रहादिरूपस्य प्रत्यक्षस्य चैकत्वात् । ९ अज्ञानात् । १० विषये प्रतीतौ वा ।

परोक्षत्वम्[1] । तर्ह्यनुमाना[2]ध्य[3]क्षविषयस्यैकात्मग्रा[4]ह्यस्याग्नेर्भिन्न[5]स्योपलम्भादध्यक्षस्य परोक्षतेति तदप्ययुक्तम्, भिन्न[6]विषयत्वाभावात् । वि[7]सदृशसामग्रीजन्यभिन्नविषया प्रतीतिः प्रतीत्यन्तरमुच्यते नान्यदिति न दोषः । न केवलमेतदे[8]व, विशेषवत्तया वा प्रतिभासनं सविशेषवर्णसंस्थानादिग्रहणं वैशद्यम् । "तच्च प्रत्यक्षं द्वेधा मु[9]ख्यसंव्यवहारभेदादिति" मनसिकृत्यप्रथमं सांव्यवहारिकप्रत्यक्षस्योत्पादिकां सामग्रीं तद्भेदं च प्राह—

इन्द्रिया[10]निन्द्रिय[11]निमित्तं देशतः सांव्यवहारिकमिति ॥ ५ ॥

विशदं ज्ञानमिति चानुवर्तते । देशतो विशदं ज्ञानं सांव्यवहा-

---

१ कश्चित्तटस्थः । २ प्रथममग्निज्ञानं परोक्षं धूमज्ञानेन व्यवधानात्पुनः समीपं गत्वाग्निं पश्यति तस्य प्रत्यक्षस्यापि परोक्षत्वं स्यात्प्रतीत्यन्तरानुमानज्ञानेन व्यवधानात्, तथा प्रथमधूमदर्शनमन्यो विषयः पश्चादाग्निज्ञानं भिन्नः । ३ एकस्मिन् विषये बहुप्रमाणप्रवृत्तौ दोषो नास्ति, दर्शनकाले प्रत्यक्षं प्रमाणान्तरेण व्यवहितं भवति चेद्दोषः । ४ एकपुरुषस्य । ५ लिङ्गानुमितस्याग्नेस्तद्देशोपसर्पणे सति पदार्थग्राहकमध्यक्षं तस्य । ६ अनुमानस्य ज्ञातकरणत्वात्प्रत्यक्षस्याज्ञातकरणत्वाद्भिन्नसामग्रीः, प्रत्यक्षेऽज्ञातकरणं चक्षुरिन्द्रियं यतस्तत्स्वं न पश्यति, ज्ञातकरणं परिशीलितधूमः । अवग्रहादिनेत्यर्थः, ७ विलक्षण । ८ केवलं प्रतीत्यन्तराव्यवधानमेव वैशद्यं नापि तु । ९ "लघुध्वजाद्येति" सूत्रेण मुख्यस्य प्राक्प्रयोगः । १० इंदति परमैश्वर्यमनुभवतीति इन्द्र आत्मा तस्य लिङ्गमिन्द्रियम् । ११ ईषदिन्द्रियमनिन्द्रियम् ।

रिकमित्यर्थः । समीचीनः[1] प्रवृत्तिनिवृत्तिरूपो व्यवहारः तत्र भवं सांव्यवहारिकम् । भूयः किंभूतमिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तम् । इन्द्रियं चक्षुरादि, अनिन्द्रियं मनः ते निमित्तं कारणं यस्य । समस्तं व्यस्तं च कारणमभ्युपगन्तव्यम् । इन्द्रियप्राधान्याद-निन्द्रियबलाधानादुपजातमिन्द्रियप्रत्यक्षम्, अनिन्द्रियादेव विशुद्धिसव्यपेक्षादुपजायमानमनिन्द्रियप्रत्यक्षम् । तत्रेन्द्रियप्रत्यक्षमवग्रहेहादिधारणापर्यन्ततया चतुर्विधमपि बह्वादिद्वादशभे-

१ अबाधितः । २ सहाय । ३ ज्ञानावरणवीर्यान्तरायक्षयोपशमलक्षणा विशुद्धिः । ४ द्वयोर्मध्ये । ५ अवगृह्यते सत्वसामान्यस्यावान्तरो जातिविशेषो येन सो विषयविषयिसन्निपाते सत्याद्यग्रहणमवग्रहः । ईयतेऽवग्रहीतार्थस्य विशेषमाकाङ्क्ष्यते यया सेहा । अवयते निश्चीयतेऽर्थो ऽनेनासाववायः । धार्यते कालान्तरेऽपि न विस्मर्यतेऽनया सा धारणा । ६ बह्वेकव्यक्तिविज्ञानं, बह्वेकं च क्रमाद्यथा । बहवस्तरवः सूपो बहुश्चैको वनेचरः ।१। बह्वेकजातिविज्ञानं, स्याद्बह्वेकविधं यथा । वर्णाः नृणां बहुविधाः गौर्जात्येकविधेति च ।२। आश्वर्थस्य ग्रहः क्षिप्रं, स्यादक्षिप्रं शनैर्मुहुः । मृत्पात्रं यद्वदादत्ते, नवं वाऽनूतनं जलम् ।३। वस्त्वेकदेशाद्वस्तुनो, वस्त्वंशाद्वस्तुनोऽथवा । तत्रासन्निहितान्यस्यानिसृतं मननं यथा ।४। घटार्वाग्भागकन्यास्यगवयग्रहणे क्षणे । स्फुटं घटेन्दुगोज्ञानमभ्याससमयान्विते ।५। वस्त्वेकदेशमात्रस्य विज्ञानं निसृतं मतम् । घटार्वाग्भागमात्रेऽपि क्वचिज्ज्ञानं हि दृश्यते ।६। प्रत्यक्षे नियतत्वाद् दृग्गुणार्थैकाक्षबोधनम् । अनुक्तमेकैकेनोक्तं प्रत्यक्षं नियतग्रहः ।७। चक्षुषा दीपरूपावलोकावसर एव तत् । तदुष्णस्पर्शविज्ञानं यथोक्तार्थः प्ररूप्यते ।८। स्पर्शनं रसनं घ्राणं, चक्षुः श्रोत्रं मनश्च स्वम् । अर्थः स्पर्शो रसो गन्धो

दमष्टचत्वारिंशत्संख्यं प्रतीन्द्रियं प्रतिपत्तव्यम् । अनिन्द्रियप्रत्यक्षस्य चोक्तप्रकारेणाष्टचत्वारिंशद्भेदेन मनोनयनरहितानां चतुर्णामपीन्द्रियाणां व्यञ्जनावग्रहस्याष्टचत्वारिंशद्भेदेन च [२]समुदितस्येन्द्रियानिन्द्रियप्रत्यक्षस्य षट्त्रिंशदुत्तरा त्रिशती संख्या प्रतिपत्तव्या । नन्[३]ु स्वसंवेद[४]नभेदमन्यदपिप्रत्यक्षमस्ति, तत्कथं नोक्तमिति न वाच्यम् । तस्य सुखादिज्ञानस्वरूपसंवेदनस्य मा[५]नसप्रत्यक्षत्वात् । इन्द्रियज्ञानस्वरूपसंवेदनस्य चेन्द्रियस[६]मक्षत्वादन्य[७]था तस्[८]य स्वव्यवसायायोगात् । स्मृत्यादिस्वरूपसंवेदनं मा[९]नसमेवेति नाप[१०]रं स्वसंवेदनं नामाध्यक्षम-

---

रूपः शब्दः श्रुतादयः ।९। स्यान्नित्यत्वविशिष्टस्य, स्तम्भादेर्ग्रहणं ध्रुवः । विधुरादेरनित्यत्वेनान्वितस्याध्रुवो ग्रहः ।१०। तत्रार्थस्य द्वादशपदार्थैः सहावग्रहादीनामिन्द्रियाणां मनसश्च गुणने २८८ भेदाः भवन्ति, व्यञ्जनावग्रहस्य, द्वादशपदार्थैः न चक्षुरनिन्द्रियाभ्यामितिनिषेधाच्चक्षुरनिन्द्रियव्यतिरिक्तचतुर्णामिन्द्रियाणां गुणने सति ४८ भेदाः भवन्ति । अर्थस्य व्यञ्जनावग्रहस्य च सर्वे समुदिताः ३३६ भेदा मतिज्ञानस्य सन्ति । १ व्यञ्जनमव्यक्तं शब्दादिजातं तस्यावग्रह एव भवतीति । २ मिलितस्य । ३ बौद्धः प्राह । ४ अहं सुख्यहं सुखीतीत्यादिना । ५ अनिन्द्रिय । ६ यथेन्द्रियज्ञानं समक्षं तथेन्द्रियज्ञानस्वरूपसम्वेदनस्यापि समक्षत्वमिति । ७ मनोक्षप्रभवज्ञानाभ्यामन्यत्वे । ८ स्वसम्वेदनस्य । ९ तस्यानिन्द्रियनिमित्तात् । १० भावप्रमेयापेक्षायां प्रमाणाभासनिह्नवः । बहिःप्रमेयापेक्षायां

स्ति ॥ ननु प्रत्यक्षस्योत्पादकं कारणं वदता ग्रन्थकारेणेन्द्रियवदर्थालोकावपि किं न कारणत्वेनोक्तौ ? तद[2]वचने कारणानां साकल्यस्यासंग्रहाद्विनेयव्यामोह एव स्यात् तदियत्ताऽनवधारणात् । न च भगवतः परमकारुणिकस्य चेष्टा[4] तद्व्यामोहाय प्रभवतीत्याशङ्कायामुच्यते ।

नार्थालोकौ[5] कारणं[6] परिच्छेद्यत्वात्तमोवत् ॥ ६ ॥

सुगममेतत् । ननु बाह्यालोकाभावं विहाय तमसोऽन्यस्याभावा[8]त्साधनविकलो दृष्टान्त इति । नैवम् । एवं सति बाह्यालोकस्यापि तमोऽभावाद[10]न्यस्यासम्भवात्तेजोद्रव्यस्यासम्भव इति विस्तरेणैतद[11]लङ्कारे प्रतिपादितं बोद्धव्यम् । अत्रैव साध्ये हेत्वन्तरमाह—

प्रमाणं तन्निभं च ते ।१। १ नैयायिकः प्राह । २ कारणसाकल्यावचने सति । ३ आचार्यस्य ग्रन्थकर्तुः । ४ प्रवृत्तिः । ५ तमोवत्परिच्छेद्यौ । ६ सांव्यवहारिकप्रत्यक्षस्य कारणं नेति भावः । ७ प्रमेयत्वात्प्रत्यक्षगोचरत्वादित्यर्थः । ८ बाह्यालोकाभावस्य तमसः परिच्छेद्यत्वं नास्ति । बाह्यमिति विशेषणेनान्तरज्ञानत्वं प्रतिपादितं भवति न तु तमस्त्वमिति । ९ बाह्यालोकस्याभावस्यैव तमसः साधनात्तमसः परिच्छेद्यत्वं नास्त्यतः साधनविकलत्वं दृष्टान्तस्य । १० तमोऽभाव एव बाह्यालोकः । ११ प्रमे-

तदन्वयव्यतिरेकानुविधानाभावाच्च
केशोण्डुकज्ञानवन्नक्तंचरज्ञानवच्च ॥ ७ ॥

अत्र व्याप्तिः । यद्यस्यान्वयव्यतिरेकौ नानुविदधाति न तत्तत्कारणकं, यथा केशोण्डुकज्ञानं, नानुविधत्ते च ज्ञानमर्थान्वयव्यतिरेकाविति । तथाऽऽलोकेऽपि । एतावान् विशेषस्तत्र नक्तंचरदृष्टान्त इति । नक्तंचरा मार्जारादयः । ननु विज्ञानमर्थजनितमर्थाकारं चार्थस्यग्राहकम् । तदुत्पत्तिमन्तरेण विषयं प्रति नियमायोगात् । तदुत्पत्तेरालोकादावविशिष्टत्वात्ताद्रूप्यसहिताया एव तस्यास्तं प्रति नियमहेतुत्वात् भिन्नकालत्वेऽपि

यकमलमार्तण्डे । १ ज्ञानं धर्म्यर्थालोककारणकं न भवति तस्मादर्थालोकयोः । २ अनुगमन । ३ अनेन दृष्टान्तेन ज्ञानामर्थकारणकमिति निरस्तम् । ४ अनेन ज्ञानमालोककारणकमिति निरस्तम् । ५ ज्ञानं कार्यम् । ६ कारणस्यार्थस्य । ७ अर्थे सति ज्ञानमिति नियमो न यतोऽर्थाभावेऽपि ज्ञानसद्भावात् । ८ व्याप्तिः । ९ आदिशब्देनाञ्जनसंस्कृतमपि चक्षुः । १० योगाचारो बौद्धः प्राह । ११ तस्माद्विज्ञातविषयादिति । १२ प्रत्येकव्यापारम् । १३ सत्यालोके ज्ञानस्योत्पत्तिः कथं नालोकं गृह्णाति तदाकारत्वाभावात् । १४ अतस्ताद्रूप्यग्रहणं, ताद्रूप्यतदुत्पत्ती नीलक्षणादौ । तस्य विषयस्य रूपं यस्य तत्तद्रूपं तस्य भावस्ताद्रूप्यं । १५ तदुत्पत्तेः । १६ ज्ञानं नीलक्षणादुत्पन्नं तदाकारधारि सत्तद्गृह्णातीति तदसत्यम्, तयोर्भिन्नकालत्वात् । नीलक्षणमतीतसमये नष्टं तदुत्पन्नं ज्ञानं वर्तमानसमये प्रवर्तते यतः, एक आत्मलाभक्षणो द्वितीयस्तस्य ज्ञानजननक्षणो

ज्ञानज्ञेययोर्ग्राह्यग्राहकभावाविरोधात्। तथाचोक्तम्-भिन्नकालं कथं ग्राह्यमिति चेद्ग्राह्यतां विदुः। हेतुत्वमेव युक्तिज्ञास्तदाकारार्पणक्षमम्। इत्याशङ्कायामिदमाह—

अतज्जन्यमपि तत्प्रकाशकं प्रदीपवत्॥ ८॥

अर्थाजन्यमप्यर्थप्रकाशकमित्यर्थः। अतज्जन्यत्वमुपलक्षणम्। तेनातदाकारमपीत्यर्थः। उभयत्रापि प्रदीपो दृष्टान्तः। यथा प्रदीपस्यातज्जन्यस्याऽतदाकारधारिणोऽपि तत्प्रकाशकत्वं, तथा ज्ञानस्यापीत्यर्थः। ननु यद्यर्थादजातस्यार्थरूपाननुकारिणो ज्ञानस्यार्थसाक्षात्कारित्वं तदा नियतदिग्देशकालवर्त्तिपदार्थप्रकाशप्रतिनियमे हेतोरभावात्सर्वं विज्ञानमप्रतिनियतविषयं स्यादिति शङ्कायामाह—

स्वावरणक्षयोपशमलक्षणयोग्यतया हि
प्रतिनियतमर्थं व्यवस्थापयति॥ ९॥

यद्येवं ज्ञानस्य तदुत्पत्तिरभ्युपगम्यते प्रागभावत्वात्सर्वहेतूनामिति वचनात्तर्हि कारणभूतार्थस्य कार्यभूतज्ञानेऽभाव एव तथा च तस्य कथं ग्राह्यत्वमित्याशङ्कायामाह। १ तस्मै—आकारार्पणक्षमम्। २ न तज्जन्यमर्थाजन्यम्। ३ अर्थप्रकाशस्वभावादतदाकारधारित्वमुपलक्षणीयम् यथा काकेभ्यो दधि रक्ष्यतामित्यत्र गृद्धेभ्योऽपि रक्षणीयं न केवलं काकेभ्यो तथातदाकारधारित्वमप्युपलक्षणीयमिति। ४ बौद्धः प्राह। ५ भो जैन यद्येवं ब्रूषे। ६ निश्चय। ७ तदुत्पत्तिताद्रूप्यहेतुमन्तरेण। ८ अतीतानागतव्यवहितदूरान्तरितानां प्रमाणस्य प्रकाशकत्व भवत्वित्यनिष्टापादनं जैनानाम्। ९ अर्थ-

स्वानि च तान्यावरणानि च स्वावरणानि तेषां क्षय उदं-याभावः । तेषामेव सदवस्था उपशमः[2] तावेव लक्षणं यस्या योग्यतायास्तया हेतुभूतया प्रतिनियतमर्थं[3] व्यवस्थापय-ति प्रत्यक्षमिति शेषः । हि यस्मादर्थे । यस्मादेवं ततो नोक्तदोष इत्यर्थः । इदमत्र तात्पर्यम्, कल्पयित्वाऽपि तादूप्यं तदुत्पत्तिं तदध्यवसायं[4] च योग्यताऽवश्या ऽभ्युपगन्तव्या[5] । ताद्रूप्यस्य[6] समानार्थैस्तदुत्पत्तेरि-न्द्रियादिभिस्तद्वयस्यापि समानार्थसमनन्तरप्रत्ययैस्तत्रि-

---

ग्रहणशक्तिर्योग्यता । १ मतिज्ञानावरणवीर्यान्तरायकर्मसर्वघातिस्पर्द्धकानामुदया-भावः क्षयः । २ अनुदयप्राप्तानां तेषामेव सदवस्थोपशमः । ३ अस्य ज्ञानस्या-यमेवार्थ इति । ४ अर्थनिश्चयम् । ५ एतत्त्रयं सहकारि कारणं वर्तते तथापि कल्पनया किमुपकरणं कल्पितं यद्योगतावश्याभ्युपगन्तव्या । ६ यदि ताद्रूप्या-द्बोधोऽर्थस्य नियामकस्तर्हि निखिलसमानार्थेष्वेकवेदनापत्तिः स्यान्न च ताद्रूप्यात् बोधस्य समानार्थेषु नियामकत्वं घटतेऽतो नियामकाभावात्तैर्व्यभिचारः । ७ अर्थादुत्पत्तिश्चेत् । ८ इन्द्रियादिभिर्व्यभिचारः स्याद्यतो ज्ञानमिन्द्रिया-दुत्पन्नं तन्नजानाति । ९ भो जैन त्वयैकैकस्य निराकरणं कृतं तन्न युक्तं यतस्तद्वयस्यापि प्रमाणत्वमिति शङ्कायां तद्वयमपि निराकरोति जैनः । १० प्राक्तनज्ञानस्य य एव नीलाद्यर्थो विषयः स एवोत्तरज्ञानस्येत्येकसन्तानव-र्तित्वेन समानोऽर्थ एको नीलः । ११ ईप् । १२ प्रथमक्षणे नीलमिति ज्ञानमुत्पन्नं तच्च द्वितीयस्य जनकं तत्र ताद्रूप्यमस्ति तदुत्पत्तिश्च, ज्ञानत्वेन समानमन्याव्यवहितत्वेन समनन्तरमिति । १३ तदुत्पत्तेस्ताद्रूप्याच्च यद्यर्थस्य बोधो नियामकस्तदा प्राक्तनज्ञानेन व्यभिचारः कथम् ? द्वितीयज्ञानस्य प्राक्त-

तदर्थस्यापि शुक्ले शंखे पीताकार[2]ज्ञानेन व्यभिचारायोग्यताश्रयणमेव श्रेय इति । ए[3]तेन यदुक्तं परे[4]ण-"अर्थेन घट[5]यत्ये[6]नां नहि मुक्त्वार्थरूपताम् । तस्मात्प्रमेयाधिगतेः प्रमाणं मेयरूपतेति" तन्निरस्तम् । स[8]मानार्थाकारनानाज्ञानेषु मेयरूपतायाः सद्भावात् । न च परे[9]षां सारू[10]प्यं नामास्ति वस्तुभूतमिति योग्यतयैवार्थप्रतिनियम इति स्थितम् । इदानीं कारणत्वात्परिच्छेद्योऽर्थ इति मतं निराकरोति—

कारणस्य च परिच्छेद्यत्वे करणा[11]दिना व्यभिचार इति ॥ १० ॥

नज्ञानात्तदुत्पत्तितादूप्यसद्भावेऽपि द्वितीयज्ञानेन पूर्वान्तरज्ञानस्य नियामकत्वायोगात् । ज्ञानं हि न ज्ञानस्य नियामकं स्वप्रकाशकत्वात्तस्य । १ ननु न तादूप्यतदुत्पत्तिभ्यां बोधोऽर्थस्य नियामकः किन्तु तदध्यवसायित्वसहिताभ्यामेवेत्याशंकायां तत्त्रयमपि निराकरोति जैनः । २ काचकामलाद्युपहतचक्षुषः शुक्ले शंखे पीताकारज्ञानादुत्पन्नस्य तद्रूपस्य तदध्यवसायिनो द्वितीयज्ञानस्य पीताकारेण प्राक्तनज्ञानेन व्यभिचारः । ३ तादूप्यादीनां व्यभिचारप्रतिपादनेन । ४ बौद्धेन । ५ सह । ६ संबध्नाति । ७ निर्विकल्पप्रत्यक्षबुद्धिम् । अर्थरूपतां मुक्त्वान्यत् किंचिन्निर्विकल्पप्रत्यक्षबुद्धिमर्थेन न घटयतीत्यर्थः । ८ समानोऽर्थानामाकारो येषु । ९ सौगतानाम् । १० सारूप्यं सदृशपरिणामलक्षणं सामान्यं, तच्च बौद्धानां मते नास्ति वास्तवं तत्कथमर्थक्रियाकारि । ११ साधकतमकरणं चक्षुरादि तेन ।

करणादिकारणं परिच्छेद्यमिति तेन व्यभिचारः। न ब्रूमः कारणत्वात्परिच्छेद्यत्वमपि तु परिच्छेद्यत्वात्कारणत्वमिति चेन्न तथापि केशोण्डुकादिना व्यभिचारात्। इदानीमतीन्द्रियप्रत्यक्षं व्याचष्टे—

सामग्री[1]विशेषविश्लेषिताखिलावरणमतीन्द्रियमशेषतो मुख्यम् ॥ ११ ॥

सामग्री द्रव्यक्षेत्रकालभावलक्षणा, तस्या विशेषः समग्रतालक्षणः। तेन[2] विश्लेषितान्य[3]खिलान्यावरणानि येन[4] तत्तथोक्तम्। किं विशिष्टं? अतीन्द्रियमिन्द्रियाण्यतिक्रान्तम्[5]। पुनरपि कीदृशमशेषतः सामस्त्येन विशदम्। [6]अशेषतो वैशद्ये किं कारणमिति चेत्-प्रतिबन्धा[7]भाव इति ब्रूमः। तत्रापि किं कारणमिति चेदतीन्द्रियत्वमनावरणत्वं चेति ब्रूमः। एतदपि कुत इत्याह—

सावरणत्वे करणजन्यत्वे च प्रतिबन्धसम्भवात् ॥ १२ ॥

नन्ववधिमनःपर्ययथोरनेना[8]संग्रहादव्यापकमेतल्लक्षणमिति

---

१ कर्मक्षययोग्योत्तमसंहननोत्तमप्रदेशोत्तमकालोत्तमसम्यग्दर्शनादिपरिणतस्वरूपा। २ सामग्रीविशेषेण। ३ विघटितानि। ४ ज्ञानेन। ५ इन्द्रियाण्यतिक्रम्योल्लंघ्य प्रवर्तत इत्यतीन्द्रियमिति। ६ उत्तरसूत्रपातनिका। ७ ज्ञानस्य प्रतिबन्धा आवरणानि। ८ प्रध्वंसाभावः। साभृतत्वेऽक्षजत्वे च, प्रतिबन्धो हि सम्भवेत। मुख्यं चात्मनि सान्निध्यमात्रापेक्षत्वतो मतम्। १। ९ सूत्रेण।

न वाच्यम् । तयोरपि स्वविषयेऽशेषतो विशदत्वादिधर्मसम्भवात् । नचैवं मतिश्रुतयोरित्य[1][2]तिव्याप्तिपरिहारः । तदेतदतीन्द्रियमवधिमनःपर्ययकेवलप्रभेदात्त्रिविधमपि मुख्यं प्रत्यक्षमात्मसन्निधिमात्रापेक्षत्वादिति । [3]नन्वशेषविषयविशदावभासिज्ञानस्य [4]तद्वतो वा प्रत्यक्षादिप्रमाणपञ्चकाविषयत्वेनाभावप्रमाणविषमविषधरविध्वस्तसत्ताकत्वात् कस्य मुख्यत्वम् ? [5]तथाहि—नाध्यक्षमशेष[6]ज्ञविषयं, तस्य[7] रूपादिनियतगोचरचारित्वात् सम्बद्ध[8]वर्तमानविषयत्वाच्च । न चाशेषवेदी सं[9]म्बद्धो वर्तमानश्चेति । नाप्यनुमानात्तत्सिद्धिः । अनुमानं हि गृहीतसम्बन्ध[10]स्यैकदेशदर्शनादसन्निकृष्टे[11] बुद्धिः । न च सर्वज्ञसद्भावाविनाभाविकार्यलिङ्गं स्वभावलिङ्गं वा सम्पश्यामः । तज्ज्ञप्तेः

---

१ पंचभिरिन्द्रियैर्मनसा च मननं मतिः । श्रुतावरणविश्लेषाच्छ्रवणं वा श्रुतम् । तदुक्तं श्लोकवार्तिके । १ । मत्यावरणविच्छेदविशेषान्मन्यते यथा । मननं मन्यते यावत्स्वार्थे मतिरसौ मता । १ । श्रुतावरणविश्लेषविशेषाच्छ्रवणं श्रुतम् । शृणोति स्वार्थमिति वा श्रूयते स्मेति वागमः । २ । २ अत्यन्तविशदत्वाभावादिति द्रष्टव्यम् । अवधिमनः पर्ययवन्मतिश्रुते विशदे न भवतो यतो, ततस्तयोः करणजन्यत्व इत्यनेन निरासः कृतः । ३ भाट्टः प्राह । ४ पुरुषस्य सर्वज्ञस्य । ५ उक्तार्थं विवृणोति । ६ अशेषज्ञो विषयो यस्य । ७ प्रत्यक्षस्य । ८ सबद्धं वर्तमानं च गृह्यते चक्षुरादिना । ९ चक्षुषा सबद्धः पुरुषो न । १० पुरुषस्य । ११ परोक्षे वाह्निलक्षणे । स एव चोभयात्मायं, गम्यो गमक एव च । असिद्धेनैकदेशेन गम्यः सिद्धेन बो-

पूर्वं[1] तत्स्वभावस्य तत्कार्यस्य वा तत्सद्भावाविनाभाविनो[2] निश्चेतुमशक्तेः । नाप्यागमात्तत्सद्भावः । स हि नित्यो[3]ऽनित्यो वा तत्सद्भावं भावयेत्[4] । न तावन्नित्यः-तस्या[5]र्थवादरूपस्य[6] कर्म[7]विशेषसंस्तवनपरत्वेन पुरुषविशेषावबोधकत्वायोगात् । अनादेरागमस्यादिमत्पुरुषवाचकत्वाघटनाच्च । नाप्यनित्य[8] आगमः सर्वज्ञं साधयति । तस्यापि तत्प्रणीतस्य तन्निश्चयमन्तरेण प्रामाण्यानिश्चयादितरेतराश्रयत्वा[9]च्च । इतर[10]प्रणीतस्य त्वनासा[11]दितप्रमाणभावस्याशेषज्ञप्ररूपणपरत्वं नितरामसम्भाव्यमिति । सर्वज्ञसदृ[12]शस्यापरस्य ग्रहणासम्भवाच्च नोपमानम् । अनन्यथाभूतस्यार्थस्याभावान्नार्था[13]पत्तिरपि सर्वज्ञावबोधिकेति धर्माद्युपदेशस्य[14] व्यामोहादपि सम्भवात् । द्विविधो ह्युपदेशः सम्यङ्मिथ्योपदेशभेदात्; तत्र मन्वादीनां सम्यगुपदेशो यथार्थज्ञानोदयवेदमूलत्वात् । बुद्धा[15]दीनां तु

धकः । १ । १ लिंगस्य । २ आगमः । ३ नित्यो वेदोऽनित्या स्मृतिः तत्पूर्वकत्वात् । ४ ज्ञापयेत् । ५ अपौरुषेयवेदस्य । ६ स्तुतिनिन्दार्थवादरूपस्य । ७ यज्ञादि । ८ अनित्यः साधयति चेत्स तु सर्वज्ञप्रणीत इतरप्रणीतो वेति विकल्पद्वयं मनसि कृत्वा दूषयति । ९ सर्वज्ञप्रणीतत्वादागमप्रामाण्यसिद्धि निश्चितप्रामाण्यादागमात्सर्वज्ञसिद्धिरितीतरेतराश्रयत्वम् । १० असर्वज्ञप्रणीतस्य । ११ अप्राप्त । १२ सर्वज्ञसदृशं किंचिद्यदि दृश्येत संप्रति । उपमानेन सर्वज्ञं जानीयामस्ततो वयम् । १ । १३ प्रमाणषट्कविज्ञातो यत्रार्थो नान्यथा भवेत् । अदृष्टं कल्पयेदन्यत्सार्थापत्तिरुदाहृता । २ । १४ धर्माद्युपदेशस्त्वस्ति परन्त्वसावन्यथापि सम्भवतीत्यनूद्य दूषयति । १५ सर्वज्ञो

व्यामोहपूर्वकः तदमूलत्वात् तेषामवेदार्थज्ञत्वात् । ततः प्रमाणपञ्चकाविषयत्वादभावप्रमाणस्यैव प्रवृत्तिस्तेन चाभाव एव ज्ञायते । भावांशे प्रत्यक्षादिप्रमाणपञ्चकस्य व्यापारादिति । अत्र प्रतिविधीयते । यत्तावदुक्तम्—प्रत्यक्षादिप्रमाणाविषयत्वमशेषज्ञस्येति तदयुक्तं, तद्ग्राहकस्यानुमानस्य सम्भवात् । तथाहि—कश्चित्पुरुषः सकलपदार्थसाक्षात्कारी । तद्ग्रहणस्वभावत्वे सति प्रक्षीणप्रतिबन्धप्रत्ययत्वात् । यद्यद्ग्रहणस्वभावत्वे

ऽस्ति धर्माद्युपदेशान्यथानुपपत्ते रिति शंकायां । १ वेद । २ बुद्धादीनाम् । ३ गृहीत्वा वस्तुसद्भाव स्मृत्वा च प्रतियोगिनं । मानसं नास्तिताज्ञानं जायतेऽक्षानपेक्षया । १ । प्रमाणपञ्चकं यत्र वस्तुरूपेन जायते । वस्तुसत्तावबोधार्थं, तत्राभावप्रमाणता । २ । न तावादिन्द्रियेणैषा नास्तीत्युत्पाद्यते मतिः । भावांशेनैव सम्बन्धो योग्यत्वादिन्द्रियस्य हि । ३ । प्रत्यक्षादेरनुत्पत्तिः प्रमाणाभाव उच्यते । सात्मनोऽपरिणामो वा विज्ञानं वान्यवस्तुनि । ४ । न च स्याद्व्यवहारोऽयं, कारणादिविभागतः । प्रागभावादिभेदेन नाभावो यदि भिद्यते । ५ । यद्वानुवृत्तिव्यावृत्तिबुद्धिग्राह्यो यतस्त्वयम् । तस्माद्गवादिवद्वस्तु प्रमेयत्वाच्च गृह्यताम् । ६ । प्रत्यक्षाद्यवतारश्च भावांशो गृह्यते यदा । व्यापारस्तदनुत्पत्तेरभावांशे जिघृक्षिते । ७ । ४ इतो भाट्टमतस्य जैनेन प्रतिविधानं क्रियते । ५ अशेषज्ञ । ६ अनिर्दिष्टनामा । ७ रूपादिमत्प्रातिनियतवर्तमानसूक्ष्मांतरितदूरार्थाः सकलपदार्थास्तेषाम् । ८ योगपरिकल्पितमुक्तजीवस्य प्रक्षीणप्रतिबन्धप्रत्ययत्वमस्ति यदर्थग्रहणस्वभावो नास्त्यतस्तद्व्यवच्छेदार्थं तद्ग्रहणस्वभावत्वे सतीत्युक्तम् । प्रक्षीणप्रतिबन्धप्रत्ययत्वादित्युक्ते प्रतिबन्धविवर्जिते वह्नौ व्यभिचारोऽतस्तद्व्यवच्छेदार्थं तद्ग्रहणस्व-

सति प्रक्षीणप्रतिबन्धप्रत्ययं तत्तत्साक्षात्कारि । यथाऽपगततिमिरं लोचनं रूपसाक्षात्कारि । तद्ग्रहणस्वभावत्वे सति प्रक्षीणप्रतिबन्धप्रत्ययश्च विवादापन्नः[1] कश्चिदिति सकलपदार्थग्रहणस्वभावत्वं नात्मनोऽसिद्धं[2] चोदनातः[3] सकल[4]पदार्थपरिज्ञानस्यान्यथायोगा[5]दन्धस्येवादर्शाद्रूपप्रतिपत्तेरिति । व्याप्ति[6]ज्ञानोत्पत्तिबलाच्चाशेषविषयज्ञानसम्भवः केवलं वैशद्ये विवादः। तत्र चावरणापगम एव कारणं रजोनीहाराद्यावृतार्थज्ञानस्येव[7] तदपगम इति । प्रक्षीणप्रतिबन्धप्रत्ययत्वं कथमिति चेदुच्यते—दोषावरणे[8] क्वचि[9][10]न्निर्मूलं प्रलयमुपव्रजतः प्रकृष्यमाणहानि[11]

भावत्वे सतीत्युच्यते, तद्ग्रहणस्वभावत्वादेतावन्मात्रस्योच्यमाने काचकामलादिदुष्टे चक्षुषि तद्ग्रहणस्वभावोऽस्ति ग्रहणं नास्त्यतः सर्वं साधनमिति ।

१ पञ्चावयवान्यौगश्चतुरो मीमांसकस्त्रीन् सांख्यो द्वौ जैनो बौद्धस्त्वेकमेव हेतुं प्रलपतीत्युक्तत्वान्मीमांसकं प्रति चत्वार एवावयवाः प्रयुक्ताः । २ असिद्धोऽयं हेतुरिति शङ्कां निराकरोति । ३ वेदात् । ४ चोदना हि भूतं भवन्तं भविष्यन्तं विप्रकृष्टमित्येवं जातीयकमर्थमवगमयितुमलं" पुरुषविशेषानितिवदन्नपि मीमांसकः स्वयं सकलार्थज्ञानस्वभावत्वमात्मनोन प्रत्येतीति कथं स्वस्थः । ५ आत्मनः सकलपदार्थज्ञानस्वभावत्वं विना । ६ चोदनातः सकलार्थज्ञत्वं न युज्यते । ७ यत्सत्तत्स्वरूपं तत्सर्वमनेकान्तात्मकमित्यादिव्याप्तिज्ञानाच्च सकलार्थज्ञत्वं युज्यतेऽन्यथाऽनियतदिग्देशादिस्थितामेः परिज्ञानं कथमुत्पद्यते । ८ रजोनीहारादि । ९ भावद्रव्यकर्मणी । १० आत्मनि । ११ वर्धमानहानिदर्शनात् ।

कत्वात् । यस्य प्रकृष्यमाणहानिः । स क्वचिन्निर्मूलं प्रलय-मुपव्रजति । यथाऽग्निपुटपाकापसारितकिट्टकालिकाद्यन्तरङ्ग-बहिरङ्गमलद्वयात्मनि हेम्नि मलमिति, निर्ह्रासातिशयवती च दोषावरणे इति । कथं[1] पुनर्विवादाध्यासितस्य ज्ञानस्या वरणं सिद्धं[2] ? प्रतिषेधस्य[3] विधिपूर्वकत्वादिति । अत्रोच्यते— विवादापन्नं ज्ञानं सावरणं, विशदतया[4] स्वविषयानवबोध-कत्वाद्रजोनीहाराद्यन्तरितार्थज्ञानवदिति । न चात्मनोऽमूर्त-त्वादावारकावृत्त्ययोगः । अमूर्ताया अपि चेतनाशक्तेर्मदिरा-मदनकोद्रवादिभिरावरणोपपत्तेः । न चेन्द्रियस्य तैरावरणं, इन्द्रियाणामचेतनानामप्यनावृतप्रसंगात्[8] स्मृत्यादि[9]प्रतिबन्धा-योगात्[10] । नापि मनसस्तैरावरणमात्मव्यतिरेकेणापरस्य मनसो[11] निषेत्स्यमानत्वात्[12] । ततो नामूर्तस्यावरणाभावः । अतो ना-सिद्धं तद्ग्रहणस्वभावत्वे[13] सति प्रक्षीणप्रतिबन्धप्रत्ययत्वम् । नापि विरुद्धं विपरीतनिश्चिता[14]विनाभावाभावात् । नाप्यनैका-

---

१ बौद्धः प्राह । २ अपि तु न कुतः । ३ प्राप्तिपूर्वको हि निषेधः । ४ स्पष्टाकारतया ५ आवरण । ६ भो भाट्ट, यद्येवं ब्रूषे यदिन्द्रियाणामावरणमि-ति तदेवानूद्य दूषयति । ७ समानत्वात् । ८ अन्यथेन्द्रियाणामावरणं चेत् । ९ आदिशब्देन प्रत्यभिज्ञानतर्कादयः । १० आत्मन आवरणाभावे मदोन्मत्तस्य स्मरणं भवतु, नास्ति च स्मरणं तस्मादात्मन एवावरणं सिद्धम् । ११ भाव-रूपस्य मनसः । १२ अग्रे निषेत्स्यते । १३ सकलपदार्थग्रहण । १४ स्व-

न्तिकं देशतः सामस्त्येन वा विपक्षे[१] वृत्त्यभावात् विपरीतार्थो[२]पस्थापकप्रत्यक्षागमासम्भवान्न कालात्ययापदिष्टत्वम्[३] । नापि सत्प्रतिपक्षं[४] प्रतिपक्षसाधनस्य हेतोरभावात्[५] । अथेदमस्त्येव[६] विवादापन्नः पुरुषो नाशेषज्ञो वक्तृत्वात्पुरुषत्वात्पाण्यादिमत्त्वाच्च । रथ्यापुरुषवदिति, नैतच्चारु, वक्तृत्वादेरसम्यग्घेतुत्वात् । वक्तृत्वं हि दृष्टेष्ट[७]विरुद्धार्थवक्तृत्वं[८] तदविरुद्धवक्तृत्वं वक्तृत्वसामान्यं वा गत्यन्तराभावात्[९] । न तावत् प्रथमः पक्षः सिद्धसाध्यतानुषङ्गात्[१०] । नापि द्वितीयः पक्षः विरुद्धत्वात् । तदविरुद्धवक्तृत्वं[११] हि ज्ञानातिशयमन्तरेण नोपपद्यत इति । वक्तृत्वसामान्यमपि विपक्षा[१२]विरुद्धत्वान्न प्रकृतसाध्यसाधनायालं[१३] ज्ञानप्रकर्षे वक्तृत्वापकर्षा[१४]दर्शनात्प्रत्युत ज्ञानातिशयवतो वचनातिशयस्यैव सम्भवात् । [१५]एतेन पुरुषत्वमपि[१६] निरस्तं-पुरुषत्वे[१७]

साध्याभावेन सह सम्बन्धस्याभावात् । १ सकलपदार्थसाक्षात्कारिणि पुरुषे । २ अग्निरनुष्ण इत्यादिवत् । ३ प्रत्यक्षागमबाधितकालानन्तरं प्रयुक्तत्वात्कालात्ययापदिष्टः । ४ सत्प्रतिपक्षो यस्य हेतुरूपस्य तत्तथोक्तम् । ५ न प्रकरणसमः । ६ मीमांसकः प्राह । ७ प्रत्यक्षानुमानाभ्याम् । ८ दृष्टेष्टाविरुद्धवक्तृत्वम् । ९ विकल्पान्तराभावात् । १० संपर्कात् । ११ प्रत्यक्षानुमानाभ्यामविरुद्धवक्तृत्वम् । १२ सर्वज्ञेन सहाविरुद्धत्वात् । १३ असर्वज्ञत्वसाध्यसाधनाय न समर्थं वक्तृत्वं हेतुः । १४ ज्ञानातिशये सति वचनस्य हानित्वं न दृश्यते । १५ वक्तृत्वस्यासर्वज्ञसाधनत्वनिराकरणेन । १६ द्वितीयसाधनम् । १७ पुरुषत्वं हि रागादिदोषदु:

हि रागादिदोषैर्दूषितं[1], तदा सिद्धसाध्यता, तददूषितं[2] तु विरुद्धं वैराग्य[3]ज्ञानादिगुणयुक्तपुरुषत्वस्याशेषज्ञत्वमन्तरेणायोगात् । पुरुषत्वसामान्यं तु सन्दिग्धविपक्ष[4]व्यावृत्तिकमिति सिद्धं सकलपदार्थसाक्षात्कारित्वं कस्यचित्पुरुषस्यातोऽनुमा[5]नादिति न प्रमाणपञ्च[6]काविषयत्वमशेषज्ञस्य ॥ अथास्मिन्ननुमानेऽर्हतः सर्ववित्त्व[7]मनर्हतो वा[8]? अनर्हतश्चेदर्हद्वाक्यमप्रमाणं स्यात् । अर्हतश्चेत्सोऽपि न श्रुत्या[9] सामर्थ्येन[10] वाऽवगन्तुं पार्यते । स्वशक्त्या[11] दृष्टान्तानु[12]ग्रहेण वा हेतोः[13] पक्षान्तरे[14]ऽपि तुल्यवृत्तित्वादिति । तदेतत्परेषां[15] स्वबधाय कृत्यो[16]त्थापनं, [17] एवंविधविशेषप्रश्नस्य सर्वज्ञसामान्याभ्युपगमपूर्वकत्वात् ।

षितं तददूषितं पुरुषत्वसामान्यं वा । १ रागद्वेषमोहैर्दूषित संयुक्तम् । २ रागाभावे वीतरागं, द्वेषाभावे शान्तं, मोहाभावे सर्वज्ञं साधयति तस्माद्विरुद्धम् । ३ विरागत्व । ४ संदिग्धा विपक्षाद्व्यावृत्तिर्यस्य तत्तथोक्तम् । ५ कश्चित्पुरुषः सकलपदार्थसाक्षात्कारी तद्ग्रहणस्वभावत्वे सति प्रक्षीणप्रतिबन्धप्रत्ययत्वात् । ६ प्रत्यक्षानुमानागमोपमानार्थापत्तिप्रमाणपञ्चकम् । ७ सर्वज्ञत्वम् । ८ बुद्धादेः । ९ आगमेन । १० वाचकत्वेन व्यञ्जकत्वेनाविनाभावित्वेन वा । ११ हेतोराविनाभावशक्त्या, सामर्थ्येन नावगन्तुं पार्यत इत्येतद्विवृणोति । १२ यथापगततिमिरं लोचनं रूपसाक्षात्कारीति दृष्टान्तस्तस्य बलेन । १३ तद्ग्रहणस्वभावत्वे सति प्रक्षीणप्रतिबन्धप्रत्ययत्वस्य । १४ हरिहरहिरण्यगर्भादौ । १५ भाट्टानामसर्वज्ञवादिनाम् । १६ कर्णाटकभाषायां मारि । १७ कुतः स्वपक्षोच्छादनं वाच्छाम्यहमिति-

अन्यथा[1] न कस्याप्यशेषज्ञत्वमित्येवं वक्तव्यम्[2] । प्रसिद्धा-नुमाने[3]ऽप्यस्य[4] दोषस्य सम्भवेन, जात्युत्तरत्वाच्च[5] । त-थाहि[6]-नित्यः शब्दः प्रत्यभिज्ञायमानत्वादित्युक्ते[7] व्यापकः[8] शब्दो नित्यः प्रसाध्यते अव्यापको वा । यद्यव्यापकः तदा व्यापक-त्वेनोपकल्प्यमानो[9] न कश्चिदर्थं पुष्णाति । अथ व्यापकः सो-ऽपि न श्रुत्या सामर्थ्येन वाऽवगम्यते[10] । स्वशक्त्या दृष्टान्ता-नुग्रहेण वा पक्षान्तरे[11]ऽपि तुल्यवृत्तित्वादिति सिद्धमतो निर्दो-षात्[12] साधनादशेषज्ञत्वमिति । यच्चाभावप्रमाणकवलितसत्ता-कत्वमशेषज्ञस्येति तदयुक्तमेवानुमानस्य तद्ग्राहकस्य सद्भावे सति प्रमाणपञ्चकाभावमूलस्याभावप्रमाणस्योपस्थापनायोगात् "गृहीत्वा वस्तुसद्भावं[13] स्मृत्वा च प्रतियोगिनम्[14] । मानसं ना-

---

पृच्छसि चेदाह । १ सर्वज्ञसामान्यानभ्युपगमे । २ मीमांसकेन त्वया । ३ तव मते प्रसिद्धानुमानेऽपि । ४ अर्हतोऽनर्हतो वेत्येवं प्रकारस्य । ५ दोषसम्भवात्प्रयुक्ते स्थापनाहेतौ दूषणाशक्तमुत्तरं जातिमाहुरथान्ये तु स्वव्याघातकमुत्तरमसदुत्तरं वा संदर्भेणदूषणासमर्थं वा छलादिभिर्नदूषणसमर्थ-मुत्तरं वा जात्युत्तरमाहुः । ६ प्रसिद्धानुमानेऽप्ययं दोषः कथं सम्भवति तदेव विवृणोति । ७ स एवायमिति प्रत्यभिज्ञानात् । ८ मीमांसकमते व्यापकः शब्दः सर्वगतश्च । ९ कल्प्यमानः शब्दः । १० अवगन्तुं न पार्यते । ११ अव्यापके नित्ये शब्दे जात्युत्तरम् । १२ तद्ग्रहणस्वभावत्वे सति प्रक्षीणप्रतिबन्धप्रत्ययत्वात् । १३ घटव्यतिरिक्तं भूतलं गृहीत्वा । १४ घटं

स्तिताज्ञानं जायतेऽ[1]ज्ञानपेक्षयेति" च भा[2]वत्कं दर्शन[3]म् । [4]तथा च कालत्रयत्रिलोकलक्षणवस्तुसद्भावग्रहणेऽ[5]न्यत्रान्यदा[6] गृहीत-स्मरणे च सर्वज्ञनास्तिताज्ञानमभावप्रमाणं युक्तम् । ना[7]न्यथा । न च कस्यचिदर्वाग्दर्शिनस्त्रिजगत्त्रिकालज्ञानमुपपद्यते [8]सर्वज्ञ-स्यातीन्द्रियस्य वा । सर्वज्ञत्वं हि चेतोधर्मतयाऽतीन्द्रियं [9]तदपि न प्रकृतपुरुषविषयमिति कथमभावप्रमाणमु[10]दयमासा-दयेत् । असर्वज्ञस्य [11]तदुत्पादसामग्र्या असम्भवात् । सम्भवे वा त[12]थाज्ञातुरेव सर्वज्ञत्वमिति । अत्रा[13]धुना तदभावसाधनमित्यपि न युक्तं सिद्ध[14]साध्यतानुषङ्गात् । ततः सिद्धं मु[15]ख्यमतीन्द्रिय-ज्ञानमशेषतो विशदम् । सर्वज्ञज्ञानस्यातीन्द्रियत्वादशुच्यादिद-र्शनं तद्र[16]सास्वादनदोषोऽपि परिहृत एव । कथमतीन्द्रियज्ञा-नस्य वैशद्यमिति चेत् । यथा सत्यस्वप्नज्ञानस्य भावना[17]ज्ञान-स्य चेति । दृश्यते हि भावनाबलादतद्दे[18]शवस्तुनोऽपि विशद-

---

स्मृत्वा । १ वाह्येन्द्रियानपेक्षया । २ भवदीयम् । ३ मतम् । ४ एवं सति । ५ क्षेत्रान्तरे । ६ कालान्तरे । ७ अन्यथाभावप्रमाणं भवितुं नार्हति । ८ केनचित्प्रकारेण । ९ असर्वज्ञजनस्य तद्विषयं न किञ्चिदपि ज्ञानमुत्पद्यते । १० उत्पत्तिं प्रापयेत् । ११ अभावप्रमाण । १२ असर्वज्ञाभावोत्पादकसामग्रीसम्भवे वा सर्वज्ञाभावसामग्रीज्ञातुः । १३ अस्मिन् क्षेत्रे काले च सर्वज्ञाभावसाधनम् । १४ अस्मिन् क्षेत्रे काले च सर्वज्ञोऽस्तीति केन वोच्यत इति सिद्धसाध्यता । १५ प्रत्यक्षम् । १६ इन्द्रियज्ञानस्य वाशुच्यादिरसास्वादनदोषो नातीन्द्रियज्ञानस्येति शेषः । १७ मानसिकज्ञानस्य । १८ भावनाज्ञानाधिकरणपुरुषभिन्न-

दर्शनमिति। "पिहिते कारागारे तमसि च सूचीमुखाग्रदुर्भेद्ये। मयि च निमीलितनयने तथापि कान्ताननं व्यक्तमिति" बहुलमुपलम्भात्[1]। ननु[2] च नावरणविश्लेषादशेषज्ञत्वमपि तु तनुकरणभुवनादिनिमित्तत्वेन। न चात्र तन्वादीनां बुद्धिमद्धेतुकत्वमसिद्धमनुमानादेस्तस्य सुप्रसिद्धत्वात्। तथाहि-विमत्यधिकरण[3]भावापन्नं उर्वीपर्वततरुतन्वादिकं बुद्धिमद्धेतुकं कार्यत्वादचेतनोपादानत्वात्सन्निवेश[4]विशिष्टत्वाद्वा वस्त्रादिवदिति। आगमोऽपि तद्[5]आवेदकः श्रूयते—"विश्वत[6]श्चक्षु[7]रुत विश्वतोमु[8]खो विश्वतोबाहु[9]रुत विश्वतः पात्[10]। सम्[11]बाहुभ्यां धमति[12]सम्पत[13]त्रैर्द्यावाभूमी जनयन्देव[14] एकः" तथा व्यासवचनं च "अज्ञो जन्तुरनीशोऽयमात्मनः सुखदुःखयोः। ईश्वरप्रेरितो गच्छेत्स्वर्गं वा श्वभ्रमेव वा ॥ १ ॥" न चाचेतनैरेव परमाण्वादिकारणैः पर्याप्तत्वाद्बुद्धिमतः कारणस्यानर्थक्यम्। अचेतनानां

देशवर्तिवस्तुनोऽपि। १ इन्द्रियार्थयोः सम्बन्धाभावेऽपि विशदत्वोपपत्तेः। २ यौगः प्राह। प्रश्नावधारणाऽनुज्ञानुनयामन्त्रणे ननु। ननु च स्याद्विरोधोक्तौ। ३ विवादापन्नम्, विविधा मतयो विमतयो विमतीनामधिकरणं तस्य भावमापन्नं प्राप्तं। ४ रचनाविशेष। ५ बुद्धिमत्प्रतिपादकः। ६ विश्वमधिकृत्य प्रवर्तते। ७ चक्षुः कार्यज्ञानं विवादाध्यासितम्। ८ विश्वव्यापि वचनम्। ९ व्यापारः। १० विश्वव्यापित्वम्। ११ पुण्यपापाभ्याम्। १२ संयोजयति। १३ परमाणुभिः। १४ ईश्वरः।

स्वयं कार्योत्पत्तौ व्यापारायोगात्तुर्यादिवत्[1]। न चैवं चेतनस्यापि चेतनान्तरपूर्वकत्वादनवस्था[2]। तस्य[3] सकलपुरुषज्येष्ठत्वान्निरतिशयत्वात्[4] सर्वज्ञबीजस्य[5] "क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टत्वादनादिभूतानश्वरज्ञानसम्भवाच्च । यदाह पतञ्जलिः[6]—क्लेश[7]कर्म[8]विपाका[9]शयै[10]रपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः । तत्र[11] नि-

---

१ यथा तुरीतंतुवेमशलाकादीनामचेतनानां स्वयं कार्योत्पत्तौ व्यापारायोगाच्चेतनकुविंदाधिष्ठितेनैव कार्यकर्तृत्वं तथा प्रकृतेऽपि । २ यथा चेतनस्य कुविन्दादेर्बालकाले गुरूपदेशमन्तरेणाकर्तृत्वाच्चेतनान्तरेण भाव्यं तथा चेतनान्तरेऽपरचेतनान्तरेणैवं परापरचेतनप्रयुज्यकर्तृत्वादनवस्था । ३ ईश्वरस्य । ४ अतिशयातिक्रान्तत्वात् । ५ सर्वज्ञस्य यद्बीजं सर्वस्य मूलत्वाद्बीजमिव बीजम् । ६ पातंजलयोगसूत्रे । ७ क्लेशा अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः । अनित्यताशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या । नित्यादिचतुष्टयेऽनित्यादिचतुष्टयबुद्धिः, पापादौ पुण्यादिबुद्धिरपि विवक्षिता, तासामपि संसारहेतुत्वविद्यात्वात् । दृग्दर्शनशक्त्योरेकात्मतेवास्मिता । सुखानुशयी रागः । सुखतत्साधनमात्रविषयकः क्लेशो राग इत्यर्थः । दुःखानुशयी द्वेषः । स्वरसवाही विदुषोऽपि तथारूढोऽभिनिवेशः । स्वस्य रसेन संस्कारेणैव वहतीति स्वरसवाही । अपिशब्दादविद्वानपि परिगृह्यते । रूढः प्रसिद्धः । तथा च यथाऽविदुषस्तथा विदुषोऽपि स्वरसवाहित्वहेतुना यज्जातीयो यत्क्लेशो भयाख्यः प्रसिद्धोऽस्ति सोऽभिनिवेश इत्यर्थः । ८ कर्म धर्माधर्मौ । ९ विपाकाः कर्मफलानि जन्मायुर्भोगाः । १० आशयो ज्ञानादिवासना । एतैः कालत्रयेऽप्यपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः । ११ सर्वज्ञत्वानुमापकं यज्ज्ञानस्य सातिशयत्वं तत्तत्रेश्वरे निरतिशयं विश्रान्तमित्यर्थः । तथा च

रतिशयं सर्वज्ञबीजम् । स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदा-दिति" च "ऐश्वर्यमप्रतिहतं सहजो विरागस्तृप्तिर्निसर्गजनिता वशितेन्द्रियेषु । आत्यन्तिकं सुखमनावरणा च शक्तिर्ज्ञानं च सर्वविषयं भगवंस्तवैव" इत्यवधूतवचनाच्च । न चात्र कार्यत्वमसिद्धम् । सावयवत्वेन कार्यत्वसिद्धेः, नापि विरुद्धं विपक्ष एव वृत्त्यभावात् । नाप्यनैकान्तिकं, विपक्षे परमाण्वादावप्रवृत्तेः । प्रतिपक्षसिद्धिनिबन्धनस्य साधनान्तरस्याभावान्न प्रकरणसमम् । अथ तन्वादिकं बुद्धिमद्धेतुकं न भवति दृष्टकर्तृकप्रासादादिविलक्षणत्वादाकाशवदित्यस्त्येव प्रतिपक्षसाधनमिति । नैतद्युक्तं, हेतोरसिद्धत्वात् । संनिवेशविशिष्टत्वेन प्रासा-

---

निरतिशयज्ञान ईश्वर इति लक्षणम् । तस्मिन्भगवति सर्वज्ञत्वस्य यद्बीजं सर्वस्य मूलत्वाद्बीजमिव बीजम्, तन्निरतिशयं काष्ठां प्राप्तम् । १ स एव ईश्वरः पूर्वेषां हिरण्यगर्भादीनामपि गुरुरन्तर्यामिविधया ज्ञानचक्षुःप्रदः । कालानवच्छिन्नत्वान्नित्यो भवति । तथा च श्रुतिः "जन्मनिरोधं प्रवदन्ति यस्य ब्रह्मवादिनो हि प्रवदन्ति नित्य" मिति । २ विनाशरहितम् । ३ क्षित्यादिकं समवाय्यसमवायिनिमित्तकारणत्रयप्रभवं कार्यत्वाद्वस्त्रादिवत्तत्र समवायिकारणं चतुर्धा परमाणवः, असमवायिकारणं परमाणुसंयोगः, निमित्तकारणमीश्वराकाशकालादिरित्यनुमाने तन्वादौ कार्यत्वमसिद्धं न भवति । ४ तथाहि—क्षित्यादिकं कार्यं सावयवत्वाद्यत्सावयवं तत्कार्यं यथा प्रासादादि सावयवं चेदं तस्मात्कार्यं भवति । ५ अबुद्धिमद्धेतुके नित्ये परमाण्वादौ । ६ अबुद्धिमद्धेतुके इदमेव प्रतिपक्षसाधनमस्ति । ७ यथा प्रासादादीनां कर्ता दृश्यते न तथा तन्वादीनामिति । ८ रचनाविशेष ।

दादिसमानजातीयत्वेन तन्वादीनामुपलम्भात्। अथ यादृशः प्रासादादौ सन्निवेशविशेषो दृष्टो न तादृशस्तन्वादाविति चेन्न सर्वात्मना[1] सदृशस्य[2] कस्यचिदप्यभावात्। सातिशयसन्निवेशो हि सातिशयं कर्त्तारं गमयति प्रासादादिवत्। न च दृष्टकर्तृक-स्यादृष्टकर्तृकत्वाभ्यां[3] बुद्धिमन्निमित्तेतरत्वसिद्धिः[4][5] कृत्रिमैर्मणि-मुक्ताफलादिभिर्व्यभिचारात्[6]। एतेनाचेतनोपादानत्वादिकमपि[7] समर्थितमिति सूक्तं बुद्धिमद्धेतुकत्वं[8] ततश्च सर्ववेदित्वमिति[9] ॥

तदेतत्सर्वमनुमानमुद्राद्रविणदरिद्रवचनमेव[10] कार्यत्वादेरसम्य-ग्घेतुत्वेन[11] तज्जनितज्ञानस्य मिथ्यारूपत्वात्। तथाहि[12]—कार्यत्वं स्वकारण[13]सत्तासमवायः[14][15] स्यादभूत्वाभावित्वमक्रियादर्शिनो-ऽपि कृतबुद्ध्युत्पादकत्वं कारणव्यापारानुविधायित्वं[16] वा स्या-दुपायान्तराभावात्। अथाद्यः पक्षस्तदा[17] योगिनामशेषकर्मक्षये प-

---

१ सर्व रूपेण। २ सर्वो दृष्टान्तधर्मो दार्ष्टान्तिके प्रवर्तते चेद्दृष्टान्त एव न स्यात्। ३ यद्दृष्टकर्तृकं तद्बुद्धिमन्निमित्तं यददृष्टकर्तृकं तदबुद्धिमन्निमित्तं। ४ अबुद्धिमन्निमित्तत्व। ५ अन्यथा। ६ अत्रापि चतुरस्वर्णकारादयो निमित्तम्। ७ कार्यत्वहेतुसमर्थनपरेण न्यायेन। ८ परमाण्वादि। ९ सर्वतन्वादिकार्याणां बुद्धिमद्धेतुकत्वतः। १० निमित्तकारणत्वात्। ११ कार्यत्वाद्यसद्धेतु। १२ विकल्पचतुष्कं कृत्वा वदति। १३ स्वस्य निष्पाद्यवस्तुनः कारणानि तेषां सत्ता तया समवायो मिलनमिह मृत्तिकायां घट इति मृत्तिकासत्तया घटो व्याप्यत इत्यर्थः। १४ स्वकारणसत्ता स्वका-रणसमवायो वा। १५ अयुतसिद्धानामाधार्याधारभूतानामिहेदंप्रत्ययलिङ्गो यः सम्बन्धः स समवायः। १६ कारणानि परमाण्वादीनि। १७ चेत्।

क्षान्तःपातिनि हेतोः कार्यत्वलक्षणस्य[1]प्रवृत्तेर्भागासिद्धत्वम्[2] । न च तत्र[3] सत्ता[4]समवायः स्वकारणसमवायो[5] वा समस्ति, तत्प्रक्षयस्य प्रध्वंसरूपत्वेन सत्तासमवाययोरभावात् सत्ताया द्रव्य[6]गुण[7]कर्मा[8]धारत्वाभ्यनुज्ञानात् समवायस्य च परै[9]र्द्रव्यादि-पञ्च[10]पदार्थवृत्तित्वाभ्युपगमात्[11] । अथा[12]भावपरित्यागेन भाव[13]स्यैव विवादाध्यासितस्य पक्षीकरणान्नायं दोषः प्रवेशभागिति चेत्तर्हि[14] मुक्त्यर्थिनां तदर्थमीश्वराराधनमनर्थकमेव स्यात् । तत्र[15] तस्या[16]किञ्चित्करत्वात् सत्तासमवायस्य विचारमधिरोहतः शतधा विशीर्यमाणत्वात् स्वरूपासिद्धं[17] च कार्यत्वम् । स[18] हि

---

१ योगिनामशेषकर्मक्षयस्य प्रध्वंसाभावरूपत्वान्नहि तत्र स्वकारणसत्तासमवायलक्षणस्य कार्यत्वस्य हेतोः प्रवृत्तिर्युज्यते । २ पक्षान्तःपातिनि भूधरादौ स्वकारणसत्तासमवायस्य प्रवृत्तेरशेषकर्मक्षये चाप्रवृत्तेः स्वकारणसत्तासमवायलक्षणस्य हेतोः पक्षैकदेशासिद्धत्वमिति । ३ कर्मक्षये कार्ये । ४ सत्तायाः सम्बन्धः। ५ स्वस्य कार्यस्य कर्मक्षयलक्षणस्य कारणे यमनियमादिलक्षणे समवायसम्बन्धः । ६ पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशकालदिगात्ममनांसि नवैव द्रव्याणि । ७ बुद्धिसुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नसंस्कारधर्माधर्मरूपरसगन्धस्पर्शसंख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविभागपरत्वापरत्वगुरुत्वद्रव्यत्वस्नेहशब्दाश्चेति चतुर्विंशतिगुणाः । ८ प्रसारणाकुञ्चनोत्क्षेपणावक्षेपणगमनानि पंच कर्माणि । ९ योगैः । १० द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेष । ११ अङ्गीकारात् । १२ योगैः प्राह । १३ तन्वादिकस्याभावव्यतिरिक्तभावस्यैव । १४ भावस्यैव पक्षीकरणाद्बुद्धिमद्धेतुकत्वसाध्ये, १५ मुक्त्यर्थिनि । १६ ईश्वराराधनस्य । १७ महीभूधरादौ सत्तासमवायस्यासम्भवात्स्वरूपासिद्धं कार्यत्वमिति । १८ सत्तासमवायः ।

समुत्पन्नानां भवेदुत्पद्यमानानां वा ? यद्युत्पन्नानां, सतामसतां ? न तावदसतां खरविषाणादेरपि तत्प्रसङ्गात्[1]। सतां[2] चेत् सत्तासमवायात्स्वतो वा ? न तावत्सत्तासमवायादनवस्थाप्रसङ्गात्[3] प्रागुक्तविकल्पद्वया[4]ऽनतिवृत्तेः। स्वतः[5] सतां तु सत्तासमवायानर्थक्यम्। अथोत्पद्यमानानां सत्तासम्बन्धो निष्ठासम्बन्धयो[6]रेककालत्वाभ्युपगमादिति मतम्[7]। तदा[8] सत्तासम्बन्ध उत्पादाद्भिन्नः किं वा अभिन्न इति। यदि भिन्नस्तदोत्पत्तेरसत्त्वाविशेषादुत्पत्त्यभावयोः किंकृतो[9] भेदः। अथोत्पत्तिसमाक्रान्तवस्तुसत्त्वेनोत्पत्तिरपि तथा[10]व्यपदिश्यते इति मतम्, तदपि अतिजाड्यवलिगतमेव। उत्पत्तिसत्त्व[11]प्रतिविवादे वस्तुसत्त्वस्यातिदुर्घटत्वादितरेतरा[12]श्रयदोषश्च। इत्युत्पत्ति[13]-

---

१ यदि समुत्पन्नानामसतां सत्तासमवायस्तदा खरविषाणादीनामपि सः स्यादसत्त्वाविशेषात्। २ सतां सत्तासमवायश्चेत्सत्तासमवायात्सतां सत्तासमवायः, स्वतो वा सतां सत्तासमवायः। ३ सत्तासमवायात्सतां सत्तासम्बन्धस्तर्हि सोऽन्यः सत्तासम्बन्धः सतामसतां वासतां चेत्खरविषाणादीनामपि तत्प्रसंगात्, सतां चेत्सत्तासम्बन्धात्सतां स्वतो वा सतां, सत्तासम्बन्धात्सतां चेत्तर्हि सोऽप्यपरः सत्तासम्बन्धः सतामसतां वेति विकल्पानामनवस्थानादनवस्था स्यात्। ४ सतामसतां वेति। ५ स्वरूपेण। ६ उत्पत्तिसत्तासमवाययोः। ७ यौगस्य। ८ जैनाः पृच्छन्ति। ९ उत्पत्तौ सत्तासमवायो नास्त्यभावेऽपि नास्ति तर्हि तयोः को भेदः। १० सत्वरूपेण। ११ उत्पत्तिश्च सत्त्वं चेति तयोर्विवादे। १२ यथाकथंचिद्भवतु तथापीतरेतराश्रयदूषणमापतितमिति। १३ उत्पत्तौ स-

सत्त्वे वस्तुनि तदेककालीनसत्तासम्बन्धावगमस्तदवगमे[1] च तत्रत्यसत्त्वेनोत्पत्तिसत्त्वनिश्चय[2] इति । अथैतद्दोषपरिजिहीर्षया[3] तयोरैक्यमभ्यनुज्ञायते[4][5], तर्हि तत्सम्बन्ध[6] एव कार्यत्वमिति । ततो[7] बुद्धिमद्धेतुकत्वे[8] गगनादिभिरनेकान्तः[9] । एतेन[10] स्वकारणसम्बन्धोऽपि चिन्तितः[11] । अथोभयसम्बन्धः[12] कार्यत्वमिति मतिः सापि न युक्ता । तत्सम्बन्धस्यापि[13] कादाचित्कत्वे[14] समवायस्यानित्यत्वप्रसङ्गात्[15] घटादिवदकादाचित्कत्वे सर्वदोपलम्भप्रसङ्गः[16] । अथ[17] वस्तूत्पादककारणानां सन्निधानाभावान्न सर्वदोपलम्भप्रसङ्गः । ननु वस्तूत्पत्त्यर्थं कारणानाम् व्यापारः ।

त्वमुत्पत्तिसत्वं तस्मिन् सति । १ वस्त्वेककालीनसम्बन्धावगमे । २ वस्तुस्थसत्वेन । ३ उक्तदोष । ४ उत्पत्तिसत्तासम्बन्धयोः । ५ अभिन्न इति द्वितीयभेदमंगीकृत्य दूषयति । ६ सत्तासम्बन्धः । ७ सत्तासम्बन्धरूपात्कार्यात् । ८ साध्ये सति । ९ गगनादौ सत्तासम्बन्धरूपसाधनत्वमस्ति बुद्धिमद्धेतुकत्वं नास्ति ततो साध्याभावे हेतुसद्भावादनेकान्तः । १० सत्तासमवायसम्बन्धनिराकरणेन । ११ स्वकारणसम्बन्ध-उत्पन्नानां स्यादुत्पद्यमानानां वा, यद्युत्पन्नानां तर्हि सतामसतां वा, नतावदसतां खरविषाणादीनामपि तत्प्रसंगादित्यादिना निरस्तः । १२ स्वकारणसमवायः सत्तासमवायश्चेत्युभयसम्बन्धः । १३ तनुकरणादीनामुभयसम्बन्धस्यापि । १४ तत्सम्बन्धोऽकादाचित्कः कादाचित्को वेति विकल्पद्वयं मनसि कृत्वा दूषयति । १५ कदाचित्कार्योत्पत्तिरस्ति कदाचिन्नास्तीति समवायोऽनित्यो भवितुमर्हति कादाचित्कत्वाद्घटवदिति समायाति । १६ कार्यस्य । १७ नैयायिकः प्राह ।

उत्पादश्च स्वकारणसत्तासमवायः स च सर्वदाप्यस्ति, इति तदर्थं[1] कारणोपादानमनर्थकमेव स्यात् । अभिव्यक्त्यर्थं तदु[2]पादानमित्यपि वार्त्तं[3] वस्तूत्पादापेक्षया अभिव्यक्तेर्घटनात्[4] । वस्त्वपेक्षयाऽभिव्यक्तौ कारणसम्पातात्प्रागपि कार्यवस्तुसद्भावप्रसङ्गात् । उत्पादस्याप्यभिव्यक्तिरसम्भाव्या, स्वकारणसत्तासम्बन्धलक्षणस्योत्पादस्यापि कारणव्यापारात्प्राक्सद्भावे वस्तुसद्भावप्रसंगात् । तल्लक्षणत्वाद्वस्तुसत्त्वस्य प्राक् सत एव हि केनचित् तिरोहितस्याभिव्यञ्जकेनाभिव्यक्तिस्तमस्तिरोहितस्य घटस्येव प्रदीपादिनेति । तन्नाभिव्यक्त्यर्थं कारणोपादानं युक्तं, तन्न स्वकारणसत्तासम्बन्धः कार्यत्वम् ॥ नाप्यभूत्वाभा[5]वित्वम् । तस्यापि विचारासहत्वात् । अभूत्वाभावित्वं हि भिन्नकालक्रियाद्वयाधिकरणभूते कर्त्तरि सिद्धे सिद्धिमध्यास्ते क्त्वान्तपदविशेषितवाक्यार्थत्वाद्भुक्त्वा व्रजतीत्यादिवाक्यार्[6]थवत् । न चात्रभवनाभवनयोराधारभूतस्य कर्तुरनुभवोऽस्ति । अभवनाधारस्याविद्यमानत्वेन भवनाधारस्य च विद्यमानतया भावाभावयोरेकाश्रयविरोधात् । अविरोधे च तयोः पर्यायमा-

---

१ वस्तूत्पत्त्यर्थं । २ कारण । ३ उभयसम्बन्धरूपस्य वस्तूत्पादस्य नित्यत्वान्न तदपेक्षयाभिव्यक्तिः सम्भवति । ४ द्वितीयविकल्पं दूषयति । ५ नैयायिका ह्यसत्कार्यवादिनस्तेषां मते परमाण्वादिषु कारणेषु सर्वथाऽसन्त्येव द्व्यणुकादीनि कार्याणि समुत्पद्यन्ते । ६ यथात्र भिन्नकालाधिकरणभूते कर्तरि देवदत्ते सत्येव भुक्त्वा व्रजतीति युज्यते न तथाभवनभवनक्रियाद्वया-

श्रेणैव भेदो न वास्तव इति । अस्तु वा यथाकथंचिद्भूत्वाभावित्वं, तथापि तन्वादौ सर्वज्ञानभ्युपगमाद्भागासिद्धम् । न हि महीमहीधराकूपारारामादयः प्रागभूत्वा भवन्तोऽभ्युपगम्यन्ते परैः[1] । तेषां तैः सर्वदावस्थाना[2]भ्युपगमात् । अथ सावयवत्वेन ते[3]षामपि सादित्वं[4] प्रसाध्यते. तदप्यशिक्षितलक्षितम् । [5]अवयवेषु वृत्तेरवयवैरारभ्यत्वेन च सावयवत्वानुपपत्तेः । प्रथमपक्षे सावयव[6]सामान्येनानेकान्तात् । द्वितीयपक्षे सा[7]ध्याविशिष्टत्वात् । अथ सन्निवेश एव सावयवत्वं तच्च घटादिवत् पृथिव्यादावुपलभ्यत इत्थभूत्वाभावित्वमभिधीयते तदप्ययेशलम् । सन्निवेशस्यापि विचारासहत्वात् । स ह्यवयव[8]सम्बन्धो भवेद्रचनाविशेषो वा । यद्यवयवसम्बन्धस्तदा गगनादिनानेकान्तः सकल[9]मूर्तिमद्द्रव्यसंयोगनिबन्धनप्रदेशनानात्वस्य सद्भावात् । अथोपचरिता

धिकरणभूतस्य कर्तुरनुभवोऽस्ति । १ जैनैः । २ कालः सर्वज्ञनाथश्च जीवो लोकस्तथागमः । अनादिनिधना ह्येते द्रव्यरूपेण संस्थिताः । १ । ३ महीधरादीनाम् । ४ न तु सर्वदानवस्थारूपतया सादित्वं साध्यते कादाचित्कत्वादपि न साध्यते किन्तु सावयवत्वेन साध्यते । ५ अवयवेषु वृत्तित्वं सावयवत्वं तैरारभ्यत्वं वा । ६ महीधरादयः सादयोऽवयवेषु वृत्तेरित्युच्यमाने सामान्येन व्यभिचारः स्यात्सामान्यं ह्यवयवेषु वर्तते परन्तु तत्र सादित्वं नास्ति । ७ अवयवैरारभ्यत्वकार्यत्वयोः समानार्थत्वात्साध्यसमोऽयं हेतुः । ८ अवयवैः सह सम्बन्धो यस्य स तथोक्तः । ९ इयत्तावद्द्रव्यपरिणामयोगित्वं मूर्तिमत्वं । सकलमूर्तिमद्द्रव्यसंयोग एव नि-

एव तत्र[1] प्रदेशा इति चेत्तर्हि सकलमूर्तिमद्द्रव्यसम्बन्धस्या[2]-
प्युपचरितत्वात्सर्वगत[3]त्वमप्युपचरितं स्यात्। श्रोत्रस्यार्थक्रि-
याका[4]रित्वं च न स्यादुपचरितप्रदेशरूपत्वात्। धर्मादिना[5] सं-
स्कारात्तत[6]: सेत्य[7]युक्तम्। उपचरितस्यासद्रूपस्य तेनो[8]पकारा-
योगात्, खरविषाणस्येव ततो न किञ्चिदेत[9]त्। अथ रचनाविशे-
षस्तदा प[10]रम्प्रतिभागासिद्धत्वं तदव[11]स्थमेवेति नाभूत्वाभावित्वं
विचारं सहते। नाप्यक्रियादर्शिनोऽपि कृतबुद्ध्युत्[12]पादकत्वम्।
तद्धि कृतस[13]मयस्याकृतसमयस्य वा भवेत्। कृतसमयस्य चेद्
गगनादेरपि बुद्धिमद्धेतुकत्वं स्यात्[14]। तत्रापि ख[15]ननोत्सेचनात्

बन्धनं येषां तेषां प्रदेशानां नानात्वं तस्य सद्भावात्। १ आकाशादौ।
२ आकाशस्य मूर्तिद्रव्येण सह संयोग एकदेशेन सर्वात्मना वैकदेशेन चेत्साव-
यवत्वं सर्वात्मना चेदव्यापकत्वं। ३ व्यापकत्वम्। ४ शब्दग्राहकत्वम्।
५ पुण्यादिना। सुखदुःखानुभवप्रापकधर्माधर्मविशिष्टस्यैव नभोदेशस्य
श्रोत्रस्याभ्युपगमाददृष्टबलादर्थक्रियाकारित्वात्। ६ श्रोत्रात्। ७
अर्थक्रिया। ८ धर्मादिना। ९ अवयवसम्बन्धलक्षणं सन्निवेशविशि-
ष्टत्वमिति। १० महीमहीधरादयः सादयः सावयवत्वाद्घटवादित्यत्र सुखादिव
द्रचनाविशेषो नास्ति ततो भागासिद्धत्वमिति, नहि परैर्महीधरादयो रचनाविशि-
ष्टारभ्युपगम्यते। ११ भागासिद्धत्वं पूर्ववत्तदवस्थमेव। १२ न क्रियां
पश्यतीत्यक्रियादर्शिनोऽपि कृतबुद्ध्युत्पादकत्वलक्षणकार्यत्वमपि क्षित्यादीनां बु
द्धिमद्धेतुकत्वे साध्ये साधयितुनालमित्यर्थः। १३ गृहीतसंकेतस्य। कारण-
मिदं कार्यमिदमिति गृहीतसंकेतपुरुषस्य। १४ तत्कथमितिचेत्। १५ मृत्तिका-

कृतमितिगृहीतसङ्केतस्य कृतबुद्धिसम्भवात्। सा[1] मिथ्येति चे-त्त्वदीयापि किं न स्यात्। बाधासद्भावस्य प्रतिप्रमाणविरोधस्य चान्यत्रापि समानत्वात्, प्रत्यक्षेणोभयत्रापि कर्तुरग्रहणात्। क्षित्या-दिकं बुद्धिमद्धेतुकं न भवत्यस्मदाद्यनवग्राह्यपरिमाणाधारत्वात् गगनादिवदिति प्रमाणस्य साधारणत्वात्। तन्न कृतसमयस्य कृतबुद्ध्युत्पादकत्वम्। नाप्यकृतसमयस्याऽसिद्धत्वाद्विप्र-तिपत्तिप्रसङ्गाच्च। कारणव्यापारानुविधायित्वं च कारणमा-त्रापेक्षया यदीष्यते तदा विरुद्धं साधनम्। कारणविशेषापे-

दिनिष्काशन । १ गर्तोऽयमिति । २ गगनादौ या कृतबुद्धिः । ३ तन्वादौ या कृतबुद्धिः । ४ नित्यमाकाशं सदकारणत्वात्समवायवदि-ति । ५ तन्वादौ । त्वमेवं कथयिष्यसि यद्गगनादौ कृतबुद्ध्युत्पाद-कत्वस्य प्रतिबाधकं प्रमाणमस्ति तर्ह्यन्यत्र तन्वादावपि बाधकप्रमाणमस्त्येव । ६ अपरिछेद्य । ७ परिमाणाधारित्वादित्युक्ते घटगतपरिमाणादौ व्यभि-चारस्तस्मादस्मदाद्यवग्राह्येतिपदोपादानं कृतम् । ८ भूम्याकाशयोः । ९ समबलवत्वात् । १० अक्रियादर्शिनोऽपि कृतबुद्ध्युत्पादकत्वादिति हेतोर-सिद्धत्वादित्यर्थः । ११ अयं घटो न पट इति विप्रतिपत्तिरास्ति परन्त्वग्रहीत-समयस्य तथा नास्ति । १२ निःसंदेहप्रसङ्गात्, यदि कृतसकेतस्य कृत-बुद्धिसम्भवस्तथाकृतसकेतस्यापि यदि कृतबुद्धिसम्भवश्चेत्तदा मास्तु विप्रतिप-त्तिरस्ति च ततो विप्रतिपत्तिप्रसङ्गो दूषणमिति भावः । १३ कारणमात्र-व्यापारानुविधायित्वं कारणविशेषव्यापारानुविधायित्वं वा । १४ विपक्षी-भूतेऽबुद्धिमद्धेतुके वस्तुनि वर्तमानत्वात् । ईश्वरकारणविशेषस्येष्टस्यासिद्धेर्वि-

क्षया चेदितरेतराश्रयत्वम् । सिद्धे हि कारणविशेषे बुद्धिमति तदपेक्षया[1] कारणव्यापारानुविधायित्वं कार्यत्वम् । ततस्तद्विशेषसिद्धिरिति[2] सन्निवेश[3]विशिष्टत्वमचेतनोपादानत्वं चोक्तदोषदुष्टत्वान्न पृथक् चिन्त्यते । स्वरूपभागासिद्धत्वादेस्तत्रापि सुलभत्वात् । विरुद्धाश्चामी हेतवो दृष्टन्तानुग्रहेण सशरीरासर्वज्ञपूर्वकत्वसाधनात् । न धूमात्पावकानुमानेऽप्ययं दोषः

रुद्धत्वम् । १ कारणविशेषापेक्षया । २ कारणव्यापारानुविधायित्वतः । ३ कारणविशेषबुद्धिमद्धेतुकत्वासिद्धिः । ४ सुखादिना भागासिद्धत्वं यतः सुखादौ रचनाविशेषत्वं नास्ति कार्यत्वमस्ति । ५ अंकुरादिकं सकर्तृकमचेतनोपादानत्वादित्यत्रचेतनोपादाने ज्ञानकार्येऽप्रवर्तमानत्वादचेतनोपादानत्वस्य हेतोर्भागासिद्धत्वम् । ६ तन्वादिकं बुद्धिमद्धेतुकं कार्यत्वात्घटवदित्यत्र यथा घटो बुद्धिमत्कुंभकारेण कृतः सोऽपि सशरीरसर्वज्ञस्तथादृष्टान्तसामर्थ्यात्तन्वादिकार्यमपि सशरीरासर्वज्ञबुद्धिमान्निमित्तं स्यादितीष्टविरुद्धसाधनाद्विरुद्धसाधनमिति । ७ कार्यत्वसन्निवेशविशिष्टत्वाचेतनोपादानत्वरूपास्त्रयो हेतवः । ८ दृष्टान्तसामर्थ्याद्यदीश्वरस्य सशरीरासर्वज्ञत्वं साध्यते तथा सति सर्वानुमानोच्छेदः स्यात्तथाहि-साग्निरयं पर्वतो धूमवत्वान्महानसवदित्यत्रापि पर्वतादौ महानसपरिदृष्टस्यैव खादिरपलाशाद्यग्नेः सिद्धेरिष्टविरुद्धसाधनाद्विरुद्धं साधनमिति नैयायिकशंकां परिहरति । ९ अत्र नैयायकेनाशंक्यते यद्भवतोक्तं तन्न युक्तमुत्कर्षसमजातिरूपासदुत्तरत्वात्तथाहि दृष्टान्तधर्मं साध्ये समासंजयतो मतोत्कर्षसमा जातिरिति प्रकृतेऽप्येवं दृष्टान्तधर्मयोरसर्वज्ञसशरीरत्वयोः साध्यधर्मिणि बुद्धिमति समारोपणादुत्कर्षसमाजातिः स्यादेवेति शंकां परिहरति । १० विरुद्धरूपो

तत्र तार्णपार्णादिविशेषाधाराग्निमात्रव्याप्तधूमस्य दर्शनात्। नैवमत्र सर्वज्ञासर्वज्ञकर्तृविशेषाधिकरणतत्सामान्येन कार्यत्वस्य व्याप्तिः सर्वज्ञस्य कर्तुरतोऽनुमानात्प्रागसिद्धत्वात्। व्यभिचारिणश्चामी हेतवो बुद्धिमत्कारणमन्तरेणापि विद्युदादीनां प्रादुर्भावसम्भवात्। सुप्ताद्यवस्थायामबुद्धिपूर्वकस्यापि कार्यस्य दर्शनात्। तदवश्यं तत्रापि भर्गाख्यं कारणमित्यतिमुग्धविलसितं, तद्व्यापारस्याप्यसम्भवादशरीरत्वात्। ज्ञानमात्रेण कार्यकारत्वाघटनादिच्छाप्रयत्नयोः शरीराभावेऽसम्भवात्तदसम्भ-

---

दोषः। १ धूमात्पावकानुमाने। २ महानसे सामान्येन धूमाग्निसम्बन्धं दृष्ट्वा पर्वतेऽपि सामान्याग्निमनुमिनोति तथा सति महद्दोषो न। ३ क्षित्यंकुरादिकं कर्तृजन्यं कार्यत्वादित्यत्र ४ यथा धूमात्पावकानुमाने तार्णादीनां विशेषाग्नीनामग्निमात्राधारग्रहणमस्ति न तथा तव मतेसर्वज्ञासर्वज्ञयोर्विशेषभूतयोस्तदाधारभूतस्य पुरुषस्य ग्रहणमस्ति येन कार्यत्वस्य व्याप्तिः स्यात्। यतस्तवमते सर्वज्ञ एव बुद्धिमान्नतु सामन्यः। ५ भवतां मते हि सर्वज्ञसाधकं तन्वादयो बुद्धिमन्निमित्तकाः कार्यत्वादिदमेवानुमानं तच्च सांप्रतं विवादापन्नमेवातो न तेन सर्वज्ञसिद्धिरिति सर्वज्ञासर्वज्ञविशेषाधिकरणतत्सामान्येन न कार्यत्वस्य हेतोर्व्याप्तिरिति। वन्हिमान्धूमादित्यत्र तु तार्णपार्णादिविशेषाधारवह्निसामान्येन धूमस्य व्याप्तिरस्त्येवेति नात्र दोषः। ६ यथा घटपटकर्तारौ कुलालकुविंदौ न तथा विद्युत्कर्ता कश्चिदस्त्यतो विद्युति बुद्धिमत्कर्तुरभावात्कार्यत्वसद्भावाद्व्यभिचारत्वम्। ७ हस्तपादादिसञ्चालनस्य कार्यस्य। ८ सुप्ताद्यवस्थायां समुत्पन्नकार्ये। ९ सदाशिव। १० सदाशिव। ११ ईश्वरस्य। १२ चिकीर्षाक्रिययोः।

यश्च पुरातनैर्विस्तरेणाभिहित आप्तपरीक्षादौ, अतः पुनरत्र नोच्यते। यच्च महेश्वरस्य क्लेशादिभिरपरामृष्टत्वं निरतिशयत्वमैश्वर्याद्युपेतत्वं तत्सर्वमपि गगनाब्जसौरभव्यावर्णनमिव निवर्षत्वादुपेक्षामर्हति[1]। ततो न महेश्वरस्याशेषज्ञत्वम्[2]। नापि[3] ब्रह्मणः। तस्यापि सद्भावावेदकप्रमाणाभावात्। न तावत्प्रत्यक्षं तदावेदकमविप्रतिपत्तिप्रसङ्गात्। न चानुमानमविनाभाविलिङ्गाभावात्। ननु प्रत्यक्षं तद्ग्राहकमस्त्येव, अक्षिविस्फालनानन्तरं निर्विकल्पकस्य सन्मात्रविधिविषयतयोत्पत्तेः। सत्तायाश्च परमब्रह्मरूपत्वात्। तथा चोक्तम्—अस्ति ह्यालोचनाज्ञानं प्रथमं निर्विकल्पकम्। बालमूकादिविज्ञानसदृशं शुद्धवस्तुजम्॥ १॥ न च विधिवत् परस्परव्यावृत्तिरप्यध्यक्षतः प्रतीयत इति द्वैतसिद्धिः। तस्य निषेधाविषयत्वात्। तथा चोक्तम्। आहुर्विधातृ प्रत्यक्षं न

१ ईश्वराभावात्। २ अनादरणीयताम्। ३ सर्वज्ञत्वम्। ४ अस्तिव। ५ सर्वेषामपि ब्रह्मदर्शनं स्यात्। ६ यदि प्रत्यक्षं तदावेदकं तर्हि सर्वेषामविप्रतिपत्तिरस्त्वस्ति च विप्रतिपत्तिः। ७ वेदान्तिनो वदन्ति। ८ ब्रह्म। ९ विकल्पज्ञानशून्यस्य। १० वसः। ११ सत्ता सा महानात्मा यामाहुस्त्वतलादयः। १२ प्रथमालोकनं विशिष्टव्यवहारानङ्गभूतं ज्ञानमालोचनाज्ञानम्। १३ परमार्थभूतेश्वरविधिजन्यं प्रत्यक्षम्। १४ यथा विधिः प्रत्यक्षस्य विषयः तथा व्यावृत्तिरपि विषय इति जैनशङ्कां निराकरोति। १५ सत्तावत्। १६ प्रत्यक्षस्य विषया व्यावृत्ति नेति भावः। १७ प्रत्यक्षस्य। १८ घटे पटो नास्तीति। १९ विधिविषयम्।

निषेधं[1] विपश्चितः । नैकत्वे[2] आगमस्तेन[3] प्रत्यक्षेण प्रबाध्यते[4] ॥१॥
अनुमानादपि तत्सद्भावो विभाव्यत एव । तथाहि[5]-ग्रामारा- मादयः पदार्थाः प्रतिभासान्तःप्रविष्टाः प्रतिभासमानत्वात् । यत्प्रतिभासते तत्प्रतिभासान्तःप्रविष्टम्, यथा प्रतिभासस्वरूपं प्रतिभासन्ते च विवादापन्ना इति । तदागमानामपि पुरुष एवेदं यद्भूतं यच्च भाव्यमिति बहुलमुपलम्भात् । सर्वं वै[10] खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन । आरामं[11] तस्य[12] पश्यन्ति न तं पश्यति कश्चन । इति श्रुतेश्च ॥ १ ॥ ननु[13] परमब्रह्मण एव परमार्थसत्त्वे कथं घटादिभेदोऽवभासत इति न चोद्यम् । सर्वस्यापि तद्विवर्ततया[14]वभासनात् । न चाशेषभेदस्य तद्विवर्तत्वमसिद्धं प्रमाणप्रसिद्धत्वात् । तथाहि-विवादा- ध्यासितं विश्वमेककारणपूर्वकमेकरूपान्वितत्वात्[15] । घटघटी-

---

१ निषेधविषयं न । २ एकत्वे सन्मात्रे योऽसावागमः । सर्वं वै खल्विदं ब्रह्मेत्याद्यागमस्य बाधकं प्रत्यक्षं न । ३ कारणेन । ४ प्र- त्यक्षं साधकं न बाधकम् । ५ उक्तार्थमेव विवृणोति । ६ व्यवहारे ऽनुमानांगीकाराद्ब्रह्मताश्रयः । ७ ब्रह्मस्वरूपम् । ८ ग्रामारामादयः । ९ ब्रह्मवाचकानां तदावेदकश्रुतीनाम् । १० सर्वं ब्रह्मेति प्रतिपादनार्थं वै ग्रहणम् । ११ विवर्तम् । १२ ब्रह्मणः । १३ जैनाः प्राहुः । १४ एकस्यातात्त्विकानेकप्रतिपत्तिर्विवर्त्तः, पूर्वरूपापरित्यागेनासत्यनानाकार- प्रतिभासः । पूर्वावस्थाऽपरित्यागेनावस्थान्तरापत्तिर्वा विवर्त्तः उपादान- विषमसत्ताकत्वे सत्यन्यथाभावो वा । १५ सत्स्वरूपानुवृत्तिरूपत्वात् ।

सरावोदञ्चनादीनां मृद्रूपान्वितानां यथा मृदेककारणपूर्वकत्वं, सद्रूपेणान्वितं च निखिलं वस्त्विति । तथाऽऽगमोऽप्यस्ति—"ऊर्णनाभ[1] इवांशूनां[2] चन्द्रकान्त इवाम्भसाम् । प्ररोहाणामिव प्लक्षः[3] स हेतुः सर्वजन्मिनामिति ॥ १ ॥" तदेतन्मदिरारसास्वादगद्गदोदितमिव मदनकोद्रवाद्युपयोगजनितव्यामोहमुग्धविलसितमिव निखिलमवभासते विचारासहत्वात् । तथा हि—यत्प्रत्यक्षसत्ताविषयत्वमभिहितं तत्र किं निर्विशेषसत्ताविषयत्वं[4] सविशेषसत्तावबोधकत्वम्[5] वा ? न तावत्पौरस्त्यः[6] पक्षः सत्तायाः सामान्यरूपत्वात् । विशेषनिरपेक्षतयाऽनवभासनात्, शाबलेयादिविशेषानवभासने गोत्वाऽनवभासनवत् । 'निर्विशेषं हि सामान्यं भवेच्छशविषाणवदित्यभिधानात्, सामान्यरूपत्वं च सत्तायाः सत्सदित्यन्वय[7]बुद्धिविषयत्वेन सुप्रसिद्धमेव । अथ पाश्चात्यः[8] पक्षः कक्षीक्रियते, तदा न परमपुरुष[9]सिद्धिः । परस्परव्यावृत्ताकार[10]विशेषाणामध्यक्षतोऽवभासनात् । यदपि साधनमभ्यधायि प्रतिभासमानत्वं तदपि न साधु, विचारासहत्वात् । तथाहि प्रतिभासमानत्वं स्वतः

---

१ तंतुवायः । २ तंतूनाम् । ३ न्यग्रोधः । ४ सामान्यसत्ताविषयत्वम् । ५ विशेषसहितसत्तायाः परिच्छेदकत्वम् । ६ प्रथमपक्षः । ७ सति सद्भावोऽन्वयः । ८ सविशेषसत्तावबोधकत्वमिति द्वितीयः पक्षः । ९ परब्रह्मणो । १० अयमस्माद्भिन्नोऽयं श्यामः शबलो वेत्यादिपरस्परभिन्नाकारघटपटादिपदार्थानाम् ।

परतो वा ? न तावत्स्व[1]तोऽसिद्धत्वा[2]त् । परतश्चेद्विरुद्ध[3]म् । परतः प्रतिभासमानत्वं हि परं विना नोपपद्यते, प्रतिभासनमात्रमपि न सिद्धिमधिवसति तस्य तद्विशेषानान्तरीयकत्वा[4]त्तद्विशेषा[5]भ्युपगमे च द्वैतप्रसक्तिः[6] । किञ्च धर्मिहेतुदृष्टान्ता अनुमानोपायभूताः प्रतिभासन्ते न वेति । प्रथमपक्षे प्रतिभासान्तःप्रविष्टाः प्रतिभासबहिर्भूता वा । यद्याद्यः पक्षस्तदा साध्यान्त[7]ःपातित्वान्न ततोऽनुमानम् । तद्बहिर्भावे[8] तैरेव[9] हेतोर्व्यभिचारः । अप्रतिभा[10]समानत्वेऽपि तद्व्य[11]वस्थाभावात्तनो नानुमानमिति । अ[12]थानाद्यविद्या[13]विजृम्भि[14]तत्वात्स[15]र्वमेतदसम्बद्धमित्यनल्पतमोविलसितम्, अविद्यायामप्युक्त[16]दोषानुषङ्गात् ।

---

१ घटादीनां स्वतः प्रतिभासमानत्वाभावात् । २ पदार्थानां स्वयमेव प्रतिभासनं चेन्नेत्रोन्मीलने प्रकाशाभावेऽपि स्वतः प्रतिभासनं भवतु परन्तु तथा नास्ति तस्माद्धेतुरसिद्धमेव । ३ एकत्वविरोधिद्वैतप्रसाधकत्वाद्विरुद्धमिति । ४ विशेषाविनाभावित्वात् । ५ प्रतिभासमानविशेषाभ्युपगमे । ६ सम्बन्ध । ७ प्रतिभासान्तः प्रविष्टत्वाद्धेतोः सिद्धसाध्यता समागता । ८ द्वितीयः पक्षः । ९ सह । १० न प्रतिभासन्त इति द्वितीयः पक्षः । ११ तेषां धर्मादीनाम् । १२ भाट्टः प्राह । १३ अविद्या स्वाश्रयव्यामोहकरी । १४ विडंबितत्वात् । १६ पूर्वोक्तं धर्मिहेतुदृष्टान्तादिकं सर्वम् । १६ अविद्या प्रतिभासते न वा, प्रतिभासते चेत्प्रतिभासान्तः प्रविष्टा तद्बहिर्भूता वा, प्रतिभासान्तः प्रविष्टा चेद्विद्यैव स्यात् तद्बहिर्भूता चेत्तयैव हेतोर्व्यभिचारो द्वैतापत्तिश्च, न प्रतिभासते चेत्तदाविद्येति व्यवस्था न स्यात् ।

सकलविकल[1]त्वात्तस्या[2] नैव[3] दोष इत्यप्यतिमुग्धभाषितम् । केनापि रूपेण तस्याः प्रतिभासाभावे तत्स्व[4]रूपानवधा[5]रणात् । अपरमप्यत्र[6] विस्तरेण देवागमालङ्कारे[7] चिन्तितमिति नेह प्रत[8]न्यते । यच्च परमब्रह्मविवर्त्तत्वमखिलभेदानामित्युक्तं । तत्राप्येकरूपेणान्वितत्वं हेतुरन्वेत्र[9]न्वीयमा[10]नद्वयाविनाभावित्वेन पुरुषाद्वैतं प्रतिब[11]ध्नातीति स्वेष्टविघातकारित्वाद्विरुद्धः । अन्वि-[12]तत्वमेकहेतुके[13] घटा[14]दावनेकहेतुके स्तम्भकुम्भाम्भोरुहादावप्युपलभ्यत इत्यनैका[15]न्तिकश्च । किमर्थं चेद[16] कार्यमसौ विदधाति? अन्येन प्रयुक्तत्वात्, कृपावशात् क्रीडावशात्, स्वभावाद्वा? अन्येन प्रयुक्तत्वे स्वातन्त्र्यहानिर्द्वैतप्रसङ्गश्च । कृपावशादिति नोत्तरम् । कृपायां दुःखिनामकरणप्रसङ्गात् । परोपकारकरणनिष्ठत्वात्तस्याः सृष्टेः प्रागनुकम्पाविषयप्राणिनामभावाच्च न सा[17] युज्यते । कृपापरस्य प्रलयविधानायोगाच्च । अदृष्टवशात्तद्वि[18]धाने स्वातन्त्र्यहानिः कृपापरस्य पीडाकारणा[19]दृष्टव्यपेक्षा-

---

१ शून्यत्वात् । २ अविद्यायाः । ३ उक्तलक्षणः । ४ अविद्या । ५ यथा काचकामलादिदोषसद्भावे मिथ्याज्ञानसद्भावस्तदभावे तदभावस्तथाविकल्पाभावेऽविद्यास्वरूपाभावः । ६ अविद्यमानप्रयोगे । ७ अष्टसहस्त्र्याम् । ८ न विस्तार्यते । ९ अन्वेता पुमान् । १० अन्वीयमानाः पदार्थाः । ११ निषेधयति । १२ एकरूपेणान्वितत्वादिति साधनं विचार्यते । १३ मृदेककारणके । १४ घटघटीसरावोदंचनादौ । १५ सव्यभिचारोऽनैकांतिकः । १६ विश्वरूपम् । १७ अनुकम्पा । १८ जगद्विधाने । १९ पापलक्षण ।

योगाच्च । क्रीडावशात्प्रवृत्तौ न प्रभुत्वं क्रीडोपायव्यपेक्षणा[1] द्बालकवत् । क्रीडोपायस्य तत्साध्यस्य[2] च युगपदुत्पत्तिप्रसङ्गश्च । सति समर्थे कारणे कार्यस्यावश्यम्भावात्[3] । अन्यथा क्रमेणापि सा[4] ततो[5] न स्यात् । अथ स्वभावादसौ[6] जगन्निर्मिनोति यथाग्निर्दहति वायुर्वातीति मतं, तदपि बालभाषितमेव पूर्वोक्तदोषानिवृत्तेः[7] । तथाहि[8]–क्रमवर्तिविवर्तजातमखिलमपि युगपदुत्पद्येत । अपेक्षणीयस्य[9] सहकारिणोऽपि तत्साध्यत्वेन[10] यौगपद्यसम्भवात् उदाहरणवैषम्यं[11] च । वन्ह्यादेः कादाचित्कस्वहेतुजनितस्य[12] नियतशक्त्यात्मकत्वोपपत्तेरन्यत्र[13][14][15] नित्यव्यापिसमर्थैकस्वभावकारणजन्यत्वेन देशकालप्रतिनियमस्य कार्ये दुरुपपादात्[16] । तदेवं ब्रह्मणोऽसिद्धौ वेदानां तत्सुप्तप्रबुद्धावस्थात्वप्रतिपादनं[17] परमपुरुषाख्यमहाभूतनिःश्वसिता-

---

१ कंदुकादि । २ क्रीडासाध्यसुखस्य । ३ समर्थकारणाभावे । ४ उत्पत्तिः । ५ ब्रह्मणः । ६ ब्रह्म । ७ जगतो युगपदुत्पत्त्यादि । ८ दोषं समुद्भावयति । ९ परब्रह्मणि मुख्यकारणे सति किमर्थं कारणानां युगपदुत्पत्तिर्नास्ति, यदि तत्र तन्नियतकारणस्य संयोगाभावान्नोत्पद्यत इति चेत्तर्हि तन्नियतकारणस्य संयोगस्यापि करणीयत्वेन सम्भवोऽस्तु । १० ब्रह्मकरणीयत्वेन । ११ अग्निर्दहतीत्यादि । १२ काष्ठादि । १३ दहन । १४ मर्यादाभूतशक्तिस्वरूपोपपत्तेः । १५ ब्रह्मणि । १६ अघटनात् । १७ सुप्तिप्रलयः प्रबुद्धावस्थासृष्टेरेतस्य महतो निःश्वसितमेवेति ऋग्वेदो यजुर्वेदश्च । निःस्वसितं तस्य वेदा वीक्षितमेतस्य पञ्च भूतानि ।

मिधानं च गगनारविन्दमकरन्दव्यावर्णनवदनवधेयार्थविषय-त्वादुपेक्षामर्हति[1] । यच्चागमः प्रमाणं "सर्वं वै खल्विदं ब्रह्मेत्यादि" "ऊर्णनाभ इत्यादि" च तत्सर्वमुक्तविधिनाऽद्वैतविरोधीति नावकाशं[2] लभते । न चापौरुषेय आगमोऽस्तीत्यग्रेप्रपञ्चयिष्यते । तस्मान्न पुरुषोत्तमोऽपि विचारणां प्राञ्चति ॥

प्रत्यक्षेतरभेदभिन्नममलं मानं द्विधैवोदितम् ।
देवैर्[3]दीप्त[4]गुणैर्विचार्य विधिवत्[5]संख्याततेः सं[6]ग्रहात् ॥
मानानामिति [7]तद्दिग[8]प्यभिहितं श्रीरत्ननन्द्याह्वयै ।
[9]रेतद्व्याख्यानमदो विशुद्धधिषणैर्बोद्धव्यमव्यो[10]हतम् ॥१॥

मुख्यसंव्यवहाराभ्यां प्रत्यक्षमुपदर्शितम् ।
देवोक्तमुप[11]जीवद्भिः सूरिभिर्ज्ञापितं मया[12] ॥ २ ॥

इति परीक्षामुखस्य लघुवृत्तौ द्वितीयः समुद्देशः ॥ २ ॥

स्मितमेतस्य चरमचरमस्य च सुप्तं महाप्रलयः । १ । इति भामती १ प्रतिपाद्यप्रतिपादकभावेन । २ मतस्थापने । ३ अकलंकदेवैः । ४ दर्शनाविशुद्धादिगुणैः । ५ यथोक्तप्रकारेण । ६ संक्षेपात्संग्रहमाश्रित्येत्यर्थः । ७ हेतोः । ८ तेषां मानानां दिक् तद्दिक् । ९ एतत् । १० निर्दोषम् । ११ अभ्युपगच्छद्भिः । १२ मयानन्तवीर्येण ।

अथेदानीमुद्दिष्टे[1] प्रत्यक्षेतरभेदेन प्रमाणद्वित्वे प्रथमभेदं व्याख्याय, इतरद्व्याचष्टे[2]—

परोक्षमितरदिति ॥ १ ॥

उक्तप्रतिपक्षमितरच्छब्दो ब्रूते। ततः प्रत्यक्षादितरदिति लभ्यते, तच्च परोक्षमिति। तस्य च सामग्रीस्वरूपे[3] निरूपयन्नाह—

प्रत्यक्षादिनिमित्तं[4] स्मृतिप्रत्यभिज्ञान तर्कानुमानागमभेदामिति[5] ॥ २ ॥

प्रत्यक्षादिनिमित्तमित्यत्रादिशब्देन परोक्षमपि गृह्यते[6]। तच्च यथावसरं निरूपयिष्यते। प्रत्यक्षादिनिमत्तं यस्येति विग्रहः। स्मृत्यादिषु द्वंद्वः। ते भेदा यस्य इति विग्रहः। तत्र स्मृतिं क्रमप्राप्तां दर्शयन्नाह—

संस्कारोद्बोधनिबन्धना तदित्याकारा स्मृतिरिति ॥ ३ ॥

संस्कारस्योद्बोधः प्राकट्यं स निबन्धनं यस्याः सा तथोक्ता। तदित्याकारा तदित्युल्लेखिनी, एवम्भूता स्मृतिर्भव-

---

१ नाममात्रेणार्थानामभिधानमुद्देशः। २ परोक्षप्रमाणम्। ३ उत्पत्तिकारणम्। ४ अविशदस्वरूपम्। ५ स्मृतिः प्रत्यक्षपूर्विका प्रत्यभिज्ञानं प्रत्यक्षस्मरणपूर्वकं प्रत्यक्षस्मरणप्रत्यभिज्ञानपूर्वकस्तर्कोऽनुमानं प्रत्यक्षस्मरणप्रत्यभिज्ञानतर्कपूर्वकमागमः श्रावणाध्यक्षस्मृतिसंकेतपूर्वकमिति। ६ परोक्षरूपनि-

स्तीति शेषः उदाहरणमाह—

स देवदत्तो यथेति ॥ ४ ॥

प्रत्यभिज्ञानं प्राप्तकालमाह—

दर्शनस्मरणकारणकं[1] सङ्कलनं[2] प्रत्यभिज्ञानं । तदेवेदं तत्सदृशं तद्विलक्षणं तत्प्रतियोगी[3]त्यादि ॥ ५ ॥

अत्र दर्शनस्मरणकारणकत्वात् सादृश्यादि[4]विषयस्यापि प्रत्यभिज्ञानत्वमुक्तम् । येषां[5] तु सादृश्यविषयमुपमानाख्यं[6]

मित्तम् । १ निमित्तकम । २ अनुभूतार्थस्य विवक्षितधर्मसम्बन्धित्वेऽनुसन्धानं संकलनमेकत्वसादृश्यादिधर्मयुक्तत्वेन पुनर्ग्रहणमिति वा । ३ यन्निरूपणाधीनं निरूपणं यस्य तत्तत्प्रतियोगी । ४ संकलनस्येति शेषः । ५ नैयायिकादीनाम् । ६ दृश्यमानाद्यदन्यत्र, विज्ञानमुपजायते । सादृश्योपाधिवत्तज्ज्ञैरुपमानमिति स्मृतम् । १ । तस्माद्यत्स्मर्यते तत्स्यात्सादृश्येन विशेषितम् । प्रमेयमुपमानस्य सादृश्यं वा तदन्वितम् । २ । प्रत्यक्षेणावबुद्धेऽपि, सादृश्ये गवि च स्मृते । विशिष्टस्यान्यतोऽसिद्धे रुपमानप्रमाणता । ३ । प्रत्यक्षेऽपि यथादेशे स्मर्यमाणे च पावके । विशिष्टविषयत्वेन नानुमानप्रमाणता । ४ । न चैतस्यानुमानत्वं, पक्षधर्माद्यसंभवात् । प्राक्प्रमेयस्य सादृश्यधर्मत्वेन न गृह्यते । ५ । गवये गृह्यमाणं च न गवार्थानुमापकम् । प्रतिज्ञार्थैकदेशत्वाद्गोगतस्य न लिंगता । ६ । गवयस्यापि सम्बन्धान्न गोलिंगत्वमृच्छति । सादृश्यं न च सर्वेण, पूर्वदृष्टं तदन्वयि । ७ ।

प्रमाणान्तरं तेषां वैलक्षण्यादिविषयं प्रमाणान्तरमनुषज्येत । तथा चोक्तम्-'उपमानं प्रसिद्धार्थसाधर्म्यात्साध्यसाधनम् । तद्वैधर्म्यात्प्रमाणं किं स्यात्संज्ञिप्रतिपादनम् ॥ १ ॥ इदमल्पं महद्दूरमासन्नं प्रांशु नेति वा । व्यपेक्षातः समक्षेऽर्थे विकल्पः साधनान्तरमिति ॥ २ ॥" एषां क्रमेणोदाहरणं दर्शयन्नाह—

यथा स एवायं देवदत्तः ॥ ६ ॥ गोसदृशो गवयः ॥ ७ ॥ गोविलक्षणो महिषः ॥ ८ ॥ इदमस्माद्दूरम् ॥९॥ वृक्षोऽयमित्यादि ॥ १० ॥

आदिशब्देन—"पयोम्बुभेदी हंसः स्यात् षट्पादैर्भ्रमरः स्मृतः । सप्तपर्णस्तु तत्त्वज्ञैर्विज्ञेयो विषमच्छदः ॥ १ ॥ पञ्चवर्ण

एकस्मिन्नपि दृष्टेऽर्थे द्वितीयं पश्यतो वने । सादृश्येन सहैवास्मिन्तदैवोत्पद्यते मतिः । ८ । प्रामाण्यवच्च सादृश्यमेकैकं हि समाप्यते । प्रतियोग्यन्यदृष्टेऽपि तत्तस्मादुपलभ्यते । ९ । १ गोविलक्षणो महिष इत्यत्र प्रमाणान्तरेण भवितव्यम् । २ संपद्येत । ३ गवादि । ४ प्रश्ने । ५ संज्ञिनो वाच्यस्य प्रतिपादनं, विवक्षितसंज्ञाविषयत्वेन च सङ्कलनं यथा वृक्षोऽयमित्यादि । ६ उन्नतम् । ७ अथवेदमस्मान्न महत । ८ परस्परापेक्षया । ९ तदा प्रमाणसंख्याविघटनम् । १० प्रत्यभिज्ञानभेदानाम् । ११ एकत्वप्रत्यभिज्ञानम् । १२ सादृश्यप्रत्यभिज्ञानम् । १३ वैलक्षण्यप्रत्यभिज्ञानम् । १४ तत्प्रतियोगिप्रत्यभिज्ञानम् । १५ वृक्षसामान्यस्मृतिप्रत्यभिज्ञानम् । १६ हंसो भवति पयोम्बुभेदकृत् । १७ भीमसेनकपूरोत्पादकेलिः ।

भवेद्गत्नं मेचकाख्यं पृथुस्तनी । युवतिश्चैकशृङ्गोऽपि गण्डकः परिकीर्तितः ॥ २ ॥ शरभोऽप्यष्टभिः पादैः सिंहश्चारुसटान्वितः ।" इत्येवमादिशब्दश्रवणात्तथाविधानेव मरालादीनवलोक्य तथा सत्यापयति यदा तदा तत्सङ्कलनमपि प्रत्यभिज्ञानमुक्तं, दर्शनस्मरणकारणत्वाविशेषात् । परेषां तु तत्प्रमाणान्तरमेवोपपद्यत उपमानादौ तस्यान्तर्भावाभावात् । अथोहोऽवसरप्राप्त इत्याह—

उपलम्भानुपलम्भनिमित्तं व्याप्तिज्ञानमूहः ॥ ११ ॥

इदमस्मिन्सत्येव भवत्यसति न भवत्येवेति च ॥ १२ ॥

उपलम्भः प्रमाणमात्रमत्र गृह्यते । यदि प्रत्यक्षमेवोपलम्भशब्देनोच्यते तदा साधनेष्वनुमेयेषु व्याप्तिज्ञानं न स्यात् । अथ व्याप्तिः सर्वोपसंहारेण प्रतीयते, सा कथमतीन्द्रि

---

१ हंसादीन् । २ सत्यंकरोति । ३ स एवायं हंसः पयोम्बुभेदीति यज्ज्ञानं तत्संकलनम् । ४ सङ्कलनज्ञानम् । ५ साधनत्वेनाभिप्रेतं वस्तु । ६ अन्वये । ७ व्यतिरेके । ८ नैयायिकानामभिप्रायमनूद्य दूषयति, तेषामभिप्रायस्तु व्याप्तिः प्रत्यक्षगोचरेति । ९ आदित्यो गमनशक्तियुक्तो गतिमत्वाद्यो यो गतिमान् स स गमनशक्तियुक्तो दृष्टो यथा बाणो गतिमांश्चायं तस्माद्गमनशक्तियुक्तः । आदित्यो गतिमान् पूर्वदिशात्यागेन देशान्तरसमुपलभ्यमानत्वाद्देवदत्तवत् । इत्यत्र सूर्यगतिमत्वादिषु धर्मादिषु गत्यादिष्वनुमेयेष्वत्यन्तपरोक्षेषु । १० सर्वदेशे सर्वकाले सर्वात्मना गृह्यते ।

यस्य[1] साधनस्यातीन्द्रियेण साध्येन भवेदिति । नैवं प्रत्यक्षविषयेष्विवानुमानविषयेष्वपि व्याप्तेरविरोधात् । तज्ज्ञान[2]स्याप्रत्यक्षत्वाभ्युपगमात् । उदाहरणमाह[3]—

यथाग्नावेव धूमस्तदभावे न भवत्येवेति च ॥ १३ ॥

इदानीमनुमानं क्रमायातमिति तल्लक्षणमाह—

साधनात्साध्यविज्ञानमनुमानम्[4] ॥ १४ ॥

साधनस्य लक्षणमाह—

साध्याविनाभावित्वेन निश्चितो हेतुः ॥ १५ ॥

ननु[5] त्रैरूप्य[6]मेव हेतोर्लक्षणं, तस्मिन्[7]सत्येव हेतोरसिद्धादि[8]दोषपरिहारोपपत्तेः । तथाहि–पक्षधर्मत्वमसिद्धत्व[9]व्यवच्छेदार्थमभिधीयते । सपक्षे सत्त्वं तु विरुद्धत्वा[10]पनोदार्थम् । विपक्षे

---

१ पराक्षस्य । २ अनियतदिग्देशव्याप्तिज्ञानस्य तर्कस्य । ३ व्याप्तिज्ञानस्योदाहरणमाह । ४ प्रमाणाद्विज्ञानमनुमानमेतावन्मात्रे लक्षणेऽनुमेयागमादिभिर्व्यभिचारोऽतस्तद्वारणाय साध्यविज्ञानमनुमानमित्युक्तं तथापि प्रत्यक्षेण व्यभिचारोऽतस्तद्वारणाय साधनात्साध्यविज्ञानमनुमानमित्युक्तम् । ५ बौद्धः प्राहः । ६ पक्षधर्मत्वसपक्षसत्वविपक्षाद्व्यावृतित्रयमिति । ७ त्रैरूप्ये । ८ आदिपदेन विरुद्धानैकान्तिकदोषौ । ९ शब्दोऽनित्यः चाक्षुषत्वादित्यत्रापक्षधर्मत्वमस्ति चाक्षुषत्वादिति हेतोः पक्षभूते शब्देऽवर्तमानत्वात्तस्मादसिद्धोऽयं हेतुरतस्तद्वारणाय पक्षे सत्वमिति । १० नित्यः शब्दः कृतकत्वादित्यत्रसपक्षेऽसत्वमस्ति कृतकत्वस्य हि

चासत्त्वमेवानैकान्तिकव्युदासार्थमिति । तदुक्तम् 'हेतोस्त्रिष्वपि रूपेषु निर्णयस्तेन वर्णितः । असिद्धविपरीतार्थव्यभिचारिविपक्षतः" इति ॥ १ ॥ तदयुक्तं—अविनाभावनियमनिश्चयादेव दोषत्रयपरिहारोपपत्तेः । अविनाभावो ह्यन्यथानुपपन्नत्वं, तच्चासिद्धस्य न सम्भवत्येव, अन्यथानुपपन्नत्वमसिद्धस्य न सिद्ध्यतीत्यभिधानात् । नापि विरुद्धस्य तल्लक्षणत्वोपपत्तिर्विपरीतनिश्चिताविनाभाविनि यथोक्तसाध्याविनाभावनियमलक्षणस्यानुपपत्तेर्विरोधात् , व्यभिचारिण्यपि न प्रकृतलक्षणावकाशः तत एव । ततोऽन्यथाऽनुपपत्तिरेव श्रेयसी, न त्रिरूपता । तस्यां सत्यामपि यथोक्तलक्षणाभावे हेतोर्गमकत्वादर्शनात् । तथाहि—स श्यामस्तत्पुत्रत्वादितरतत्पुत्रवदित्यत्र

नित्यत्वविरोधिनाऽनित्यत्वेन व्याप्तत्वात्तस्माद्धेतोः साध्याभाववद्वृत्तित्वाद्विरुद्धत्वमिति, अतो विरुद्धदोषपरिहारार्थं सपक्षे सत्त्वम् ।

१ शब्दो नित्यः प्रमेयत्वादित्यत्र विपक्षादव्यावृत्तिरस्ति प्रमेयत्वस्य हेतोः पक्षभूते शब्दे तथासपक्षरूपाकाशादौ वर्तमानेऽपि नित्यत्वविरोधिनो घटादेरव्यावृत्तित्वात्तस्माद्धेतोः पक्षसत्त्वसपक्षसत्त्वविपक्षादव्यावृत्तित्वादनैकान्तिकत्वमिति, अतस्तत्परिहारार्थं विपक्षाद्व्यावृत्तिरिति । २ दिग्नागाचार्येण । ३ एत एव विपक्षास्तेभ्यः । ४ असिद्धादिदोषपरिहारार्थं हेतोस्त्रैरूप्यवर्णनम् । ५ अन्यथानुपपन्नत्वम् । ६ अन्यथानुपपन्नत्व । ७ साधने । ८ यथोक्तसाध्याविनाभावनियमलक्षणस्यानुपपत्तेरेव । ९ अन्यथानुपपत्तिबलेनैवासिद्धादिदोषपरिहारो भवति यतः । १० त्रिरूपतायाम् । ११ साध्याविना-

त्रैरूप्यसम्भवेऽप्यगमकत्वमुपलक्ष्यते[1] अथ[2] विपक्षाद्व्यावृत्तिनियमवती तत्र[3] न दृश्यते, ततो न गमकत्वमिति[4]। तदपि मुग्धविलसितमेव । तस्या[5] एवाविनाभावरूपत्वात् । इतररूप[6]सद्भावेऽपि तदभावे[7] हेतोः स्वसाध्यसिद्धिम्प्रति गमकत्वानिष्टौ[8] सैव[9] प्रधानं लक्षणमक्षूणं[10]मुपलक्षणीयमिति[11]। तत्सद्भावे चेतररूपद्वयनिरपेक्षतया गमकत्वोपपत्तेश्च[12]। यथा सन्त्यद्वैतवादिनोऽपि प्रमाणानीष्टानिष्टसाधनदूषणा[13]ऽन्यथाऽनुपपत्तेः । नचात्र[14]

भावित्वेन निश्चितो हेतुरिति । १ गर्भस्थो मैत्रतनयः श्यामस्तत्पुत्रत्वादितरतत्पुत्रवदित्यत्र तत्पुत्रत्वस्य हेतोः पक्षभूतगर्भस्थे सपक्षभूतेतरतत्पुत्रे च वर्तमानस्य साध्याभाववद्गौरादिना व्यावृत्तौ सत्यामपि गर्भस्थमैत्रतनयस्य गौरत्वेनापि सन्देहसम्भवात्सन्दिग्धानैकान्तिकत्वं स्यादिति । २ बौद्धः प्राह । ३ स श्यामस्तत्पुत्रत्वादित्यनुमाने । ४ साध्यज्ञापनशक्तिकत्वम् । ५ विपक्षाद्व्यावृत्तेरेव । ६ पक्षसत्वसपक्षसत्वद्वयसद्भावेऽपि । ७ विपक्षाद्व्यावृत्त्यभावे । ८ सत्याम् । ९ साध्याविनाभाववती विपक्षाद्व्यावृत्तिरेव । १० निर्दोषम् । ११ प्रतिपादनीयम् । १२ पित्रोश्च ब्राह्मणत्वेन, पुत्रब्राह्मणतानुमा । सर्वलोकप्रसिद्धा न पक्षे धर्ममपेक्षते ॥ १ ॥ नदीपूरोऽप्यधो देशे, दृष्टः सन्नुपरिस्थिताम् । नियम्यो गमकत्वैव वृत्तां वृष्टिं नियामिकाम् ॥ २ ॥ इत्यत्र पक्षसपक्षसत्वद्वयाभावेऽपि विपक्षाद्व्यावृत्तिबलादेव पित्रोः ब्राह्मणत्वाधोदेशस्थनदीपूरौ पुत्रब्राह्मणतोपरिसञ्जातवृष्ट्योर्गमकाविति । १३ तेषां प्रमाणानि प्राग् न सन्तीदानीमापद्यन्ते तस्य प्रमाणवत्वधर्मस्याङ्गीकाराभावात्पक्षधर्मत्वं नास्ति तथापि गम्यगमकभावोऽस्ति । १४ अनुमाने ।

पक्षधर्मत्वसपक्षान्वयो वाऽस्ति केवलमविनाभावमात्रेण गमकत्वप्रतीतेः । यदप्यपरमुक्तं परैः[1] पक्षधर्मताभावेऽपि काकस्य कार्ष्ण्याद्धवलः प्रासाद इत्यस्यापि गमकत्वापत्तिरिति[2] तदप्यनेन[4] निरस्तम् । अन्यथानुपपत्तिबलेनैवापक्षधर्मस्यापि साधुत्वाभ्युपगमात् । न चेह[6] सा[7]ऽस्ति । ततोऽविनाभाव एव हेतोः प्रधानं लक्षणमभ्युपगन्तव्यम् । तस्मिन्सत्य[9]सति[10] त्रिलक्षणत्वेऽपि हेतोर्गमकत्वदर्शनादिति न त्रैरूप्यं हेतुलक्षणमव्यापकत्वात् । सर्वेषां[11] क्षणिकत्वे साध्ये सत्त्वादेः साधनस्य सपक्षेऽसतोऽपि स्वयं सौगतैर्गमकत्वाभ्युपगमात् । एतेन[12] पञ्चलक्षणत्वमपि यौगपरिकल्पितं न हेतोरुपपत्तिमियर्तीत्यभिहितं बोद्धव्यम् । पक्षधर्मत्वे सत्यन्वय[13]व्यतिरेकावबाधितविषयत्वमसत्प्रतिपक्षत्वं चेति पञ्चलक्षणानि, तेषामप्यविनाभावप्रपञ्च[15]तैव बाधितविषयस्याविनाभावायोगात्[16] सत्प्रति-

---

१ बौद्धादिभिः। २ पक्षधर्मतां विना गम्यगमकभावो नास्त्यस्ति चेदत्र गमकत्वमस्तु ३ भवतु । ४ अन्यथानुपपत्त्येकलक्षणद्वारेण । ५ इष्टानिष्टसाधनदूषणान्यथानुपपत्तेरिति हेतोः पक्षधर्मता नास्ति तथाप्यस्यान्यथानुपपत्तिबलात्साधुत्वस्वीकारात् । ६ काकस्य कार्ष्ण्याद्धवलः प्रासाद इत्यत्र । ७ अन्यथानुपपत्तिः । ८ अन्वयव्यतिरेकसमधिगम्यो हि कार्यकारणभाव इति समायातम् । ९ अविनाभावनियमे सति । १० असति त्रिरूपे । ११ पदार्थानाम् । १२ त्रैरूप्यनिराकरणद्वारेण । १३ सपक्षे सत्वं । १४ विपक्षाद्व्यावृत्ति । १५ अविनाभावस्य पर्यायनाम । १६ अबाधितविषयस्याविनाभावयोगो

पक्षस्यैवेति, साध्याभासविषयत्वेनासम्यग्घेतुत्वाच्च, यथोक्तपक्षविषयत्वाभावात्तद्दोषेणैव दुष्टत्वात्। अतः स्थितं साध्याविनाभावित्वेन निश्चितो हेतुरिति। इदानीमविनाभावभेदं दर्शयन्नाह—

सहक्रमभावनियमोऽविनाभावः॥ १६॥

तत्र सहभावनियमस्य विषयं दर्शयन्नाह—

सहचारिणोर्व्याप्यव्यापकयोश्च सहभावः॥ १७॥

सहचारिणो रूपरसयोर्व्याप्यव्यापकयोश्च वृक्षत्वशिंशपात्वयोरिति। सप्तम्या विषयो निर्दिष्टः। क्रमभावनियमस्य विषयं दर्शयन्नाह—

पूर्वोत्तरचारिणोः कार्यकारणयोश्च क्रमभावः॥ १८॥

पूर्वोत्तरचारिणोः कृत्तिकोदयशकटोदययोः कार्यकारणयोश्च धूमधूमध्वजयोः क्रमभावः। नन्वेवम्भूतस्याविनाभावस्य न प्रत्यक्षेण ग्रहणं, तस्य सन्निहितविषयत्वात्। नाप्यनुमानेन, प्रकृतापरानुमानकल्पनायामितरेतराश्रयत्वानवस्थावतारात्।

वर्तते बाधितविषये नास्ति। १ कुतः। २ अग्निरनुष्णः कृतकत्वात्। ३ पक्षदोषेणैव। ४ अव्यभिचारित्वम्। ५ रूपं रसं विहाय न तिष्ठति रसो रूपं विहाय न तिष्ठति सहैव स्थितिः। ६ रोहिणी। ७ प्रत्यक्षस्य। ८ अनुमानेनाविनाभावग्रहणं चेत्तर्हि प्रकृतानुमानेनानुमानान्तरेण

आगमादेरपि भिन्नविषयत्वेन[1] सुप्रसिद्धत्वान्न ततोऽपि तत्प्र[2]तिपत्तिरित्याशंकायामाह—

तर्कात्तन्निर्णयः ॥ १९ ॥

तर्काद्यथोक्तलक्षणादूहात्तन्निर्णय[3] इति । अथेदानीं[4] साध्यलक्षणमाह—

इष्टमबाधितमसिद्धं साध्यम्[5] ॥ २० ॥

अत्रा[6]परे[7] दूषणमाचक्षते—आसनशयनभोजनयाननिधुवना[8]देरपीष्टत्वात्तदपि साध्यमनुषज्यत इति । तेऽप्यतिबालिशा अप्रस्तुतप्रलापित्वात् । अत्र हि साधनमधिक्रियते[9] । तेन[10] साधनविषयत्वेनेप्सितमिष्टमुच्यते । इदानीं स्वाभिहितसाध्यलक्षणस्य विशेषणानि सफलयन्नसिद्धविशेषणं समर्थयितुमाह—

संदिग्धविपर्यस्ताव्युत्पन्नानां[11] साध्यत्वं यथा

वा, प्रकृतानुमानेन चेदितरेतराश्रयस्तथाहि—सत्यामविनाभावप्रतिपत्तावनुमानस्यात्मलाभस्तदात्मलाभे चाविनाभावप्रतिपत्तिरिति । अनुमानान्तरेणाविनाभावप्रतिपत्तिश्चेत्तस्याप्यनुमानान्तरेणाविनाभावप्रतिपत्तावनस्था स्यात् ।

१ एकस्मिन्वस्तुनि प्रमाणसंप्लवोऽस्ति तथापि मुख्यवृत्त्या तत्तन्नियतस्य प्रमाणस्य स एव विषयः । २ अविनाभाव । ३ अविनाभावनिर्णयः । ४ हेतुलक्षणकथनानन्तरम् । ५ साध्यं लक्ष्यमिष्टमबाधितमसिद्धं लक्षणं यदासिद्धं साध्यं तदेष्टाबाधितविशेषणसहितमेवेति । ६ साध्यलक्षणे । ७ नैयायिकाः। ८ मैथुन । ९ सन्मुखीक्रियते । १० साधनाधिकारेण । ११ अनध्यव-

स्यादित्यसिद्धपदम्[१] ॥ २१ ॥

तत्र सन्दिग्धं स्थाणुर्वा[२]पुरुषो वेत्यनवधारणेनोभयकोटि-परामर्शिसंशयाकलितं वस्तु उच्यते । विपर्यस्तं तु विपरीता-वभासिविपर्ययज्ञानविषयभूतं रजतादि । अव्युत्पन्नं[३] तु नाम-जातिसंख्यादिविशेषापरिज्ञानेनानिर्णीतविषयानध्यवसायग्राह्यम्। एषां[४] साध्यत्वप्रतिपादनार्थमसिद्धपदोपादानमित्यर्थः । अधु-नेष्टाबाधितविशेषणद्वयस्य साफल्यं दर्शयन्नाह—

अनिष्टाध्यक्षादिबाधितयोः साध्यत्वं माभूदिती-ष्टाबाधितवचनम् ॥ २२ ॥

अनिष्टो मीमांसकस्यानित्यः शब्दः प्रत्यक्षादिबाधितश्चा-श्रावणत्वादिः । आदिशब्देनानुमानागमलोकस्ववचनबाधि-तानां ग्रहणम्। तदुदाहरणं चाकिञ्चित्करस्य हेत्वाभासस्य निरूपणावसरे स्वयमेव ग्रन्थकारः प्रपञ्चयिष्यतीत्युपरम्यते ।

सित । १ प्रतिपादितम् । २ अनध्यवसितं तु गच्छत्तृणस्पर्शः । ३ यथा मार्गे गच्छतः पुरुषस्य तृणस्पर्शनं जातं तदा स चिन्तयति यत्किंचिद्भ-विष्यतीत्यादि । ४ सन्दिग्धादीनाम् । ५ अपरिणामी शब्दः कृतक-त्वात् घटवत् । ६ प्रेत्यासुखप्रदो धर्मः पुरुषाश्रितत्वादधर्मवत् । ७ शु-चि नरशिरःकपालं प्राण्यङ्गत्वाच्छङ्खशुक्तिवत् । ८ माता मे वन्ध्या पुरुष-संयोगेऽप्यगर्भत्वात्प्रसिद्धवन्ध्यावत् । ९ सूत्रकारो माणिक्यनन्दिदेवः ।

तत्र[1]ासिद्धपदं प्रतिवाद्यपेक्षयैव, इष्टपदं तु वाद्यपेक्षयेति विशे-षमुपदर्शयितुमाह[2]—

नचासिद्धवदिष्टं प्रतिवादिनः ॥ २३ ॥

अयमर्थः—न हि सर्वं सर्वापेक्षया विशेषणमपि तु किञ्चित्कमप्युद्दिश्य भवतीति । असिद्धवदिति व्यतिरेकमुखेनोदाहरणम् । यथा असिद्धं प्रतिवाद्यपेक्षया न तथेष्टमित्यर्थः । कुत एतदित्याह—

प्रत्यायनाय हीच्छा वक्तुरेव ॥ २४ ॥

इच्छायाः खलु विषयीकृतमिष्टमुच्यते । प्रत्यायनाय हीच्छा वक्तुरेवेति । तच्च साध्यं धर्मः किं वा तद्विशिष्टो धर्मीति प्रश्ने तद्भेदं दर्शयन्नाह—

साध्यं धर्मः क्वचित्तद्विशिष्टो वा धर्मीति ॥ २५ ॥

सोपस्काराणि वाक्यानि भवन्ति । ततोऽयमर्थो लभ्यते-

---

१ त्रयाणां मध्ये । २ वादिनः साध्यं प्रसिद्ध प्रतिवादिनस्त्वसिद्धमिति । ३ यथा प्रतिवादिनोऽसिद्धं तद्वदिष्टं न प्रतिवादिन इति व्यतिरेकेण ज्ञापितम् । ४ इष्टपदग्रहणं तु वाद्यपेक्षयैव यथा प्रतिवाद्यपेक्षयासिद्धपदमिति । ५ विशेषणम् । ६ वादिनं प्रतिवादिनं वा यथैकस्य जनस्य पुत्रापेक्षया पितृव्यपदेशः पित्रपेक्षया पुत्रव्यपदेश इति । ७ परप्रतिपादनाय शब्दप्रयोगः । ८ परप्रतिबोधनाय । ९ इत्थमेवेष्टमित्यर्थः । १० प्रयो-

व्याप्ति[1]कालापेक्षया तु साध्यं धर्मः । क्वचित्प्रयोग[2]कालापेक्षया तु तद्विशिष्टो धर्मी साध्यः । अस्यैव धर्मिणो नामान्तरमाह—

पक्ष[3] इति यावत् ॥ २६ ॥

ननु धर्मधर्मि[4]समुदायः पक्ष इति पक्षस्वरूपस्य पु[5]रातनैर्निरूपितत्वाद्धर्मिणस्तद्वचने कथं न रा[6]द्धान्तविरोध इति । नैवं—साध्यधर्माधारतया विशेषितस्य धर्मिणः पक्षत्ववचनेऽपि दोषानवकाशात् । रचनावैचि[7]त्र्यमात्रेण ता[8]त्पर्यस्यानिराकृतत्वात्सिद्धान्ताविरोधात् । अत्राह सौगतः भवतु नाम धर्मी पक्षव्यपदेशभाक् तथापि सविकल्पबुद्धौ परिवर्तमान एव न वास्[9]तवः । सर्व एवानुमानानुमेयव्यवहारो बुद्ध्या[10]रूढेन धर्मधर्मिन्यायेन न [11]बहिःसदसत्वमपेक्षत इत्यभिधानादिति तन्निरासार्थमाह—

प्रसिद्धो धर्मीति ॥ २७ ॥

गकाले । १ यत्र यत्र धूमस्तत्र तत्र वह्निः । २ पर्वतोऽयं वह्निमान् । अत्र वह्निविशिष्टः पर्वतः साध्यः । ३ ज्ञातव्ये पक्षधर्मत्वे पक्षो धर्म्यभिधीयते । व्याप्तिकाले भवेद्धर्मः साध्यसिद्धौ पुनर्द्वयम् ।१। ४ साध्यधर्मविशिष्टो धर्मी पक्षः । ५ अकलङ्कदेवादिभिः । ६ सिद्धान्त । ७ धर्मधर्मिसमुदायः पक्ष इति रचनावैचित्र्यम् । ८ अर्थस्य । ९ यथा केशोंडुकज्ञानमिति । १० विकल्पबुद्धिगृहीतेन । अपरामृष्टभेदा सन्तानिन एव सन्तानो जलप्रवाहवद्यथा गतो जलप्रवाहो गत एव पुनरन्य एवागमिष्यति तथापि सन्तानरूपेण एक एव व्यपदिश्यते । ११ बाह्यं वस्तु वर्तते तथापि क्षणिकं, निर्विकल्पक-

अयमर्थः—नेयं विकल्पबुद्धिर्बहिरन्तर्वाऽनासादितालम्बन[1]भावा[2] धर्मिणं व्यवस्थापयति। तद्[3]वास्तवत्वेन तदाधार[4]साध्यसाधनयोरपि वास्तवत्वानुपपत्तेस्तद्बुद्धेः[5] पारंपर्येणापि[6] वस्तुव्यवस्थानिबन्धनत्वायोगात्। ततो विकल्पेनान्येन[7][8] वा व्यवस्थापितः[9] पर्वतादिर्विषय[10]भावं भजन्नेव धर्मितां प्रतिपद्यत इति स्थितं प्रसिद्धो धर्मीति। तत्प्रसिद्धिश्च क्वचिद्विकल्पतः[11] क्वचित्प्रमाणतः[12] क्वचिच्चोभयत[13] इति नैकान्तेन[14] विकल्पाधिरूढस्य प्रमाणप्रसिद्धस्य वा धर्मित्वम्। [15]ननु धर्मिणो विकल्पात्प्रतिपत्तौ किं तत्र साध्यमित्याशङ्कायामाह—

विकल्पसिद्धे[16] तस्मिन्सत्तेतरे[17] साध्ये ॥ २८ ॥

तस्मिन्धर्मिणि विकल्पसिद्धे सत्ता च तदपेक्षयेतराऽसत्ता

ज्ञानविषयास्थिरस्थूलतया सदसत्वं नास्ति। १ अवलम्बनेति पाठान्तरम्। २ अप्राप्तविषयभावा। ३ धर्मिणोऽवास्तवत्वेन। ४ पक्ष आधारौ ययोस्तौ साध्यसाधनौ तयोः। ५ अनुमानबुद्धेः। ६ दहनस्वलक्षणाद्धूमस्वलक्षणं तस्मात्तदनुभवस्तस्माद्धूमविकल्पस्तस्माद्वह्निविकल्प इति पारंपर्येण। तर्हि बौद्धानामनुमानं नष्टं ततो निर्विकल्पप्रत्यक्षप्रामाण्यमनुमानेन मास्तु। ७ विकल्पबुद्ध्या। ८ प्रमाणान्तरेण। ९ निर्णीतः। १० विषयभावोऽस्तिचेद्धर्मी भवति अन्यथा धर्मी न भवति धर्मी नास्तीति वक्तुं न पार्यतेऽनुमानभङ्गो भवति यतः। ११ अनिश्चितसंवादाविसंवादो विकल्पः। १२ प्रत्यक्षादेः। १३ विकल्पप्रमाणाभ्याम्। १४ नियमेन। १५ माहः प्राह। १६ प्रमाणाप्रमाणसाधारणी साध्वी प्रतीतिर्विकल्पः। १७ पक्षे, मानमानसप्रसिद्धे।

त्व ते द्वे ऽपि साध्ये, सुनिर्णीतासम्भवद्बाधकप्रमाणबलेन योग्यानुपलब्धिबलेन[1] चेति शेषः । अत्रोदाहरणमाह—

अस्ति सर्वज्ञो नास्ति खरविषाणमिति ॥ २२ ॥

सुगमम् । ननु[2] धर्मिण्यसिद्धसत्ताके[3] भावाभावो[4]भय[5]धर्माणा[6]मसिद्धविरुद्धानैकान्तिकत्वादनुमानविषयत्वायोगात्[7] कथं सत्तेतरयोः साध्यत्वम् ? तदुक्तम्—असिद्धो[8] भाव[9]धर्मश्चेद्व्यभिचार्यु[10]भया[11]श्रितः । विरुद्धो[12] धर्मोऽभाव[13]स्य सा[14] सत्ता साध्यते कथम् । इति तदयुक्तम्-मानसप्रत्यक्षे भावरूपस्यैव धर्मिणः[15] प्रतिपन्नत्वात् । न च तत्सिद्धौ[16] तत्सत्त्व[17]स्यापि प्रतिपन्नत्वाद्व्य-

---

१ योग्यानुपलब्धिबलेन । अस्ति सर्वज्ञः सुनिर्णीतसम्भवद्बाधकप्रमाणत्वात्प्रसिद्धवेदार्थज्ञानिवत्, नास्ति खरविषाणं दृश्यत्वे सत्यनुपलब्धेः । २ मीमांसकः प्राह । ३ अविद्यमाने । ४ आस्तित्व । ५ भावाभाव । ६ हेतूनाम् । ७ आक्षेपः । ८ सुनिश्चितासम्भवद्बाधप्रमाणत्वादिति हेतुर्यदि सर्वज्ञभावधर्मश्चेत्तदा सर्वज्ञवद्धेतुरप्यसिद्धः, को हि नाम सर्वज्ञभावधर्ममिच्छन्सर्वज्ञमेव नेच्छेत् । ९ हेतुर्यदि सर्वज्ञभावधर्मश्चेत् । १० हेतुर्यदि सर्वज्ञभावाभावधर्मश्चेत्तदा व्यभिचारी सपक्षविपक्षयोर्वृत्ते । ११ हेतुर्यदि सर्वज्ञभावाभावधर्माश्रितश्चेत् । १२ हेतुर्यदि सर्वज्ञाभावधर्मश्चेत्तदा विरुद्धो यतः सर्वज्ञाभावधर्मात्सर्वज्ञनास्तित्वस्यैव साधनात् । १३ सर्वज्ञाभावस्य । १४ स सत्तां साधयेत्कथमिति पाठान्तरम् । १५ सर्वज्ञस्य । १६ सर्वज्ञ । १७ यथा धर्मिणो मानसप्रत्यक्षे भावरूपेण प्रत्यक्षत्वं तथा धर्मस्यापि

र्थमनुमानम् । तदभ्युपेतमपि वैय्यर्थ्यात्याद्यदा परो न प्रतिपद्यते तदाऽनुमानस्य साफल्यात् । न च मानसज्ञानाद्गगनकुसुमादेरपि सद्भावसम्भावनाऽतोऽतिप्रसङ्गः । तज्ज्ञानस्य बाधकप्रत्ययव्यपाकृतसत्ताकवस्तुविषयतया मानसप्रत्यक्षाभासत्वात् । कथं तर्हि तुरगशृङ्गादेर्धर्मित्वमिति न चोद्यम्—धर्मिप्रयोगकाले बाधकप्रत्ययानुदयात्सत्त्वसम्भावनोपपत्तेः । न च सर्वज्ञादौ साधकप्रमाणासत्त्वेन सत्त्वंप्रति संप्रीतिः सुनिश्चितासम्भवद्बाधकप्रमाणत्वेन सुखादाविव सत्त्वनिश्चयात्तत्र संशयायोगात् । इदानीं प्रमाणोभयसिद्धे धर्मिणि किं साध्यमित्याशङ्कायामाह—

प्रमाणोभयसिद्धे तु साध्यधर्मविशिष्टता ॥ ३० ॥

प्रसिद्धित्वं वर्तते किमत्रानुमानेनेति मीमांसकशकां परिहरति । १ धार्ष्ट्यात् । २ सर्वज्ञाभाववादी । ३ यथा धर्मिणो मानसप्रत्यक्षेण भावरूपग्रहणं तथा गगनकुसुमादेरपि भवत्विति मीमांसकप्रयुक्तातिप्रसंगरूपदूषणं परिहरति । ४ गगनकुसुमादिकं नास्ति दृश्यत्वे सत्यनुपलब्धेरिति गगनकुसुमादिसद्भावकानुमानाभावात्तत्र संजातमानसप्रत्यक्षस्य मानसप्रत्यक्षाभासत्वात् । ५ तुरंगविषाणादेर्धर्मित्वं मास्त्विति शंकां परिहरति । ६ खरविषाणादिकं धर्मी । ७ खरविषाणादिकं नास्ति दृश्यत्वे सत्यनुपलब्धेरिति बाधकप्रत्ययानुदयात् । ८ खरविषाणादिकमुररीक्रियते । ९ सर्वज्ञसाधकं प्रमाणमस्ति ततः सर्वज्ञास्तित्वे संशयो न । १० सर्वज्ञास्तित्वे । ११ प्रमाणसिद्धे प्रमाणविकल्पसिद्धे च

साध्ये इति शब्दः प्राक्[1] द्विवचनान्तोऽप्यर्थवशा[2]देकवचनान्ततया सम्बध्यते । प्रमाणं चोभयं च विकल्पप्रमाणद्वयं[3] ताभ्यां सिद्धे धर्मिणि साध्यधर्मविशिष्टता साध्या । अयमर्थः- प्रमाणप्रतिपन्नमपि वस्तु[4] विशिष्टधर्मा[5]धारतया विवादपदमा[6]रोहतीति[7] साध्यतां नातिवर्त्तत[8] इति । एवमुभयसिद्धेऽपि योज्यम् । प्रमाणोभयसिद्धं धर्मिद्वयं क्रमेण दर्शयन्नाह—

अग्निमानयं देशः[9] परिणामी शब्द[10] इति यथा ॥ ३१ ॥

देशो हि प्रत्यक्षेण सिद्धः शब्दस्तूभयसिद्धः । नहि प्रत्यक्षेणार्वाग्दर्शिभि[11]रनियतदिग्देशकालावच्छिन्नाः सर्वे शब्दा निश्चेतुं पार्यन्ते । सर्वदर्शिनस्तु तन्निश्चये[12]ऽपि तं[13] प्रत्यनुमानानर्थक्यात् । प्रयोग[14]कालापेक्षया धर्मविशिष्टधर्मिणः साध्यत्वमभिधाय व्याप्तिकालापेक्षया साध्यनियमं दर्शयन्नाह—

व्याप्तौ[15] तु साध्यं धर्म[16] एवेति ॥ ३२ ॥

धर्मिणि । १ पूर्वसूत्रे । २ अर्थवशाद्विभक्तीपरिणामः । ३ विकल्पप्रमाणयोर्द्वयम् । ४ पर्वतादि । ५ अग्न्यादि । ६ अग्निमत्वानग्निमत्वरूप । ७ हेतोः । ८ तदा धर्मविशिष्टता साध्या । ९ पर्वतादिदेशो हि प्रत्यक्षप्रमाणसिद्धोऽग्निरूपविशिष्टधर्माधारतया तु साध्यो जातः। १० यथा नियतदिग्देशवर्तमानकालावच्छिन्नाः शब्दाः श्रावणप्रत्यक्षसिद्धा, नहि तथानियतदिग्देशातीतानागतकालावच्छिन्नाः शब्दास्माभिर्निश्चेतुं शक्यन्ते तस्मात्श्रावणप्रत्यक्षसिद्धा वर्तमानशब्दाः प्रमाणसिद्धारन्ये तु विकल्पसिद्धाः । ११ किञ्चिज्ञैः पुरुषैः । १२ अनियतदिग्देशाद्यवच्छिन्नशब्दानिश्चयेऽपि । १३ सर्वज्ञं प्रति । १४ अनुमानप्रयोग । १५ यत्र यत्र धूमस्तत्र तत्र वह्निरिति व्याप्तौ । १६ अग्निरेव, नहि वह्निवि-

सुगमम् । धर्मिणोऽपि साध्यत्वे को दोष इत्यत्राह—

अन्यथा तदघटनादिति ॥ ३३ ॥

उक्तविपर्ययेऽन्यथाशब्दः । धर्मिणः साध्यत्वे तदघटनात् व्याप्त्यघटनादिति हेतुः । न हि धूमदर्शनात्सर्वत्र पर्वतोऽग्निमानिति व्याप्तिः शक्या कर्तुं प्रमाणविरोधात् । नन्वनुमाने पक्षप्रयोगस्यासम्भवात् प्रसिद्धो धर्मीत्यादिवचनमयुक्तम् । तस्य सामर्थ्यलब्धत्वात् । तथापि तद्वचने पुनरुक्तताप्रसङ्गात् । अर्थादापन्नस्यापिपुनर्वचनं पुनरुक्तमित्यभिधानादिति सौगतस्तत्राह—

साध्यधर्माधारसन्देहापनोदाय गम्यमानस्यापि पक्षस्य वचनम् ॥ ३४ ॥

साध्यमेव धर्मस्तस्याधारस्तत्र सन्देहो महानसादिः पर्वतादिर्वेति । तस्यापनोदो व्यवच्छेदस्तदर्थं गम्यमानस्यापि सा-

---

शिष्टपर्वतः । १ व्याप्तौ धर्मिणः साध्यत्वे । २ व्याप्त्यघटनान्नहि यत्र यत्र धूमस्तत्र तत्र वह्निमान्पर्वत इति व्याप्तिः शक्या कर्तुं प्रत्यक्षादिना विरोधादनुमानासंभवादिति व्याप्तौ साध्यविशिष्टधर्मिणः साध्यकरणेन हेतोरन्वयासिद्धेः । ३ साध्यसाधनभावासंभवात् । ४ बौद्धः प्राह । ५ पक्षस्य हेतुसामर्थ्यलब्धत्वात्तद्वचनमयुक्तं । ततः केवलहेतुरेव हि वाच्यस्तथा चोक्तम्, तद्भावहेतुभावौ हि दृष्टान्ते तदवेदिनः । ख्याप्येते विदुषां वाच्यो हेतुरेव हि केवलः । १ । ६ पक्षस्य । ७ साधनसामर्थ्ये । ८ त्रैरूप्यलिंगदर्शनेनार्थापातत्वात् । ९ पक्षस्य सामर्थ्यलब्धत्वेऽपि । १० धर्मिवचने । ११ पक्षः । १२ साध्यधर्माधारसंदेहस्य । १३ साध्यसाधन-

ध्यसाधनयोर्व्याप्यव्यापकभावप्रदर्शनान्यथानुपपत्तेस्तदाधार-स्य गम्यमानस्यापि पक्षस्य वचनं प्रयोगः । अत्रोदाहरणमाह -

साध्यधर्मिणि साधनधर्मावबोधनाय

पक्षधर्मोपसंहारवत् ॥ ३५ ॥

साध्येन विशिष्टो धर्मी पर्वतादिस्तत्र साधनधर्मावबोधनाय पक्षधर्मोपसंहारवत् पक्षधर्मस्य हेतोरुपसंहार उपनयस्तद्वदिति अयमर्थः—साध्यव्याप्तसाधनप्रदर्शनेन तदाधारावगतावपि नि-यतधर्मिसम्बन्धिताप्रदर्शनार्थं यथोपनयस्तथा साध्यस्य विशि-ष्टधर्मिसम्बन्धितावबोधनाय पक्षवचनमपीति । किञ्च हेतुप्रयोगेऽ-पि समर्थनमवश्यं वक्तव्यम् , असमर्थितस्य हेतुत्वायोगात् । तथा च समर्थनोपन्यासादेव हेतोः सामर्थ्यसिद्धत्वाद्धेतुप्रयो-गोऽनर्थकः स्यात् । हेतुप्रयोगाभावे कस्य समर्थनमिति चेत्— पक्षप्रयोगाभावे क्व हेतुर्वर्तंतामिति समानमेतत् । तस्मात्कार्य-स्वभावानुपलम्भभेदेन पक्षधर्मत्वादिभेदेन च त्रिधा हेतुमुक्त्वा समर्थयमानेन पक्षप्रयोगोऽप्यभ्युपगन्तव्य एवेति अमुमे-

---

सामर्थ्याज्ज्ञायमानस्यापि । १ धूमवांश्चायमिति । २ प्रतिपादनाय । ३ साधनरूपस्य न तु साध्यरूपस्य । ४ हेतोरुपसंहार उपनयः । ५ साध्या-धारपक्षावगतेऽपि । ६ समर्थनं हि हेतोरंतरंगं भवति । ७ असिद्धत्वा-दिपरिहारलक्षणं समर्थनम् । ८ तथापि हेतुप्रयोगवचने पुनरुक्तता स्या-दर्थादापन्नस्यापि पुनर्वचनं पुनरुक्तमिति । ९ बौद्धमते हेतुस्त्रिधा । १० पक्षसपक्षसत्वविपक्षाद्व्यावृत्तिरूपास्त्रयो हेतवो द्वितीयप्रकारेण । ११ बौद्धेन ।

चार्थमाह—

को वा त्रिधा हेतुमुक्त्वा समर्थयमानो न पक्षयति ॥३६॥

को वा वादी[1] प्रतिवादी चेत्यर्थः । किलार्थे[2] वा शब्दः । युक्त्या[3] पक्षप्रयोगस्यावश्यंभावे कः किल न पक्षयति ? पक्षं न करोत्यपि तु करोत्येव । किं कृत्वा हेतुमुक्त्वैव । न पुनरनुक्त्वेत्यर्थः । समर्थनं हि हेतोरसिद्धत्वादिदोषपरिहारेण स्वसाध्यसाधनसामर्थ्यप्ररूपणप्रवणं[4] वचनम् । तच्च हेतुप्रयोगोत्तरकालं परेणाङ्गीकृतमित्युक्त्वेति वचनम् । ननु[5] भवतु पक्षप्रयोगस्तथापि पक्षहेतुदृष्टान्तभेदेन त्र्यवयवमनुमानमिति साङ्ख्यः । प्रतिज्ञाहेतूदाहरणोपनयभेदेन चतुरवयवमिति मीमांसकः । प्रतिज्ञाहेतूदाहरणोपनयनिगमनभेदात्पञ्चावयवमिति यौगः । तन्मतमपाकुर्वन्स्वमतसिद्धमवयवद्वयमेवोपदर्शयन्नाह—

एतद्द्वयमेवानुमानाङ्गं[6] नोदाहरणमिति ॥ ३७ ॥

एतयोः पक्षहेत्वोर्द्वयमेव नातिरिक्तमित्यर्थः । एवकारेणैवोदाहरणादिव्यवच्छेदे सिद्धेऽपि परमतनिरासार्थं पुनर्नोदा-

---

१ लौकिकः परीक्षको वा । २ निश्चयार्थे । ३ बौद्धैः खलु हेतोः समर्थनमंगीक्रियते तत्तु पक्षप्रयोगाभावे न संभवति तस्यासिद्धादिदोषपरिहाररूपत्वाद-सिद्धादिदोषपरिहारस्तु पक्षप्रयोगे सत्येव सभंवति नासतीत्युक्त्या । ४ स्वेन हेतुना साध्यं तस्य साधनं कारणं तस्य सामर्थ्यं समर्थनोपन्याससामर्थ्यं तस्य प्ररूपणं तत्र प्रवणवचनम् । ५ एकद्वित्रिचतुःपचावयवं लैङ्गिकं विदुः । सौगतार्हतद्विसांख्यभाट्टयौगाः यथाक्रमम् ॥ १ ॥ ६ पक्षहेतुद्वयमेव ।

हरणमित्युक्तम् । तद्धि[1] किं साध्यप्रतिपत्त्यर्थ[2]मुतस्वि[3]द्धेतोरविनाभावनियमार्थमाहोस्विद्व्याप्तिस्मरणार्थमिति विकल्पान्[4] क्रमेण दूषयन्नाह—

न हि तत्[5]साध्यप्रतिपत्त्यङ्गं तत्र[6] यथोक्त[7]हेतोरेव व्यापारात् ॥ ३८ ॥

तदुदाहरणं साध्यप्रतिपत्तेरङ्गं कारणं नेति सम्बन्धः । तत्र साध्यप्रतिपत्तौ यथोक्तस्य साध्याविनाभावित्वेन निश्चितस्य हेतोर्व्यापारादिति । द्वितीयविकल्पं शोधयन्नाह—

तद्[8]विनाभाव[9]निश्चयार्थं वा[10] विपक्षे बाधका[11]देव तत्सिद्धेः ॥ ३९ ॥

तदिति वर्तते । नेति च । तेनायमर्थः तदुदाहरणं तेन साध्येनाविनाभावनिश्चयार्थं वा न भवतीति । विपक्षे बाधकादेव तत्सिद्धेरविनाभावनिश्चयसिद्धेः । किञ्च[12] व्यक्तिरूपं[13] निदर्शनं[14] तत्कथं साकल्येन[15] व्याप्तिं[16] गमयेत् । व्यक्त्यन्तरेषु व्याप्त्यर्थं पुनरुदाहरणान्तरं मृग्यम् । तस्यापि व्यक्तिरूपत्वेन सामान्येन

---

१ तदुदाहरणमागत्य किं करोति । २ परिज्ञानार्थम् । ३ अथवा । ४ गत्यन्तराभावात् । ५ उदाहरणम् । ६ साध्यपरिज्ञाने । ७ साध्याविनाभावित्वेन निश्चितस्य । ८ हेतोरविनाभावनियमार्थं वेति । ९ साध्याविनाभाव । १० एतदर्थं वा नेति वाशब्दः । ११ वह्न्यभाववति महाह्रदे धूमत्वस्य हेतोर्बाधकसद्भावादेव । १२ दूषणानन्तरम् । १३ विशेषरूपम् । १४ उदाहरणम् । १५ सर्वदेशकालोपसंहारेण । १६ सामान्यरूपाम् ।

व्याप्तेरवधारयितुमशक्यत्वादपरापरतदन्तरापेक्षायामनवस्था स्यात् । एतदेवाह—

व्यक्तिरूपं च निदर्शनं सामान्येन तु व्याप्तिस्तत्रापि तद्विप्रतिपत्तावनवस्थानं स्यात् दृष्टान्तान्तरापेक्षणात् ४०॥

तत्रापि उदाहरणेऽपि तद्विप्रतिपत्तौ सामान्यव्याप्तिविप्रतिपत्तावित्यर्थः । शेषं व्याख्यातम् । तृतीयविकल्पे दूषणमाह--

नापि व्याप्तिस्मरणार्थं तथाविधहेतुप्रयोगादेव तत्स्मृतेः४१॥

गृहीतसम्बन्धस्य हेतुप्रदर्शनेनैव व्याप्तिसिद्धिरगृहीतसम्बन्धस्य दृष्टान्तशतेनापि न तत्स्मरणमनुभूतविषयत्वात्स्मरणस्येति भावः । तदेवमुदाहरणप्रयोगस्य साध्यार्थं प्रति नोपयोगित्वं प्रत्युत संशयहेतुत्वमेवेति दर्शयति--

तत्परमभिधीयमानं साध्यधर्मिणि साध्यसाधने सन्देहयति४२

तदुदाहरणं परं केवलमभिधीयमानं साध्यधर्मिणि साध्य-

---

१ व्याप्तिसंदेहापनोदाय यद्युदाहरणं मृग्यं तदा तत्रापि सामान्येन व्याप्तिसंदेहापनोदायोदाहरणान्तरेण भवितव्यमित्येवमनवस्था स्यात् । २ विशेषाधारत्वेन । ३ उदाहरणेऽपि । ४ व्याप्ति । ५ साध्याविनाभावित्वेन । ६ व्याप्ति । ७ पुरुषस्य । ८ दृष्टान्तस्तु व्याप्तिं स्मरतीति सांख्याभिमतं दूषयति । ९ महानसे केवलं धूमाग्निसम्बन्धं जानाति परन्त्वनिश्चलरूपा या व्याप्तिर्यत्र धूमस्तत्र वह्निरिति न जानाति तस्य । १० व्याप्ति-

विशिष्टे धर्मिणि साध्यसाधने सन्देहयति सन्देहवती करोति। दृष्टान्तधर्मिणि[3] साध्यव्याप्तसाधनोपदर्शनेऽपि साध्यधर्मिणि तन्निर्णयस्य[4] कर्तुमशक्यत्वादिति शेषः। अमुमेवार्थं व्यतिरेकमुखेन समर्थयमानः प्राह—

कुतोऽन्यथोपनयनिगमने ॥ ४३ ॥

अन्यथा[6] संशयहेतुत्वाभावे कस्माद्धेतोरुपनयनिगमने प्रयुज्येते। अपरः[8] प्राह–उपनयनिगमनयोरप्यनुमानाङ्गत्वमेव, तदप्रयोगे निरवकरसाध्यसंवित्तेरयोगादिति। तन्निषेधार्थमाह—

न च ते तदङ्गे। साध्यधर्मिणि हेतुसाध्ययोर्वचनादेवासंशयात् ॥ ४४ ॥

ते उपनयनिगमने ऽपि वक्ष्यमाणलक्षणे तस्यानुमानस्याङ्गे न भवतः। साध्यधर्मिणि हेतुसाध्ययोर्वचनादेवेत्येवकारेण[10] दृष्टान्तादिकमन्तरेणेत्यर्थः[11]। किञ्चाभिधायापि दृष्टान्तादिकं समर्थनमवश्यं[12] वक्तव्यमसमर्थितस्याहेतुत्वादिति तदेव[13] वरं

स्मरण। १ हेतुप्रयोगादेव यदि साध्यसाधने संदेहो न भवेत्तर्हि तथा चायं तस्मात्तथेत्युपनयनिगमने किमर्थे। २ महानसादौ। ३ पर्वतादौ। ४ साध्यव्याप्तसाधननिर्णयस्य। ५ उदाहरणं हि यदि साध्यविशिष्टधर्मिणि साध्यसाधने न सन्देहयति चेत्। ६ उदाहरणस्य। ७ कारणात्। ८ यौगः प्राह। ९ निःसंशय। १० संशयो न भविष्यति। ११ आदिपदेनोपनयनिगमने। १२ विपक्षे बाधकप्रमाणदर्शनमेव समर्थनमिति। १३ स-

हेतुरूपमनुमानावयवो वाऽस्तु साध्यसिद्धौ तस्यैवोपयोगा-न्नोदाहरणादिकमेतदेवाह—

समर्थनं[१] वा[२] वरं हेतुरूपमनुमानावयवो[३]

वाऽस्तु साध्ये तदुपयोगात् ॥ ४५ ॥

प्रथमो वाशब्द एवकारार्थे । द्वितीयस्तु पक्षान्तरसूचने । शेषं सुगमम् । ननु दृष्टान्तादिकमन्तरेण[४] मन्दधियामवबोधयितुमशक्यत्वात्कथं पक्षहेतुप्रयोगमात्रेण[५] तेषां साध्यप्रतिपत्तिरिति तत्राह—

बालव्युत्पत्त्यर्थं तत्त्रयोपगमे[६] शास्त्र एवासौ

न वादेऽनुपयोगादिति ॥ ४६ ॥

बालानामल्पप्रज्ञानां व्युत्पत्त्यर्थं तेषामुदाहरणादीनां त्रयोपगमे शास्त्र एवासौ तत्त्रयोपगमो न वादे, नहि वादकाले शिष्या व्युत्पाद्याः, व्युत्पन्नानामेव तत्राधिकारादिति । बालव्युत्पत्त्यर्थं तत्त्रयोपगम इत्यादिना शास्त्रेऽभ्युपगतमेवोदाहरणादित्रयमुपदर्शयति—

दृष्टान्तो द्वेधा । अन्वयव्यतिरेकभेदादिति ॥ ४७ ॥

मर्थनमेव । १ समर्थनस्य हेतुरूपस्य वा । २ समर्थनमेव न पक्षधर्मत्वादि । ३ हेतुलक्षणं कीदृशं ? दृष्टान्तोपनयनिगमनलक्षणात्रिरूपत्वप्रदर्शनस्वरूपम् । ४ आदिपदेनोपनयनिगमनग्रहणम् । ५ दृष्टान्तोपनयनिगमनाभावे मात्रग्रहणम् । ६ दृष्टान्तोपनयनिगमनत्रयाभ्युपगमे । ७ वादे ।

दृष्टावन्तौ[1] साध्यसाधनलक्षणौ धर्मावन्वयमुखेन व्यतिरेकद्वारेण वा यत्र[2] स दृष्टान्त इत्यन्वर्थसञ्ज्ञाकरणात्। स द्वेधैवोपपद्यते। तत्रान्वयदृष्टान्तं दर्शयन्नाह—

साध्यव्याप्तं[3] साधनं यत्र प्रदर्श्यते सोऽन्वयदृष्टान्तः[4]॥ ४८॥

साध्येन[5] व्याप्तं नियतं[6] साधनं हेतुर्यत्र दर्श्यते[7] व्याप्तिपूर्वकतयेति भावः[8] द्वितीयभेदमुपदर्शयति—

साध्याभावे साधनाभावो यत्र कथ्यते स व्यतिरेकदृष्टान्तः[9]॥ ४९॥

असत्यसद्भावो[10][11] व्यतिरेकः। तत्प्रधानो दृष्टान्तो व्यतिरेकदृष्टान्तः[12]। साध्याभावे साधनस्याभाव एवेति सावधारणं[13] द्रष्टव्यम्। क्रमप्राप्तमुपनयस्वरूपं निरूपयति—

हेतोरुपसंहार उपनयः[14]॥ ५०॥

पक्षे इत्यध्याहारः तेनायमर्थः-हेतोः पक्षधर्मतयोपसंहार

---

१ अन्तःपदार्थसामर्थ्यधर्मसत्यव्यतीतिष्विति धनञ्जयः। २ वस्तुनि। ३ सामान्यतः स्वरूपं दृष्टान्तेनोक्तं विशेषतस्तु तत्स्वरूपं साध्यव्याप्तमित्यादिना दर्शयति। ४ यथाग्नौ साध्ये महानसादिः। ५ जन्यजनकादिभावेन। ६ अविनाभावित्वेन निश्चितम्। ७ धूमजलयोर्व्याप्तिः स्यादिति शङ्कां परिहरति, न धूमजलयोर्व्याप्तिस्तत्र जन्यजनकत्वाभावाद्यो यज्जन्यस्तेन तस्य व्याप्तिरिति नियमात्। ८ भावः पदार्थचेष्टात्मसत्ताभिप्रायजन्मसु। ९ यथाग्नौ साध्ये महाह्रदादिः। १० साध्याभावे। ११ साधनाभावः। १२ मध्यमपदलोपी समासः। १३ सामान्यनियमं सावधारणम्। १४ साध्याविनाभावत्वेन विशिष्टे साध्यधर्मिण्युपनीयते पुनरुच्चार्यते हेतुर्येन स उप-

उपनय इति । निगमनस्वरूपमुपदर्शयति—

प्रतिज्ञायास्तु निगमनमिति ॥ ५१ ॥

उपसंहार इति वर्त्तते । प्रतिज्ञाया उपसंहारः साध्यधर्मविशिष्टत्वेन प्रदर्शनं निगमनमित्यर्थः । ननु शास्त्रे दृष्टान्तादयो वक्तव्या एवेति नियमानभ्युपगमात्कथं तत्त्रयमिह सूरिभिः प्रपञ्चितमिति न चोद्यम् । स्वयमनभ्युपगमेऽपि प्रतिपाद्यानुरोधेन जिनमतानुसारिभिः प्रयोगपरिपाट्याः प्रतिपन्नत्वात् । सा चाज्ञाततत्स्वरूपैः कर्तुं न शक्यत इति तत्स्वरूपमपि शास्त्रेऽभिधातव्यमेवेति । तदेवं मतभेदेन द्वित्रिचतुःपञ्चावयवरूपमनुमानं द्विप्रकारमेवेति दर्शयन्नाह—

तदनुमानं द्वेधा ॥ ५२ ॥

तद्द्वैविध्यमेवाह—

स्वार्थपरार्थभेदादिति ॥ ५३ ॥

स्वपरविप्रतिपत्तिनिरासफलत्वाद्द्विविधमेवेति भावः ।

नयः । १ प्रतिज्ञाहेतूदाहरणोपनयाः साध्यलक्षणैकार्थतया निगम्यन्ते सम्बन्ध्यन्ते येन तन्निगमनमिति । २ सांख्यादयः प्राहुः । ३ यदा शिष्यो व्युत्पन्नो भवति तदा दृष्टान्तादिभिः प्रयोजनाभावाद्यदात्वव्युत्पन्नो भवति तदा शास्त्रे तेभ्य उपदेशादिति । ४ दृष्टान्तोपनयनिगमनत्रयमिति । ५ शिष्यानुरोधेन । ६ अन्यथानुपपत्त्येकलक्षणं लिङ्गमभ्यधत्त । प्रयोगपरिपाटी तु प्रतिपाद्यानुरोधतः ॥ १ ॥ ७ अङ्गीकारत्वात् । ८ प्रयोगपरिपाटी । ९ पुरुषैः । १० अनुमानस्वरूपमपि ।

स्वार्थानुमानभेदं दर्शयन्नाह—

स्वार्थ[९]मुक्तलक्षणम् ॥ ५४ ॥

साधनात्साध्यविज्ञानमनुमानमिति प्रागुक्तं लक्षणं यस्य तत्तथोक्तमित्यर्थः। द्वितीयमनुमानभेदं दर्शयन्नाह—

परा[१]र्थं तु तद[२]र्थपरामर्शिवचनाज्जातमिति ॥ ५५ ॥

तस्य स्वार्थानुमानस्यार्थः साध्यसाधनलक्षणः। तं परामृ[३]शतीत्येवं शीलं तदर्थपरामर्शि। तच्च तद्वचनं च तस्माज्जातमुत्पन्नं विज्ञा[४]नं परार्थानुमानमिति। न[५]नु वचना[६]त्मकं परार्थानुमानं प्रसिद्धं, तत्कथं तदर्थप्रतिपादकवचनजनितविज्ञानस्य परार्थानुमानत्वमभिद[७]धता न संग्रहीतमिति न वाच्यम्; अचेत[८]नस्य साक्षात्प्र[९]मितिहेतुत्वाभावेन निरुप[१०]चरितप्रमाणभावाभावात्। मु[११]ख्यानुमानहेतुत्वेन त[१२]स्योपचरि[१३]तानुमानव्यप-

---

१ साधनात्साध्यविज्ञानमनुमानमित्यनुमानसामान्यलक्षणस्य परार्थानुमानेऽपि सद्भावात्स्वार्थपरार्थानुमानयोः को भेद इति शङ्कायामाह। २ धूमाद्वह्निविज्ञानमनुमानमित्यर्थपरामार्शि यद्वचनं तस्माद्वचनरूपसाधनात्। (परोपदेशात्) यद्धूमाद्वह्निविज्ञानं जायते तत्परार्थानुमानं; वचनमन्तरेण यद्धूमादिसाधनादग्न्यादिसाध्यविज्ञानं भवति तत्स्वार्थानुमानमित्यनयोर्भेदः। ३ द्योतयति विषयीकरोति। ४ पर्वतोऽयं वह्निमान्धूमवत्त्वादिति वचनश्रवणादेव पूर्वं धूमज्ञानं पश्चात्ततो वह्निविज्ञानमित्यभिप्रायः। ५ नैयायिकः प्राह। ६ पञ्चावयवरूपम्। ७ जैनेन। ८ वचनस्य। ९ अज्ञाननिवृत्ति। १० मुख्य। ११ ज्ञानरूपानुमानस्य। १२ वचनस्य। १३ यथा विषयीधर्मस्य विषय उपचारात्त-

देशो न वार्यत एव । तदेवोपचरितं परार्थानुमानत्वं तद्वचनस्याचार्यः प्राह—

तद्वचनमपि तद्धेतुत्वादिति ॥ ५६ ॥

उपचारो[1] हि मुख्याभावे[3] सति प्रयोजने[4] निमित्ते[5] च प्रवर्त्तते। तत्र वचनस्य परार्थानुमानत्वे निमित्तं तद्धेतुत्वम् । तस्य प्रतिपाद्यानुमानस्य[6] हेतुस्तद्धेतुस्तस्य भावस्तत्त्वम् । तस्मान्निमित्तात्तद्वचनमपि परार्थानुमानप्रतिपादकवचनमपि परार्थानुमानमिति सम्बन्धः । कारणे[8] कार्यस्योपचारात् । अथवा[9] तत्प्रतिपादकानुमानं[10] हेतुर्यस्य[11] तत्तद्धेतुस्तस्य भावस्तत्त्वं ततस्तद्वचनमपि[12] तथेति सम्बन्धः[13] । अस्मिन्पक्षे कार्ये[14] कारणस्यो[15]-

---

दार्थस्यापि प्रत्यक्षता, कार्यस्य कारण उपचारादिन्द्रियस्यापि प्रत्यक्षता, यद्वा इन्द्रियार्थसम्बन्धस्यापि प्रत्यक्ष उपचारित्वं तथा वचनस्याप्युपचारनिमित्तं प्रतिपादकप्रतिपाद्यापेक्षयानुमानकार्यकरणत्वमिति । १ परार्थनुमानप्रतिपादकवचनस्य । २ विज्ञानलक्षणपरार्थानुमानवचनमपि पदार्थानुमानं तद्धेतुत्वात् । ३ वचने ज्ञानलक्षणमुख्यानुमानस्याभाव इति मुख्यार्थबाधः। ४ वचनस्यानुमानत्वे प्रयोजनमनुमानावयवाः प्रतिज्ञादय इति शास्त्रे व्यवहार एव । ५ वचनं ज्ञानस्य निमित्तमिति । ६ परार्थानुमानस्य । ७ प्रतिपादकत्वाद्वचनं हेतुः । ८ वचनात्मके कारणे कार्यस्य विज्ञानलक्षणस्योपचारात् । ९ प्रकारान्तरेणाह । १० स्वार्थानुमानम् । ११ वचनस्य । १२स्वार्थानुमानज्ञानस्यार्थपरामर्शि वचनमपि। १३ स्वार्थानुमानमिति सम्बन्धः, कार्ये कारणस्योपचारात् । १४ स्वार्थानुमानवचनलक्षणे कार्ये । १५ स्वार्था-

पचार इति शेषः । वचनस्यानुमानत्वे च प्रयोजनमनुमानावयवाः प्रतिज्ञादय इति शास्त्रे व्यवहार एव । ज्ञानात्मन्यैनंशे तद्व्यवहारस्याशक्यकल्पनत्वात् । तदेवं साधनात् साध्यविज्ञानमनुमानमित्यनुमानसामान्यलक्षणम् । तदनुमानं द्वेधेत्यादिना तत्प्रकारं च सप्रपञ्चमभिधाय साधनमुक्तलक्षणापेक्षयैकमप्यतिसंक्षेपेण भिद्यमानं द्विविधमित्युपदर्शयति--

स हेतुर्द्वेधोपलब्ध्यनुपलब्धिभेदादिति ॥ ५७ ॥

सुगममेतत् । तत्रोपलब्धिर्विधिसाधिकैव । अनुपलब्धिः प्रतिषेधसाधिकैवेति परस्य नियमं विघटयन्नुपलब्धेरनुपलब्धेश्चाविशेषण विधिप्रतिषेधसाधनत्वमाह--

उपलब्धिर्विधिप्रतिषेधयोरनुपलब्धिश्चेति ॥ ५८ ॥

गतार्थमेतत् । इदानीमुपलब्धेरपि संक्षेपेण विरुद्धाविरुद्ध-

नुमानविज्ञानलक्षणस्य कारणस्योपचारः । १ ज्ञानस्य प्रतिज्ञाद्यवयवा भवन्त्विति शङ्कायामाह । २ अनुमाने । ३ निरवयवे । ४ प्रतिज्ञादिव्यवहारस्य । ५ अनुमानभेदम् । ६ अन्यथानुपपन्नत्वलक्षणापेक्षया । ७ योऽविनाभावलक्षणलक्षितः प्राक्प्रतिपादितः सः । ८ प्राप्तिः । ९ सत्वं । १० निषेधः । ११ उपलब्धिर्विधिं साधयति प्रतिषेधं च, तथानुपलब्धिर्निषेधं साधयति विधिं च तस्मादुभयोरपि विधिप्रतिषेधत्वं वर्तत इति दर्शयति । १२ अविनाभावनिमित्तो हि साध्यसाधनयोर्गम्यगमकभावः । यथा चोपलब्धेर्विधौ साध्येऽविनाभावाद्गमकत्वं तथोपलब्धेः प्रतिषेधेऽपि साध्येऽविनाभावाद्गमकत्वम् । अनुपलब्धेश्च यथा प्रतिषेधे साध्येऽविनाभावाद्गमकत्वं

भेदाद्द्वैविध्यमुपदर्शयन्नविरुद्धोपलब्धेर्विधौ साध्ये विस्तरतो भेदमाह—

अविरुद्धोपलब्धिर्विधौ[1] षोढा व्याप्यकार्यकारण-
पूर्वोत्तरसहचरभेदादिति ॥ ५९ ॥

पूर्वं च उत्तरं च सह चेति द्वन्द्वः । पूर्वोत्तरसह इत्येते-भ्यश्चर इत्यनुकरणनिर्देशः, द्वन्द्वात् श्रूयमाणश्चरशब्दः प्रत्येकम-भिसम्बध्यते । तेनायमर्थः पूर्वचरोत्तरचरसहचरा इति । पश्चा-द्व्याप्यादिभिः सह द्वन्द्वः । अत्राह सौगतः—विधिसाधनं द्विवि-धमेव । स्वभावकार्यभेदात् । कारणस्य तु कार्याविनाभावा-भावादलिङ्गत्वम् । नावश्यं कारणानि कार्यवन्ति भवन्तीति व-चनात् । अप्रतिबद्धसामर्थ्यस्य कार्यम्प्रति गमकत्वमित्यपि नोत्तरम् । सामर्थ्यस्यातीन्द्रियतया विद्यमानस्यापि निश्चेतु-मशक्यत्वादिति । तदसमीक्षिताभिधानमिति दर्शयितुमाह—

रसादेकसामग्र्यनुमानेन रूपानुमानमिच्छद्भिरिष्टमेव

तथानुपलब्धेर्विधावपि साध्येऽविनाभावाद्गमकत्वमिति । [1] अस्तित्वे । साध्ये । [2] पश्चान्निर्देशः । [3] विधिसाधनहेतुः । [4] वृक्षत्वशिंशपात्वयोः । [5] धूमाग्न्योः । [6] असाधनत्वम् । [7] दण्डादीनि । [8] मणिमन्त्रादिनाऽप्रतिहतसामर्थ्यस्य । [9] अप्रत्यक्षतया । [10] पूर्वोक्तम् । [11] अन्धकारावगुहिते प्रदेशे आस्वाद्यमानो रसः स्वसमानसमयकारणकार्यो भवत्येवंविधरसत्वात्सम्प्रतिपन्नरसवदिति । आस्वाद्यमानो रसः स्वसमान-कालीनपूर्वरूपक्षणसहवान् समनन्तरक्षणजन्यकार्यक्षणत्वादनुभूयमानरस-

किञ्चित्कारणं हेतुर्यत्र[1] सामर्थ्याप्रतिबन्धकारणान्तरावैकल्ये ॥ ६० ॥

आस्वाद्यमानाद्धि रसात्तज्जनिका सामग्र्यनुमीयते । ततो रूपानुमानं भवति । प्राक्तनो हि रूपक्षणः सजातीयं रूपक्षणान्तरलक्षणं कार्यं कुर्वन्नेव विजातीयं रसलक्षणं कार्यं करोतीति रूपानुमानमिच्छद्भिरिष्टमेव किञ्चित्कारणं हेतुः प्राक्तनस्य रूपक्षणस्य सजातीयरूपक्षणान्तराव्यभिचारात् । अन्यथा रससमानकालरूपप्रतिपत्तेरयोगात् । नह्यनुकूलमात्रमन्त्यक्षणंप्राप्त वा कारणं लिङ्गमिष्यते । येन मणिमन्त्रादिना सामर्थ्य-

---

क्षणवदिति । १२ मातुलिङ्गे रससमानकालीनं रूपमस्त्येकसामग्र्यधीनत्वात्सम्प्रतिपन्नरसवदिति । १३ सौगतैः । १ विशिष्टं, नानुकूलादिरूपम् । २ कारणे । ३ मन्त्रौषधादिना प्रतिबन्धः । ४ पूर्वक्षणं उत्तरक्षणस्य कारणमन्त्यक्षणो यदान्यक्षणोत्पादको न भवति तदा वैकल्यं पूर्वक्षणापेक्षयान्त्यक्षणः कारणान्तरं तदेव यदा विकलमिति । सहकारिणां क्षित्यादीनां वैकल्यमित्यर्थः । ५ पूर्वरूपक्षणः सजातीयोत्तररूपक्षणं जनयन्नेव विजातीयोत्तररसक्षणं जनयति कारणक्षणत्वादनुभूतरसक्षणवदिति । ६ व्यभिचरति चेत् । ७ रूपरसयोः समानकालीनप्रतिपत्तेरयोगात् । ८ बौद्धमतमनूद्य जैनः कथयति । ९ दण्डादि । १० मात्रग्रहणेन कार्येण सह कारणस्याविनाभावनिराकरणत्वमिति । ११ कार्याव्यवहितपूर्वक्षणप्राप्तं तन्तुसंयोगरूपमिति । १२ यथा प्रदीपे क्षणाः बहवो जायन्ते विनश्यन्ति च तथापि प्रदीपस्य विनाशकाले योऽसावन्त्यक्षण इति ।

प्रतिबन्धात्कारणान्तरवैकल्येन वा कार्यव्यभिचारित्वं स्यात् द्वितीयक्षणे कार्यप्रत्यक्षीकरणेनाऽनुमानानर्थक्यं वा । कार्याविनाभावितया निश्चितस्य विशिष्टकारणस्य छत्रादेर्लिङ्गत्वेनाङ्गीकरणात्, यत्र सामर्थ्याप्रतिबन्धः कारणान्तरावैकल्यं निश्चीयते तस्यैव लिङ्गत्वं नान्यस्येति नोक्तदोषप्रसङ्गः । इदानीं पूर्वोत्तरचरयोः स्वभावकार्यकारणेष्वनन्तर्भावाद्भेदान्तरत्वमेवेति दर्शयति—

न च पूर्वोत्तरचारिणोस्तादात्म्यं तदुत्पत्तिर्वा कालव्यवधाने तदनुपलब्धेरिति ॥ ६१ ॥

तादात्म्यसम्बन्धे साध्यसाधनयोः स्वभावहेतावन्तर्भावः,

---

१ यथा बीजं कारणान्तरक्षितिपवनसलिलातपयोगरहितमङ्कुरं न प्ररोहति । २ तदेव नाङ्गीक्रियतेऽत उक्तदूषणं न । ३ बौद्धमतमनूद्य दूषयति, बौद्धेन त्वयानुमानभङ्गात्कारणस्य लिङ्गत्वं नाङ्गीक्रियतेऽस्ति चाङ्गीकारस्त्वन्मतेऽनुमानस्य च नास्ति वैयर्थ्यमिति । ४ आदिपदेन चन्द्रवृद्धेः । ५ साध्यसाधनयोः । पूर्वोत्तरकालवर्तिनोरिति पाठान्तरमिति । ६ तत्साधनमात्मा यस्य साध्यस्यासौ तदात्मा तस्य भावस्तादात्म्यमिति । ७ तस्मात्कारणादुत्पत्तिर्यस्य कार्यस्यासौ तदुत्पत्तिः । ८ तादात्म्यतदुत्पत्त्योः । ९ तादात्म्यतदुत्पत्ती कृत्तिकोदयशकटोदययोर्न भवतः शकटोदयकालेऽनन्तरं वा कृत्तिकोदयानुपलब्धेर्यद्यत्कालेऽनन्तरं वा नास्ति न तस्य तेन तादात्म्यं तदुत्पत्तिर्वा, यथा भविष्यच्छङ्खचक्रवर्तिकाले रावणादेस्तादात्म्यतदुत्पत्त्यसतः । नास्ति च शकटोदयकालेऽनन्तरं वा कृत्तिकोदया-

तदुत्पत्तिसम्बन्धे च कार्ये कारणे वान्तर्भावो विभाव्यते । न च तदुभयसम्भवः कालव्यवधाने तदनुपलब्धेः । सहभाविनोरेव तादात्म्यसम्भवादनन्तरयोरेव पूर्वोत्तरक्षणयोर्हेतु-[1]फलभावस्य[2] दृष्टत्वात्, व्यवहितयोस्तदघटनात्[3] । ननु[4] कालव्यवधानेऽपि कार्यकारणभावो दृश्यत एव । यथा जाग्रत्प्रबुद्धदशाभाविप्रबोधयोर्मरणारिष्टयोर्वेति । तत्परिहारार्थमाह—

भाव्यतीतयोर्मरणजाग्रद्बोधयोरपि नारिष्टोद्बोधौ प्रति हेतुत्वम् ॥ ६२ ॥

सुगममेतत् । अत्रैवोपपत्तिमाह—

तद्व्यापाराश्रितं हि तद्भावभावित्वम् ॥ ६३ ॥

दिकं तस्मात्तयोस्तादात्म्यतदुत्पत्ती न स्तः । १ अव्यवहितयोः । २ कारणकार्यभावस्य । ३ तादात्म्यकारणकार्यभावयोरघटनात् । ४ बौद्धः प्राह । ५ निशि जाग्रदवस्थायां किमपि कार्यं विचारितं तत्कारणं, पश्चात्प्रभाते प्रबुद्धावस्थायां तत्कार्यं करोतीति कालव्यवधानेऽपि कारणकार्यभावः दृश्यते । पूर्वं जाग्रदवस्थायां ज्ञानं तदेव प्रबुद्धावस्थानन्तर-ज्ञानस्य कारणमिति भावः । स्वप्नात्पूर्वावस्था जाग्रदवस्था, स्वप्नात्पश्चादवस्था प्रबुद्धावस्था । ६ अवस्था । ७ मरणात्पूर्वमरिष्टं भवति तत्र मरणं कारणं तस्मादरिष्टकार्यमत्रापि तथा । ८ व्यवहितयोः कार्यकारणभाव-दर्शनस्य । ९ भावीमरणस्यातीतजाग्रदवस्थाबोधस्य च । १० अरिष्टं प्रबुद्धावस्थाज्ञानं च प्रति न कारणत्वम् । ११ कारण ।

हिशब्दो यस्मादर्थे । यस्मात्तस्य कारणस्य भावे कार्यस्य भावित्वं तद्भावभावित्वं तच्च तद्व्यापाराश्रितं तस्मान्न प्रकृतयोः कार्यकारणभाव इत्यर्थः । अयमर्थः—अन्वयव्यतिरेकसमधिगम्यो हि[1] सर्वत्र[2] कार्यकारणभावः । तौ च कार्यम्प्रति कारणव्यापारसव्यपेक्षावेवोपपद्येते[3] कुलालस्येव[4] कलशम्प्रति । न चातिव्यवहितेषु[5] तद्व्यापाराश्रितत्त्वमिति । सहचरस्याप्युक्तहेतुष्[6]वनन्तर्भावं दर्शयति—

सहचारिणोरपि[7] परस्परपरिहारेणा-
वस्थानात्सहोत्पादाच्च[9] ॥ ६४ ॥

हेत्वन्तरत्त्वमिति शेषः । अयमभिप्रायः परस्परपरिहारेणोपलम्भात्तादात्म्यासम्भवात्स्वभावहेतावनन्तर्भावः[8] । सहो-

---

१ निश्चयेन । २ बीजाङ्कुरादौ । ३ घटेते । ४ यथा कुलालस्य कलशं प्रत्यन्वयव्यतिरेकत्वं वर्तते यतः सति कुलाले कलशस्योत्पत्तिर्जायतेऽन्यथा न जायते । ५ पदार्थेषु । ६ स्वभावकार्यकारणेषु । ७ सह युगपदेकस्मिन्काले चरतः प्रवर्तेत इत्येवं शीलौ प्रकरणाद्रूपरसौ तयोः । ८ सहभाविनोरेव तादात्म्यमिति नियमाद्रूपरसयोरपि तादात्म्यं ततश्च स्वभावहेतावन्तर्भावः स्यादिति शङ्कापरिहारार्थं परस्परपरिहारेणावस्थानादित्युक्तं, रूपरसयोर्हि स्वरूपभेदपरस्परपरिहारेणावस्थानान्न तादात्म्यं तदभावे न स्वभावहेतावन्तर्भावः । ९ अनन्तरपूर्वोत्तरक्षणभाविकारणकार्ययोर्धूमधूमध्वजयोरनन्तर्भावार्थं सहोत्पादादिति पदोपादानमिति । १० शिंशपावृक्षत्वयोरेककालीनत्वाद्यथा तादात्म्यं न तथा रूपरसयोर्यतो वृक्षत्वपरिहा-

त्पादाच्च[1] न कार्ये कारणे वेति । न च समानसमयवर्तिनोः[2] कार्यकारणभावः[3] सव्येतरगोविषाणवत् । कार्यकारणयोः प्रतिनियमाभावप्रसङ्गाच्च । तस्माद्धेत्वन्तरत्वमेवेति[4] । इदानीं व्याप्यहेतुं क्रमप्राप्तमुदाहरन्नुक्तान्वयव्यतिरेकपुरस्सरं प्रतिपाद्याशयवशात्[5]प्रतिपादितप्रतिज्ञाद्यवयवपञ्चकं प्रदर्शयति--

परिणामी[6] शब्दः[7] कृतकत्वात्[8] । यः एवं स एवं दृष्टो[9] यथा[10] घटः, कृतकश्चायं[11], तस्मात्परिणामीति[12], यस्तु[13] न परिणामी स न कृतको दृष्टो यथा बन्ध्यास्तनन्धयः[14], कृतकश्चायं, तस्मात्परिणामीति ॥ ६५ ॥

स्वोत्पत्तावपेक्षितव्यापारो हि भावः कृतक उच्यते । तच्च कृतकत्वं न कूटस्थ[15]नित्यपक्षे नापि क्षणिक[16]पक्षे किन्तु

रेण यथा शिंशपात्वस्यानुपलब्धिर्न तथा रूपरसयोरुपलब्धिर्भिन्नेन्द्रियग्राह्यत्वात्तयोः । रसनेन्द्रियग्राह्यो हि रसो रूपं तु चक्षुरिन्द्रियग्राह्यमिति । १ एककालोत्पादात् । २ रूपरसयोः । ३ समसमयभाविनोः सव्येतरगोविषाणयोर्नहि कार्यकारणभावत्वं विद्यते तथा रूपरसयोरपि न सम्भवति । ४ सहचारिणोः कारणान्तरत्वमिति । ५ शिष्याभिप्रायवशात् । ६ पूर्वोत्तराकारपरिहारावाप्तिस्थितिलक्षणः परिणामःसोऽस्यास्तीति स परिणामी । पूर्वावस्थामप्यजहन्संस्पृशन्धर्ममुत्तरम् । स्वस्मादप्रच्युतो धर्मी परिणामी स उच्यते ॥१॥ ७ पक्षः । ८ हेतुः । ९ अन्वयव्याप्तिः । १० अन्वयदृष्टान्तः । ११ उपनयः । १२ निगमनम् । १३ व्यतिरेकव्याप्तिः । १४ व्यतिरेकदृष्टान्तः । १५ कालव्यापी स कूटस्थ इत्यमरः । एक-

परिणामित्वे सत्येवेत्यग्रे वक्ष्यते । कार्यहेतुमाह--

अस्त्यत्र देहिनि बुद्धिर्व्याहारादेः ॥ ६६ ॥

कारणहेतुमाह—

अस्त्यत्रच्छाया छत्रात् ॥ ६७ ॥

अथ पूर्वचरहेतुमाह—

उदेष्यति शकटं कृत्तिकोदयात् ॥ ६८ ॥

मुहूर्तान्ते इति सम्बन्धः । अथोत्तरचरः—

उदगाद्भरणिः प्राक्तत एव ॥ ६९ ॥

अत्रापि मुहूर्तात्प्रागिति सम्बन्धनीयं, तत एव कृत्तिकोदयादेवेत्यर्थः । सहचरलिङ्गमाह—

अस्त्यत्र मातुलिङ्गे रूपं रसात् ॥ ७० ॥

स्वभावरूपतया यः कालव्यापी स कूटस्थ इति भावः । १६ प्रतिक्षणविनाशि क्षणिकमिति । १ आत्मा । २ वचनमादिशब्देन व्यापाराकारविशेषादिपरिग्रहः । ३ कारणकारणादेरत्रैवान्तर्भावस्तथाहि—महोऽत्रत्यानां कण्ठक्षेपविक्षेपकारी धूमवदग्निमत्वात्, कण्ठादिविक्षेपस्य कारणं धूमस्तस्य कारणं वह्निरिति । ४ रोहिणी । ५ पूर्वपूर्वचराद्यनेनैव संगृहीतं तथाहि—उदेष्यति कृत्तिकाऽश्विन्युदयात्, कृत्तिकायाः पूर्वचरो भरण्युदयस्तत्पूर्वचरोऽश्विन्युदय इति । ६ उत्तरोत्तरचराद्यनेनैव संगृहीतं तथाहि—उदगाद्भरणिः शकटोदयात्, भरण्युत्तरचरः कृत्तिकोदयस्तदुत्तरचरः शकटोदय इति । ७ साध्यसमकालस्य संयोगिन एकार्थसमवायिनश्चात्रैवान्तर्भावो भवति । संयोगि लिङ्गं यथात्मनोऽत्रास्तित्वं विशिष्टशरीरात्, आत्मनः संयुक्तं शरीरं तदात्म-

विरुद्धोपलब्धिमाह—

विरुद्धतदुपलब्धिः[1] प्रतिषेधे तथेति[2] ॥ ७१ ॥

प्रतिषेधे साध्ये प्रतिषेध्येन विरुद्धानां सम्बन्धिनस्ते व्याप्यादयस्तेषामुपलब्धय इत्यर्थः । तथेति षोढेति भावः । तत्र साध्यविरुद्धव्याप्योपलब्धिमाह—

नास्त्यत्र शीतस्पर्श औष्ण्यात् ॥ ७२ ॥

शीतस्पर्शप्रतिषेध्येन हि विरुद्धोऽग्निस्तद्व्याप्यमौष्ण्यमिति । विरुद्धकार्योपलम्भमाह —

नास्त्यत्र शीतस्पर्शो धूमात् ॥ ७३ ॥

अत्रापि प्रतिषेध्यस्य साध्यस्य शीतस्पर्शस्य विरुद्धोऽग्निस्तस्यकार्यं धूम इति । विरुद्धकारणोपलब्धिमाह—

नास्मिन् शरीरिणि सुखमस्ति हृदयशल्यात् ॥ ७४ ॥

सुखविरोधि दुःखं, तस्य कारणं हृदयशल्यमिति । विरुद्धपूर्वचरमाह—

नोदेष्यति मुहूर्तान्ते शकटं रेवत्युदयात् ॥ ७५ ॥

शकटोदयविरुद्धो ह्यश्विन्युदयस्तत्पूर्वचरो रेवत्युदय इति ।

नोऽस्तित्वं ज्ञापयति । संयोगिलिङ्गस्य नैयायिकमतानुसरणे तु कार्यहेतावन्तर्भावं इति । १ प्रतिषेध्येन साध्येन यद्विरुद्धं तत्सम्बन्धिनां तेषां व्याप्यादीनामुपलब्धिरिति । २ अविरुद्धोपलब्धिवत् षट्प्रकारा । ३ आदिशब्देन कार्यकारणपूर्वोत्तरसहचराः परिगृह्यन्ते । ४ सहभावात्कारणे हेतौ कार्ये वानन्त-

विरुद्धोत्तरचरं लिङ्गमाह—

नोदगाद्भरणिर्मुहूर्तात्पूर्वं पुष्योदयात् ॥ ७६ ॥

भरण्युदयविरुद्धो हि पुनर्वसूदयस्तदुत्तरचरः पुष्योदय इति । विरुद्धसहचरमाह—

नास्त्यत्र भित्तौ परभागाभावोऽर्वाग्भागदर्शनादिति ॥७७॥

परभागाभावस्य[1] विरुद्धस्तद्भावस्[2]तत्सहचरोऽर्वाग्भाग इति । अविरुद्धा[3]नुपलब्धिभेदमाह—

अविरुद्धानुपलब्धिः प्रतिषेधे सप्तधा स्वभावव्यापककार्यकारणपूर्वोत्तरसहचरानुपलम्भभेदादिति ॥ ७८ ॥

स्वभावादिपदानां द्वन्द्वः तेषामनुपलम्भ इति पश्चात्[4]षष्ठीतत्पुरुषसमासः । स्वभावानुपलम्भोदाहरणमाह—

नास्त्यत्र भूतले घटो[6]ऽनुपलब्धेः[5] ॥ ७९ ॥

अत्र पिशाचपरमाण्वादिभिर्व्यभिचारपरिहारार्थमुपलब्धि-

भावाद्यतिरिक्तो व्याप्यहेतुरिति । १ अभावस्तु निषेध्यस्तद्विरुद्धो भावः । २ परभागसद्भावः । ३ प्रतिषेध्येन साध्येनाविरुद्धस्यानुपलब्धिरिति । ४ पश्चात्तास इति पाठान्तरमिति । ता—इति षष्ठीविभक्तेः सञ्ज्ञा जैनेन्द्रे स इति समासस्य च । ५ केवलं घटरहितस्वभावभूतलं दृष्ट्वानुमिनोतीति स्वाभावानुपलब्धिः । ६ प्रतिषेध्यस्य घटस्याविरुद्धस्तत्स्वभावस्तस्यानुपलम्भात् । ७ दृश्यस्वभावत्वे सत्यनुपलब्धेरिति । ८ य उपलब्धिलक्षणप्राप्तत्वे सति नोपलभ्यन्ते त एव निषेध्या न पुनः पिशाचादयस्तेषामुपलब्धिलक्षणप्राप्तित्वायोगात्तथा सति प्रभाववता योगिना पिशाचादिना वा प्रतिबन्धात् घटादेरनुप-

लक्षणप्राप्तत्वे सतीति विशेषणमुन्नेयम्[1]। व्यापकानुपलब्धिमाह—

नास्त्यत्र शिंशपा वृक्षानुपलब्धेः ॥ ८० ॥

शिंशपात्वं हि वृक्षत्वेन व्याप्तम्। तदभावे तद्व्याप्यशिंशपाया अप्यभावः। कार्यानुपलब्धिमाह—

नास्त्यत्राप्रतिबद्ध[2]सामर्थ्यो[3]ऽग्निर्धूमानुपलब्धेः[4] ॥८१॥

अप्रतिबद्धसामर्थ्यं[5] हि कार्यं[6] प्रत्यनुपहतशक्तिकत्वमुच्यते। तदभावश्च कार्यानुपलम्भादिति कारणानुपलब्धिमाह—

नास्त्यत्र धूमोऽनग्नेः ॥ ८२ ॥

पूर्वचरानुपलब्धिमाह—

न भविष्यति[7] मुहूर्तान्ते शकटं कृत्तिकोदयानुपलब्धेः ॥ ८३ ॥

उत्तरचरानुपलब्धिमाह—

नोदगाद्भरणिर्मुहूर्तात्प्राक्तत एव ॥ ८४ ॥

तत एव कृत्तिकोदयानुपलब्धेरेवेत्यर्थः। सहचरानुपलब्धिः प्राप्तकालेत्याह—

नास्त्यत्र समतुलायामुन्नामो[8] नामानुपलब्धेः[9] ॥ ८५ ॥

लब्धिर्न विरुध्यते। १ निश्चेतव्यम्। २ आर्द्रेन्धनसंयोगे सति। ३ अत्र धूमरूपकार्यकारित्वमेव सामर्थ्यम्। ४ अदर्शनात्। ५ यद्विशेषणम्। ६ धूमम्। ७ नोदेष्यतीति वा पाठः। ८ उच्चत्वम्। ९ नम्रता,

विरुद्धकार्याद्यनुपलब्धिर्विधौ सम्भवतीत्याचक्षाणस्तद्भेदास्त्रय एवेति तानेव प्रदर्शयितुमाह—

विरुद्धानुपलब्धिर्विधौ[1][2] त्रेधा ।

विरुद्ध[3]कार्यकारणस्वभावानुपलब्धिभेदात् ॥८६॥

विरुद्धकार्याद्यनुपलब्धिर्विधौ सम्भवतीति विरुद्धकार्यकारणस्वभावानुपलब्धिरिति । तत्र विरुद्धकार्यानुपलब्धिमाह—

यथाऽस्मिन्प्राणिनि व्याधिविशेषोऽस्ति

निरामयचेष्टानुप[4]लब्धेरिति ॥ ८७ ॥

व्याधिविशेषस्य हि विरुद्धस्तदभावस्तस्य कार्यं निरामयचेष्टा तस्या अनुपलब्धिरिति । विरुद्धकारणानुपलब्धिमाह—

अस्त्यत्र देहिनि दुःखमिष्टसंयोगाभावात् ॥ ८८ ॥

दुःखविरोधि सुखं, तस्य करणमिष्टसंयोगस्तदनुपलब्धिरिति । विरुद्धस्वभावानुपलब्धिमाह—

अनेकान्तात्मकं वस्त्वेकान्त[5]स्वरूपानुपलब्धेः ॥ ८९ ॥

अनेकान्तात्मकविरोधी नित्याद्येकान्तो न पुन[6]स्तद्विषय-

यदोन्नामस्तदा नामेति सहचारित्वमिति । १ विधेयेन साध्येन विरुद्धस्य कार्यादेरनुपलब्धिः । २ साध्ये । ३ विरुद्धशब्दः प्रत्येकमभिसम्बध्यते । ४ अनुपलब्धिरूपो हेतुरुपलब्धिं साधयति । ५ वस्तु नित्यमेवानित्यमेवेति वस्तुन एकान्तरूपस्यानुपलब्धेः । ६ एकान्तपदार्थविषयविज्ञा-

विज्ञानम्[1] तस्य[2] मिथ्याज्ञानरूपतयोपलम्भसम्भवात्[3]। तस्य[4] स्वरूपमवास्तवाकारस्तस्यानुपलब्धिः, ननु च व्यापकविरुद्ध[5] कार्यादीनां[6] परम्परया विरोधिकार्यादिलिङ्गानां च बहुलमुपलम्भसम्भवात्तान्यपि किमिति नाचार्यैरुदाहृतानीत्याशङ्कायामाह—

परम्परया सम्भवत्साधनमत्रैवान्तर्भावनीयम् ॥ ९० ॥

अत्रैवैतेषु कार्यादिष्वित्यर्थः। तस्यैव साधनस्योपलक्षणार्थमुदाहरणद्वयं प्रदर्शयति—

अभूदत्र चक्रे शिवकः स्थासात् ॥ ९१ ॥

नम्। १ यदि नित्याद्येकान्तस्वरूपपदार्थो नास्ति तर्हि तद्विषयं विज्ञानं कथं सम्भवतीति शङ्कां परिहरति। २ एकान्तपदार्थविषयविज्ञानस्य। ३ नित्याद्येकान्तवस्तुनोऽनुपलब्धिर्वर्तते न पुनस्तद्विषयविज्ञानं तस्य विपरीतादिमिथ्याज्ञानरूपतया सम्भवाद्यथा शुक्तिकायां रजतज्ञानमिति। तत्र शुक्तिका शुक्तिकैव न रजतं परन्तु तत्र रजतज्ञानं भवति तथा पदार्थोऽनेकान्तस्वरूपः परन्तु तत्र नित्याद्येकान्तरूपामिथ्याज्ञानं जायते इति। ४ नित्यैकान्तरूपस्य। ५ कारणविरुद्धकार्यादीनाम्। ६ नास्त्यत्र शीतस्पर्शसामान्यव्याप्तः शीतस्पर्शविशेषो धूमात्, निषेध्यस्य शीतस्पर्शविशेषस्य हि व्यापकं शीतस्पर्शसामान्यं तद्विरुद्धोऽग्निस्तस्य कार्यं धूममिति। ७ नास्त्यौष्ण्यं रोमाञ्चात्। व्यापकोऽग्निस्तदविरुद्धं कार्यमौष्ण्यं तस्य विरुद्धं कार्यं शैत्यं तस्य परम्परया कार्यं रोमाञ्च इति। ८ स्वस्य स्वसदृशस्य च ग्राहकमुपलक्षणम्। स्वप्रतिपादकत्वे सति स्वेतरप्रतिपादकत्वं वा, स्वार्थबोधकत्वे

एतच्च किं संज्ञकं क्वान्तर्भवतीत्यारेकायामाह—

कार्यकार्यमविरुद्धकार्योपलब्धौ ॥ ९२ ॥

अन्तर्भावनीयमिति सम्बन्धः। शिवकस्य हि कार्यं छत्रकं, तस्य कार्यं स्थास इति। दृष्टान्तद्वारेण द्वितीयहेतुमुदाहरति—

नास्त्यत्र गुहायां मृगक्रीडनं मृगारिसंशब्दनात्।
कारणविरुद्धकार्यं विरुद्धकार्योपलब्धौ यथेति ॥ ९३ ॥

मृगक्रीडनस्य हि कारणं मृगस्तस्य विरोधी मृगारिस्तस्य कार्यं तच्छब्दनमिति। इदं यथा विरुद्धकार्योपलब्धावन्तर्भवति तथा प्रकृतमपीत्यर्थः। बालव्युत्पत्त्यर्थं पञ्चावयवप्रयोग इत्युक्तं व्युत्पन्नम्प्रति कथं प्रयोगनियम इति शङ्कायामाह—

व्युत्पन्नप्रयोगस्तु तथोपपत्त्याऽन्यथानुपपत्त्यैव वा ९४ ॥

व्युत्पन्नस्य व्युत्पन्नाय वा प्रयोगः क्रियते इति शेषः। तथोपपत्त्या तथा साध्ये सत्येवोपपत्तिस्तया ऽन्यथानुपपत्त्यैव वा ऽन्यथा साध्याभावेऽनुपपत्तिस्तया। तामेवानुमानमुद्रामुन्मुद्रयति—

अग्निमानयं देशस्तथैव धूमवत्त्वोप-
पत्तेर्धूमवत्त्वान्यथानुपपत्तेर्वेति ॥ ९५ ॥

सतीतरार्थबोधकत्वं वा। अन्तर्भावनीयार्थमिति। १ इदं लिङ्ग कार्यकार्यसञ्ज्ञमिति। २ अन्तर्भावः। ३ तथा कार्यकार्यं कार्याविरुद्धोपलब्धावन्तर्भावनीयमिति सम्बन्धः। ४ कार्यकार्यलिङ्गमपि। ५ अन्वयव्याप्त्या। ६ अग्निमानयं देशो धूमवत्वान्यथानुपपत्तेरिति। ७ प्रकटयति। ८ अग्नि-

ननु तदतिरिक्तदृष्टान्तादेरपि व्याप्तिप्रतिपत्तावुपयोगित्वात्। व्युत्पन्नापेक्षया कथं तदप्रयोग इत्याह—

हेतुप्रयोगो हि यथाव्याप्तिग्रहणं विधीयते सा च तावन्मात्रेण व्युत्पन्नैरवधार्यते इति ॥ ९६ ॥

हिशब्दो यस्मादर्थे, यस्माद्यथाव्याप्तिग्रहणं व्याप्तिग्रहणानतिक्रमेणैव हेतुप्रयोगो विधीयते। सा च तावन्मात्रेण व्युत्पन्नैस्तथोपपत्त्याऽन्यथानुपपत्त्या वाऽवधार्यते दृष्टान्तादिकमन्तरेणैवेत्यर्थः। यथा दृष्टान्तादेर्व्याप्तिप्रतिपत्तिंप्रत्यनङ्गत्वं तथा प्राक् प्रपञ्चितमिति नेह पुनः प्रतन्यते। नापि दृष्टान्तादिप्रयोगः साध्यसिद्ध्यर्थं फलवानित्याह—

तावता च साध्यसिद्धिः ॥ ९७ ॥

चकार एवकारार्थे। निश्चितविपक्षासम्भवहेतुप्रयोगमात्रेणैव साध्यसिद्धिरित्यर्थः। तेन पक्षप्रयोगोऽपि सफल इति दर्शयन्नाह—

तेन पक्षस्तदाधारसूचनायोक्तः ॥ ९८ ॥

यतस्तथोपपत्त्यन्यथानुपपत्तिप्रयोगमात्रेण व्याप्तिप्रतिपत्तिस्तेन हेतुना पक्षस्तदाधारसूचनाय साध्यव्याप्तसाधनाधारसू-

---

-मत्वे सत्येव। १ साध्यसाधनातिरिक्तदृष्टान्तादेः। २ यत्र यत्र धूमस्तत्र वह्निरिति यथाव्याप्तिग्रहणं तथा। ३ हसः (अव्ययीभावसमासः) व्याप्तिग्रहणमनतिक्रम्य वर्तत इति यथाव्याप्तिग्रहणमिति। ४ अहेतुत्वम्। ५ एतद्द्वयमेवानुमानाङ्गं नोदाहरणमित्यत्र। ६ यथोक्तसाधनेन साध्यसिद्धिर्येन। ७ सा-

चनायोक्तः । ततो यदुक्तं परेण—तद्भावहेतुभावौ हि दृष्टान्ते तदवेदिनः । ख्याप्येते विदुषां वाच्यो हेतुरेव हि केवलः ॥ १ ॥ इति तन्निरस्तम् । व्युत्पन्नं प्रति यथोक्तहेतुप्रयोगोऽपि पक्षप्रयोगाभावे साधनस्य नियतधारतानवधारणात् । अथानुमानस्वरूपं प्रतिपाद्येदानीं क्रमप्राप्तमागमस्वरूपं निरूपयितुमाह—

आप्तवचनादिनिबन्धनमर्थज्ञानमागमः ॥ ९९ ॥

यो यत्रावञ्चकः स तत्राप्तः । आप्तस्य वचनम् । आदिशब्देनागुल्यादिसंज्ञापरिग्रहः । आप्तवचनमादिर्यस्य तत्तथोक्तं

धनव्याप्तसाध्याधार । १ बौद्धेन । २ साध्यसाधनभावौ । ३ महानसादौ । ४ साध्यव्याप्तसाधनावेदिनः । ५ विद्वद्भिः कथ्येते । ६ पर्वतो वा महानसो वेति । ७ अर्थज्ञानमागम एतावत्युच्यमाने प्रत्यक्षादावतिव्याप्तिरतस्तत्परिहारार्थं वाक्यनिबन्धनमिति । वाक्यनिबन्धनमर्थज्ञानमागम इत्युच्यमानेऽपि यादृच्छिकसम्वादिषु विप्रलम्भवाक्यजन्येषु सुप्तोन्मत्तादिवाक्यजन्येषु वा नदीतीरफलसंसर्गादिज्ञानेष्वतिव्याप्तिः स्यादत उक्तमाप्तेति । आप्तवाक्यनिबन्धनज्ञानमागम इत्युच्यमानेप्याप्तवाक्यकर्मके श्रावणप्रत्यक्षेऽतिव्याप्तिरतस्तत्परिहारार्थमुक्तमर्थेति । अर्थस्तात्पर्यरूढः प्रयोजनरूढ इति यावत् । तात्पर्यमेव वचसीत्यभियुक्तवचनाद्वचसां प्रयोजनस्य प्रतिपादकत्वात् । आप्तवाक्यनिबन्धमर्थज्ञानमागम इत्युच्यमाने परार्थानुमानेऽतिव्याप्तिरतस्तत्परिहारार्थमादिपदमिति । ८ आदिशब्देन शिरोनयनपादादयः । सामीप्येऽथ व्यवस्थायां प्रकारेऽवयवे तथा । आदिशब्दं तु मेधावी चतुर्ष्वर्थेषु लक्षयेत् ॥१॥ ९ शब्दादुदेति यज्ज्ञानमप्रत्यक्षेऽपि वस्तुनि । शाब्दं तदिति मन्यन्ते प्रमा-

तन्निबन्धनं यस्यार्थज्ञानस्येति । आप्तशब्दोपादानादपौरुषेयत्व-व्यवच्छेदः । अर्थज्ञानमित्यनेनान्यापोहज्ञानस्याभिप्रायसूचनस्य च निरासः । नन्वसम्भवीदं लक्षणं, शब्दस्य नित्यत्वेनापौरुषेयत्वादाप्तप्रणीतत्वायोगात् । तन्नित्यत्वं च तदवयवानां वर्णानां व्यापकत्वान्नित्यत्वाच्च । न च तद्व्यापकत्वमसिद्धम्, एकत्र प्रयुक्तस्य गकारादेः प्रत्यभिज्ञया देशान्तरेऽपि ग्रहणात् । स एवायं गकार इति नित्यत्वमपि तयैवावसीयते । कालान्तरेऽपि तस्यैव गकारादेर्निश्चयात् । इतो वा नित्यत्वं शब्दस्य सङ्केतान्यथानुपपत्तेरिति । तथाहि गृहीतसङ्केतस्य शब्दस्य

णान्तरवादिनः ॥ २ ॥ १ मीमांसकमतनिरासः । आगमस्त्वाप्तपुरुषप्रतिपादितो भवतीति निष्कर्षः । २ अन्यस्मात्पदार्थादन्यस्य पदार्थस्यापोहो निराकरणं तस्य व्यावृत्तिरूपापोहविषय एव शब्दो न त्वर्थविषय इति बौद्धः। ३ अगोः व्यावृत्तिर्गौः, व्यावृत्तिस्तुच्छाऽर्थरूपा न भवति । ४ शब्दसन्दर्भस्य, यथा केनचिदुक्तं घटमानय तदा जलानयनार्थाभिप्रायं मनसि कृत्वाऽऽनयति तदा तदभिप्रायस्यार्थत्वं नास्ति । ५ मीमांसकः प्राह । ६ वर्णात्मकास्तु ये शब्दाः नित्याः सर्वगतास्तथा । प्रथग्द्रव्यतया ते तु न गुणाः कस्यचिन्मताः ॥ १ ॥ ७ रागद्वेषादिकालुष्यं पुरुषेष्वुपलभ्यते । अतो प्रामाण्यशङ्का हि निकलङ्के प्रसज्यते ॥ २ ॥ ८ शब्दनित्यत्वं । ९ एकस्मिन्देशे । १० यस्तत्र मया श्रुतो गगारः स एव मयात्र श्रूयते इति भावः । ११ ज्ञायते । १२ प्रकारान्तरेण नित्यत्वं व्यवस्थापयति । १३ खुरककुदलाङ्गूलसास्नादिमत्यर्थे गोशब्दस्य सङ्केतोऽन्यथा न भवति तस्मान्नित्यत्वं शब्दस्य । १४ एतदेव विवृणोति ।

प्रध्वंसे सत्यगृहीतसंकेतः शब्द इदानीमन्य एवोपलभ्यते इति तत्कथमर्थप्रत्ययः स्यात् ? न चासौ न भवतीति स एवायं शब्द इति प्रत्यभिज्ञानस्यापि सुलभत्वाच्च । न च वर्णानां शब्दस्य वा नित्यत्वे सर्वैः सर्वदा श्रवणप्रसङ्गः । सर्वदा तदभिव्यक्तेरसम्भवात् । तदसम्भवश्चाभिव्यञ्जकवायूनां प्रतिनियतत्वात् । न च तेषामनुपपन्नत्वम् , प्रमाणप्रतिपन्नत्वात्–तथाहि—वक्तृमुखनिकटदेशवर्तिभिः स्पर्शनेनाध्यक्षेण व्यञ्जका वायवो गृह्यन्ते । दूरदेशस्थितेन मुखसमीपस्थिततूलचलनादनुमीयन्ते । श्रोतृश्रोत्रदेशे शब्दश्रवणान्यथानुपपत्तेरर्थापत्त्यापि निश्चीयन्ते । किञ्चोत्पत्तिपक्षेऽपि समानोऽयं दोषः । तथाहि—

१ अगृहीतसङ्केतशब्दात् । २ किन्त्वर्थप्रत्ययो भवतीत्यर्थः । नित्यत्वाच्छब्दस्य । ३ वर्णेष्विव शब्देऽपि । ४ यथा प्रत्यभिज्ञानस्य वर्णानां नित्यत्वे सुलभत्वं तथा शब्दनित्येऽपि सुलभत्वमिति । ५ नैयायिकशङ्कामनूद्य दूषयति । ६ पुरुषैः । ७ वर्णानां शब्दस्य वा । ८ वर्णानां शब्दस्य वाभिव्यक्त्यसम्भवश्च । ९ प्रतिवर्णताल्वोष्ठपुटादिसम्बन्धिवायोर्भिन्नत्वात् । १० यदा वायुर्वर्तते तदा तदभिव्यक्तिर्भवत्यन्यथा न, ताल्वोष्ठपुटादिव्यापारे सत्येव वायूनामुत्पत्तिरिति भावः । ११ तदभिव्यंजकवायूनाम् । १२ प्रत्यक्षादिप्रमाणप्रसिद्धत्वात् । १३ पुरुषैः । १४ स्पर्शनेन्द्रियजन्यप्रत्यक्षेण । १५ पुरुषेण । १६ वस्त्र । १७ वर्णाभिव्यंजकवायुं विना शब्दश्रवणं न घटते । १८ तदभिव्यंजकवायवः । १९ भो नैयायिक त्वयाभिव्यक्तिपक्षे वर्णशब्दानां नित्यत्वे सर्वदा सर्वेषां श्रवणं भवत्विति दूषणमुद्भावितं तदुत्पत्तिपक्षेऽपि मया तथैवोद्भाव्यते । २० अनि-

वाय्वाकाशसंयोगादसमवायिकारणादाकाशाच्च समवायि-कारणाद्दिग्देशाद्यविभागेनोत्पद्यमानोऽयं शब्दो न सर्वैरनुभूयते । अपि तु नियतदिग्देशस्थैरेव तथाऽभिव्यज्यमानोऽपि । नाप्यभिव्यक्तिसांकर्यमुभयत्रापि समानत्वादेव । तथाहि— अन्यैस्ताल्वादिसंयोगैर्यथान्यो वर्णो न क्रियते तथा ध्वन्यन्तर-सारिभिस्ताल्वादिभिरन्यो ध्वनिर्नारभ्यते इत्युत्पत्त्यभिव्य-क्त्योः समानत्वे नैकत्रैव पर्यनुयोगावसर इति सर्वं सुस्थम् । माभूद्वर्णानां तदात्मकस्य वा शब्दस्य कौटस्थ्यनित्यत्वम् । तथाप्यनादिपरम्परायातत्वेन वेदस्य नित्यत्वात्प्रागुक्तलक्षण-स्याव्यापकत्वम् । न च प्रवाहनित्यत्वमप्रमाणकमेवास्येति

त्यपक्षेऽपि । १ सहकारिकारणात् । २ उपादानकारणात् । ३ यथोत्पद्यमानः शब्दो न सर्वैरनुभूयते तथाभिव्यज्यमानोऽपि न सर्वैरपि तु नियतदिग्देशस्थैरेव । ४ यदि नित्यशब्दोऽभि-व्यक्त्या व्यक्तो भवति तर्हि युगपत्सर्वे शब्दाः व्यक्ता भवन्त्विति दोषा-पादनमुत्पत्तिपक्षेऽपि समानमिति भावः । ५ करणान्तरसारिभिस्ताल्वोष्ठ-पुटादिसम्बन्धिवायुभिरुच्चार्यमाण एव वर्ण आरभ्यते नान्यो ध्वनिरिति । ६ अन्यस्मिन् ज्ञानसम्बन्धे न चान्यो वाचको भवेत् । गोशब्दे ज्ञानसम्बन्धे नाश्वशब्दो हि वाचकः ।१। ७ यत्रोभयः समो दोषः परिहारोऽपि तादृशः । नैकः पर्यनुयोक्तव्यस्तादृगर्थनिरूपणे ।२। ८ प्रश्नावसरः । ९ अर्धाङ्गीकारेण मीमांसको ब्रूते । १० एकस्वभावनित्यत्वम् । ११ अपौरुषेयत्वात् । १२ परम्परायातत्वम् । १३ आगमस्य ।

युक्तं वक्तुम् । अधुना[1] तत्कर्तुरनुपलम्भादतीतानागतयोरपि कालयोस्तदनुमापकस्य[3] लिङ्गस्याभावात्तदभावोऽपि[4] सर्वदाप्यतीन्द्रियसाध्यसाधनसम्बन्धस्येन्द्रियग्राह्यत्वायोगात्[5] । प्रत्यक्षप्रतिपन्नमेव हि लिङ्गम् । अनुमानं हि गृहीतसम्बन्धस्यैकदेशसन्दर्शनादसन्निकृष्टेऽर्थे[6][7] बुद्धिरित्यभिधानात् । नाप्यर्थापत्तेस्तत्सिद्धिः,[8] अनन्यथाभूतस्यार्थस्याभावादुपमानोपमेययोरप्रत्यक्षत्वाच्चनाप्युपमानं[9] साधकम् । केवलमभावप्रमाणमेवावशिष्यते[10] तच्च[11] तदभावसाधकमिति[12] । न च पुरुषसद्भाववदस्यापि[13] दुःसाध्यत्वात्संशयापत्तिस्तदभावसाधकप्रमाणानां सुलभत्वात्[14] । अधुना[15] हि तदभावः[16] प्रत्यक्षमेवातीतानागतयोः कालयोरनुमानं तदभावसाधकमिति । तथा च—"अतीतानागतौ कालौ वेदकारविवर्जितौ । कालशब्दाभिधेयत्वादिदानीन्तनकालवत्[17] ॥ १ ॥ वेदस्याध्ययनं सर्वं तदध्ययनपूर्व-[18]

---

१ वर्तमानकाले । २ वेदकर्तुः । ३ कर्तुरनुमापकस्य । ४ लिङ्गभावः । ५ अतीतानागतवेदकर्ता साध्यः स त्वतीन्द्रियस्तस्य साधनमप्यतीन्द्रियमिति । ६ पुरुषस्य । ७ परोक्षे । ८ कर्तुः । ९ उपमानमीश्वरस्तच्छब्द उपमेयः । १० प्रमाणपञ्चकं यत्र वस्तुरूपेण जायते । वस्तुसत्तावबोधार्थं तत्राभावप्रमाणता ॥२॥ ११ अभावप्रमाणम् । १२ कर्तुरभाव । १३ कर्तुरभावस्यापि । १४ यथा वेदस्य कर्तुः पुरुषस्य साधकमेकमपि प्रमाणं नास्ति तथा तदभावसाधकानि प्रमाणानि न सन्तीति चेन्न तदभावसाधकानां बहूनां प्रमाणानां सद्भावादेतदेव विवृणोति । १५ वर्तमानकाले । १६ वेदकर्तुरभावः । १७ वर्तमानकालवत् । १८ वेदाध्य-

कम्। वेदाध्ययनवाच्यत्वादधुनाध्ययनं यथेति ॥ २ ॥" तथा अपौरुषेयो वेदः अनवच्छिन्नसंप्रदायत्वे[1] सत्यस्मर्यमाणकर्तृकत्वादाकाशवत्। अर्थापत्तिरपि प्रामाण्यलक्षणस्यार्थस्यानन्यथाभूतस्य[2] दर्शनात्तदभावे[3] निश्चीयते। धर्माद्यतीन्द्रियार्थविषयस्य वेदस्यार्वाग्दर्शिभिः[4] कर्तुमशक्यत्वात्। अतीन्द्रियार्थदर्शिनश्चाभावात्प्रामाण्यमपौरुषेयतामेव कल्पयतीति[6]। अत्र प्रतिविधीयते[7]—यत्तावदुक्तं वर्णानां व्यापित्वे नित्यत्वे[8] च प्रत्यभिज्ञा प्रमाणमिति, तदसत्। प्रत्यभिज्ञायास्तत्र[9] प्रमाणत्वायोगात्। देशान्तरेऽपि तस्यैव[10] वर्णस्य सत्त्वे खण्डशः प्रतिपत्तिः स्यात्[11]। नहि सर्वत्र व्याप्त्या वर्तमानस्यैकस्मिन्प्रदेशे[12] सामस्त्येन ग्रहणमुपपत्तियुक्तम्[13], अव्यापकत्वप्रसङ्गात्[14]। घटादेरपि[15] व्यापकत्वप्रसङ्गः[16]। शक्यं हि वक्तुमेवं, घटः सर्वगतश्चक्षुरादिसन्निधा-

---

यनपूर्वकम्। १ अस्मर्यमाणकर्तृत्वादित्युक्ते जीर्णकूपप्रासादादिभिर्व्यभिचार स्ततो व्यभिचारनिवृत्त्यर्थमनवच्छिन्नसंप्रदायत्वे सतीत्युक्तम्। २ अपौरुषेयो वेदः प्रामाण्यान्यथानुपपत्तेरित्यर्थापत्त्यापि वेदकर्तुरभावो निश्चीयते। ३ वेदकर्तुरभावे। ४ किंचिज्ज्ञैः पुरुषैः। ५ सर्वज्ञस्य। ६ साधयति। ७ उत्तरं दीयते। ८ वर्णानां व्यापित्वे नित्यत्वे च। ९ यदि प्रतिभिज्ञायास्तत्र व्यापित्वे नित्यत्वे च प्रमाणत्वं तर्हि। १० पूर्वं व्यापित्वपक्षमवलम्ब्य दूषयति। ११ नास्ति च खण्डशः प्रतिपत्तिः। १२ वर्णस्य। १३ युक्तियुक्तम्। १४ अन्यथा। १५ वर्णस्य व्यापकत्वेऽप्येकस्मिन्प्रदेशे सर्वात्मना वर्तते चेत्। १६ यथा शब्दस्य एकस्मिन्प्रदेशे

नादनेकत्र देशे प्रतीयत इति । ननु[1] घटोत्पादकस्य मृत्पिण्डादे[2]रनेकस्योपलम्भादनेकत्वमेव[3] । तथा महदणुपरिमाणसम्भवाच्चेति । तच्च[4] वर्णेष्वपि[5] समानम् । तत्रापि प्रतिनियतताल्वादिकारणकलापस्य तीव्रादि[6]धर्मभेदस्य च सम्भवाविरोधात् । ताल्वादीनां व्यञ्जकत्वमत्रैव निषेत्स्यत इत्यास्तां तावदेतत् । अथ[7] व्यापित्वेऽपि सर्वत्र सर्वात्मना[8] वृत्तिमत्त्वान्न दोषोऽयमिति चेन्न । तथा[10] सति सर्वथै[11]कत्वविरोधात् । नहि देशभेदेन युगपत्सर्वात्मना प्रतीयमा[12]नस्यैकत्वमुपपन्नं प्रमाण[13]विरोधात् । तथा च प्रयोगः—प्रत्येकं गकारादिवर्णोऽनेक एव युगप[14]द्भिन्नदेशतया तथैव सर्वात्मनोपलभ्यमानत्वात् घटादिवत् ।

श्रूयमाणेऽपि व्यापकत्वं तथा घटस्यापि स्यादिति समः समाधिः । १ मीमांसकः प्राह, घटोदाहरणं न घटते यतो घटोत्पादककारणभेदेन घटस्यानेकत्वं वर्णस्यैकत्वमिति । २ चक्रचीवरकुलालादेः । ३ यत्त्वनेकं तदव्यापकमिति । ४ कारणभेदत्वं । ५ अकारादिवर्णेष्वपि । ६ उदात्तानुदात्तस्वरितह्रस्वदीर्घप्लुतरूप । ७ मीमांसकः प्राह । ८ साकल्येन । ९ खण्डशः प्रतिपत्तिलक्षण । किन्तु नैयायिकाभिमतसामान्ये खण्डशः प्रतिपत्तिलक्षणमिदं दूषणं भवतु तन्मते तस्यैकत्वे सत्यनेकसमवायित्वात् । १० व्यापित्वेऽपि सर्वत्र सर्वात्मना वृत्तिमत्वे । ११ यदि व्यापकं सदेकस्मिन्प्रदेशे सर्वात्मना वर्तते पुनरन्यत्र प्रदेशेऽपि सर्वात्मना वर्तते तर्ह्यनेकत्वमागतमिति । १२ वर्णस्य । १३ एक एव घटः प्रत्यक्षेणैकस्मिन्देश उपलभ्यमाने नहि स एव तदैवान्यत्रोपलभ्यते तथा वर्णोऽपीति प्रत्यक्षादिप्रमाणविरोधः । १४ एकस्यैव घटस्य सर्वत्रानुक्रमेण प्रवृत्तिः सर्वात्मनास्ति तथापि युगपत्प्रवृत्तिर्ना-

न सामान्येन[1] व्यभिचारः, तस्यापि[2] सदृशपरिणामात्मकस्या-नेकत्वात्[3] । नापि पर्वताद्यनेकप्रदेशस्थतया युगपदनेकदेशस्थितपुरुषपरिदृश्यमानेन चन्द्रार्कादिना व्यभिचारः, तस्याति-[4]दविष्ठतयैकदेशस्थितस्यापि[5] भ्रान्तिवशादनेकदेशस्थित्वेन प्र-तीतेः । न चाभ्रान्तस्य[6] भ्रान्तेन व्यभिचरकल्पना युक्तेति । नापि जलपात्रप्रतिबिम्बेन,[7] तस्यापि[8] चन्द्रार्कादिसन्निधिमपेक्ष्य तथा[9]परिणममानस्यानेकत्वात् तस्मादनेकप्रदेशे युगपत्सर्वा-त्मनोपलभ्यमानविषयस्यैकस्य[10]ासम्भाव्यमानत्वा[11]त्तत्र प्रवर्त्तमानं प्रत्यभिज्ञानं न प्रमाणमिति स्थितम् । तथा नित्यत्वमपि न प्रत्यभिज्ञानेन निश्चीयत इति । नित्यत्वं हि एकस्या[12]नेकक्षणव्या-पित्वं । तच्चान्तराले[13] सत्तानुपलम्भेन[14] न शक्यते निश्चेतुम् । न च प्रत्यभिज्ञानबलेनैवान्तराले सत्तासम्भवः[15] । तस्य[16] सादृश्यादपि[17]

स्तीति व्यभिचारनिवृत्त्यर्थं युगपद्ग्रहणमिति । १ सामान्यस्यापि प्रति-व्यक्तिभेदात् । २ सामान्यस्यापि । ३ खण्डमुण्डादिषु सदृशपरिणाम-लक्षणं सामान्यं प्रतिव्यक्ति भिन्नमेव । ४ चन्द्रार्कादेः । ५ अतिदूर-तया । ६ गकारादिवर्णस्य युगपद्भिन्नदेशत्वेन सर्वात्मनोपलभ्यमानत्वम-भ्रान्तं सूर्यस्य तु दविष्ठतया नानात्वेनोपलभ्यमानत्वं भ्रान्तमतो न तस्य तेन व्यभिचार इति । ७ चन्द्राद्याकारेण । ८ प्रतिबिम्बस्यापि । ९ प्रतिबि-म्बरूपेण । १० शब्दादेर्वस्तुनः । ११ व्यापित्वे । १२ गकारादेः । १३ उच्चार्यमाणगकारादीनामन्तराले । १४ गकारादीनां सद्भावानुपलम्भेन । १५ सत्तोपलम्भस्य । १६ प्रत्यभिज्ञानस्य । १७ गोसदृशोऽयं गवय

सम्भवाविरोधात्। न[1] च घटादावप्येवं प्रसङ्गः। तस्यो[2]त्पत्तावपरापरमृत्पिण्डान्तरलक्षणस्य कारणस्यासम्भाव्यमानत्वेनान्तराले[3] सत्तायाः साधयितुं शक्यत्वात्। अत्र[4] तु कारणानामपूर्वाणां व्यापारे सम्भावनाऽतो[5] नान्तराले सत्तासम्भव इति। यच्चान्यदुक्तं संकेतान्यथानुपपत्तेः शब्दस्य नित्यत्वमिति, इदमप्यनात्मज्ञभाषितमेव। अनित्ये[6]ऽपि योजयितुं शक्यत्वात्। तथा[7] हि गृहीतसंकेतस्य दण्डस्य प्रध्वन्से सत्यगृहीतसंकेत इदानीमन्य एव दण्डः समुपलभ्यत इति दण्डीति न स्यात्[8]। तथा धूमस्यापि गृहीतव्याप्तिकस्य नाशे अन्यधूमदर्शनाद्वह्निविज्ञानाभावश्च[9]। अथ[10] सादृश्यात्तथाप्रतीतेर्न[11] दोष इति चेदत्रा[12]पि सादृश्यवशादर्थप्रत्यये को दोषः? येन नित्यत्वेऽत्र[13] दुरभिनिवेश आश्रीयते। तथा[14]कल्पनायामन्तराले स[15]त्त्वम-

---

इत्यादिवत्सादृश्येऽपि सम्भवति प्रत्यभिज्ञानं यतः। १ एकं दृष्ट्वान्तराले तमेव पश्यतो जनस्य सादृश्यप्रत्यभिज्ञानबलादेवं सम्भवे तस्यापि नान्तराले सत्तासम्भव इति शंकायामाह। २ घटस्य। ३ प्रभातकाले यो घटो दृष्टस्तमेव मध्यान्हकाले पश्यति जन इत्यन्तराले घटसत्तासम्भवः। ४ शब्दे। ५ प्रभातकाले शब्दः श्रुतः पुनो मध्यान्हकाले कारणान्तरेणोत्पद्यमानोऽन्य एव शब्दः श्रूयत इति न घटवदन्तराले शब्दसत्ताप्रसगः। ६ दण्डादावपि। ७ एतदेव विवृणोति। ८ नास्ति च दण्डीति व्यपदेशः। ९ अस्ति च वह्निज्ञानमिति। १० मीमांसकः प्राह। ११ पूर्वदण्डदृष्टेऽपि तत्सदृशान्यदण्डनिमित्ताद्दण्डीति प्रतीतिर्भवति। १२ शब्देऽपि। १३ शब्दे। १४ सादृश्यवशादर्थकल्पनायाम्। १५ वर्ण

व्यदृष्टं[1] न कल्पितं[2] स्यादिति। यच्चान्यदभिहितं व्यञ्जकानां प्रतिनियतत्वान्न[3] युगपत् श्रुतिरिति तदप्यशिक्षितलक्षितम्। समानेन्द्रियग्राह्येषु[4] समानधर्मसु[5] समानदेशेषु[6] विषयिविषयेषु[7][8] नियमायोगात्[9]। तथाहि—श्रोत्रं समानदेशसमानेन्द्रियग्राह्यसमानधर्मापन्नानामर्थानां[10] ग्रहणाय प्रतिनियत[11]संस्कारकसंस्कार्यं न भवति, इन्द्रियत्वात् चक्षुर्वत्। शब्दा[12] वा प्रतिनियतसंस्कार[13]कसंस्कार्या[14] न भवन्ति, समानदेशसमानेन्द्रियग्राह्यसमानधर्मापन्नत्वे सति युगपदिन्द्रियसम्बद्धत्वात् घटादिवत्। उत्पत्तिपक्षेऽप्ययं दोषः समान[15] इति न वाच्यं मृत्पिण्डदीपदृष्टान्ताभ्यां[16] कारकव्यञ्जकपक्षयोर्विशेष[17]सिद्धेरित्यलमतिजल्पिते-

---

सत्वम्। १ इन्द्रियागोचरम्। २ येनापि प्रकारेण सत्ता कल्पिता स्यान्न तु स्वभावतो वर्तते तेनापि न कल्पितं स्यात्। ३ प्रतिवर्णनिश्चितत्वात्। ४ श्रोत्रेन्द्रिय। ५ उदात्तादिसमानधर्मयुक्तेषु। ६ आकाशलक्षणैकप्रदेशाभिव्यक्तेषु। ७ विषयीन्द्रियं। ८ विषयाः शब्दाः। ९ प्रतिनियतकारणादभिव्यक्तेर्नियमायोगात्। १० गकारादीनां शब्दानाम्। ११ प्रथक् प्रथक् वायुलक्षण। १२ पूर्वानुमाने श्रोत्रमिन्द्रियं पक्षोऽत्र तु शब्दाः पक्षः। १३ वर्णं वर्णं प्रति नियतो निश्चितोऽभिव्यंजको वायुः स एव संस्कारस्तेन। १४ एकेनैव संस्कारेण संस्कृतं सदर्थानां ग्राहकं भवतीति नियमः। १५ यथा 'युगपत्सर्ववर्णश्रवणमापादितं तथा युगपदुत्पत्तिः' स्यादिति दूषणं कारकव्यंजकपक्षयोः समानं न भवति। १६ एको हि मृत्पिण्डः कर्तुरिच्छावशेन घटाद्यन्यतममेव कार्यमारभते व्यंजकस्तु प्रदीपः घटप्रकाशापेक्षया प्रेरितः स्वसयुक्तं सर्वघटादिकं प्रकटयत्येव। १७ मृत्पि-

न। यच्चान्यत्प्रवाहनित्यत्वेन वेदस्यापौरुषेयत्वमिति[1] तत्र[2] किं शब्दमात्रस्यानादिनित्यत्वमुत विशिष्टानामिति[3] ? आद्यपक्षे य एव शब्दा लौकिकास्त एव वैदिका इत्यल्पमिदमभिधीयते वेद एवापौरुषेय इति। किन्तु सर्वेषामपि शास्त्राणामपौरुषेयतेति। अथ[4] विशिष्टानुपूर्विका[5] एव शब्दा[6] अनादित्वेनाभिधीयन्ते तेषामवगतार्थानामनवगतार्थानां वा अनादिता स्यात् ? यदि तावदुत्तरः[7] पक्षस्तदाऽज्ञानलक्षणमप्रामाण्यमनुषज्यते। अथ आद्यः पक्ष आश्रीयते तद्व्याख्यातारः किञ्चिज्ज्ञा भवेयुः सर्वज्ञा वा ? प्रथम पक्षे दुरधिगमसम्बन्धानामन्यथा[9][10]प्यर्थस्य कल्पयितुं शक्यत्वात् मिथ्यात्वलक्षणमप्रामाण्यं स्यात्। तदुक्तम्—अयमर्थो नायमर्थ इति शब्दा वदन्ति न। कल्प्योऽयमर्थः पुरुषैस्ते च रागादिविप्लुताः[11] ॥ १ ॥ किञ्च किञ्चिज्ज्ञव्याख्यातार्थाविशेषादग्निहोत्रं[12] जुहुयात् स्वर्गकाम इत्यस्य खादेच्छ्वमांसमि-

---

ण्डस्तु युगपत घटाद्यन्यतमवस्तुकारकः प्रदीपस्तु विद्यमानसर्वस्याभिव्यजक इत्युत्पत्त्यभिव्यंजकयोः कुतः समानत्वं किन्तु विशेष एव । १ अभिहितं मीमांसकेन। २ वेदस्यापौरुषेयत्वे। ३ विशेषशब्दानाम्। ४ द्वितीयपक्षः। ५ विशिष्टानुक्रमायाताः। ६ वैदिका इति भावः। ७ सूचीकराहन्यायेनोत्तरपक्षस्य प्रथमतः प्रतिपादनम्। ८ विशिष्टानुपूर्विका ये शब्दास्तेषामवगतानामेवानादिता स्यात्। ९ वेदवाक्यानाम्। १० विपरीतत्वेनापि। ११ रागद्वेषमोहैः। १२ अग्निं हंतीति अग्निहः श्वा तस्योत्रं मासं जुहुयात्खादेदथवाऽगति गच्छतीत्याग्निः श्वा हूयतेऽद्यते यत्तत्

स्यपि वाक्यार्थः किं न स्यात् संशयलक्षणमप्रामाण्यं वा।
अथ[1] सर्वविद्भिर्विदितार्थ[2] एव वेदोऽनादिपरम्पराऽयात इति चेत्।
हन्त[3] धर्मे[4] चोदनैव[5] प्रमाणमिति हतमेतत्। अतीन्द्रियार्थप्रत्यक्षी-
करणसमर्थस्य[6] पुरुषस्य सद्भावे च तद्वचनस्यापि चोदनावत्तद्-
वबोधकत्वेन[7] प्रामाण्याद्वेदस्य[8] पुरुषाभावसिद्धेस्तत्प्रतिबन्धकं[9]
स्यात्। अथ तद्व्याख्यातॄणां किञ्चिज्ज्ञत्वेऽपि यथार्थव्याख्यान-
परम्परायां अनवच्छिन्नसन्तानत्वेन सत्यार्थ एव वेदोऽवसीयत
इति चेन्न किञ्चिज्ज्ञानामतीन्द्रियार्थेषु निःसंशयव्याख्यानायोगा-
दन्धेनाकृष्यमाणस्यान्धस्यानिष्टदेशपरिहारेणाभिमतपथप्रापणा-
नुपपत्तेः। किञ्च[10] अनादिव्याख्यानपरम्परागतत्वेऽपि वेदार्थस्य
गृहीतविस्मृतसम्बन्धवचनाकौशलदुष्टाभिप्रायतया[11] व्याख्यान-
स्यान्यथैव[12] करणादविसम्वादायोगादप्रामाण्यमेव[13] स्यात्। दृ-
श्यन्ते ह्यधुनातना[14] अपि ज्योतिःशास्त्रादिषु रहस्यं यथार्थमवे-
यन्तोऽपि[15] दुरभिसन्धेरन्यथा[16] व्याचक्षाणाः। केचिज्जानन्तोऽपि

होत्रं मांसमग्निहोत्रमित्यग्निहोत्रं श्वमांसं तज्जुहुयात्खादेत्स्वर्गकामः पुमान् द्विजः। १ द्वितीयःपक्षः। २ सर्वज्ञज्ञातार्थ एव। ३ खेदे। ४ यज्ञादौ। ५ वेदवाक्यमेव। ६ अतीन्द्रियार्थप्रत्यक्षीकरणसमर्थ-पुरुषवचनस्यापि ७ अतीन्द्रियार्थधर्मावबोधकत्वेन। ८ ततश्च। ९ प्रमाणभूतसर्वज्ञवचनम्। १० दूषणान्तरं दीयते। ११ गृहीतविस्मृत-सम्बन्धतया वचनाकौशलतया दुष्टाभिप्रायतया। १२ विपरीतत्वेनैव। १३ अविप्रतिपत्त्ययोगात्। १४ एतत्कालसम्बन्धिनः। १५ जानन्तोऽपि। १६ दुष्टा-

वचनाकौशलादन्यथोपदिशन्तः । केचिद्विस्मृतसम्बन्धा अयाथातथ्यमभिदधाना इति । कथम[1]न्यथा भाव[2]ना[3]विधिनियोग[4]वा[5]क्यार्थविप्रति[6]पत्तिर्वेदे[7] स्यान्मनुयाज्ञवल्क्यादीनां श्रुत्य[8]र्थानुसारिस्मृतिनिरूपणायां वा ? तस्मादनादिप्रवाहपतितत्वेऽपि वेदस्यायथार्थत्वमेव स्यादिति स्थितम् । यच्चोक्तमतीतानागतावित्यादि तदपि स्व[9]मतनिर्मूलनहेतुत्वेन विपरीतसाधनात्तद[10]भासमेवेति । तथाहि—"अतीतानागतौ कालौ वेदार्थज्ञविवर्जितौ । कालशब्दाभिधेयत्वादधुनातनकालवदिति ॥१॥" किञ्च कालशब्दाभिधेयत्वमतीतानागतयोःकालयोर्ग्रहणे सति भवति । तद्ग्रहणं[11]

भिप्रायत्वात् । १ अन्यथा प्रतिपादन नास्ति चेत्कथं विवादः परस्परं । २ भवितुर्भवनानुकूलो भावकव्यापारविशेषो भावना । तेन (वाक्येन) भूतेषु (यागक्रियासु) कर्तृत्वं प्रतिपन्नस्य वस्तुनः (द्रष्टव्यादेः) । प्रयोजकक्रियामाहुर्भावनां भावनाविदः १ । सा द्विविधा शब्दभावनार्थभावना च—शब्दात्मभावनामाहुरन्यामेव लिङादयः । इयं त्वन्यैव सर्वार्था सर्वाख्यातेषु विद्यते । २ । ३ परमपुरुष एव विधिः । परमपुरुषव्यतिरिक्तमन्यद्वस्तु नास्ति विधिवादिनो मते । ४ नियुक्तोऽहमनेनाग्निष्टोमादिवाक्येनेति निरवशेषो योगो हि नियोगः । ५ पूर्वाचार्यो हि धात्वर्थं वेदे भट्टस्तु भावनाम् । प्राभाकरो नियोगं तु शंकरो विधिमब्रवीत् । ६ तत्किमर्थं भाट्टानां भावनैव वाक्यार्थः प्राभाकराणां नियोग एव वाक्यार्थो ब्रह्माद्वैतवादिनां विधिरेव वाक्यार्थः । ७ वेदार्थे । ८ विप्रतिपत्तिः कथं स्यात् । ९ मीमांसकमत । १० अनुमानाभासमिति । ११ अतीतानागतकालग्रहणम् ।

च नाध्यक्षत[1]स्तयो[2]रतीन्द्रियत्वात् । अनुमानतस्त[3]द्ग्रहणेऽपि न [4]साध्येन सम्बन्धस्त[5]योर्निश्चेतुं पार्यते । प्रत्यक्षगृहीतस्यैव [6]तत्सम्बन्धाभ्युपगमात् । न च कालाख्यं द्रव्यं मीमांसक[7]स्यास्ति । प्रसङ्गसाधनाददोष इति चेन्न । पर[8]म्प्रति साध्य[9]सा[10]धनयोर्व्याप्यव्यापकभावाभावादिदा[11]नीमपि देशान्तरे वेदकारस्याष्ट[12]कादेः सौगतादिभिरभ्यु[13]पगमात् । यदप्यपरं वेदाध्ययनमित्यादि तदपि विप[14]क्षेऽपि समानम्—"भारताध्ययनं सर्वं गुर्व-

---

१ भवतीति शेषः । २ अतीतानागतकालयोः । ३ अथ अनुमानतस्तयोर्ग्रहणं भवति, तथाहि—*अतीतानागतकालौ स्तः कालत्वाद्वर्तमानकालवत्* । ४ कालशब्दाभिधेयमस्त्यतीतानागतकालत्वाद्वर्तमानकालवादित्यनुमाने साध्येन कालशब्दाभिधेयेनातीतानागतकालत्वस्य सम्बन्धो निश्चेतुं न शक्यते । ५ अतीतानागतकालयोः । ६ साध्यसाधनसम्बन्धस्य । ७ *मीमांसकमते कालद्रव्यस्यास्वीकारादतीतानागतकालौ वेदकारविवर्जितौ* कालशब्दाभिधेयत्वादित्यनुमाने कालशब्दाभिधेयस्य स्वरूपेणासत्वात्स्वरूपासिद्धोऽयं हेतुरिति भावः । ८ साध्यसाधनयोः व्याप्यव्यापकभावसिद्धौ *व्याप्याभ्युपगमो व्यापकाभ्युपनांतरीयको यत्र कथ्यते तत्प्रसङ्गसाधनमिति* । परेष्ट्यानिष्टापादनं प्रसंगसाधनमिति । ९ वेदस्य कर्तास्तीति वादिनं प्रति । १० वेदकारविवर्जितत्वकालशब्दाभिधेयत्वयोः । ११ इदानींतनकालबलेन साध्यसाधनयोर्व्याप्यव्यापकभावो भवत्येवेत्यत आह । १२ कारणवादिनस्तत्कर्तारं चतुराननं जैनाः कालासुरं बौद्धाश्चाष्टकं तत्कर्तारं स्मरंत्येव । १३ इदानींतनकालवदिति दृष्टान्तः प्रतिवाद्यसिद्धः सौगतैरधुनापि तत्कर्तुः स्वीकारादिति भावः । १४ पौरुषेयेऽपि ।

ध्ययनपूर्वकं । तदध्ययनवाच्यत्वादधुनाध्ययनं यथेति ॥ २ ॥”
यच्चान्यदुक्तम्—अनवच्छिन्नसम्प्रदायत्वे सत्यस्मर्यमाणकर्तृ-
त्वादिति । तत्र[1] जीर्णकूपा[2]रामादिव्यभिचारनिवृत्त्यर्थमनवच्छि-
न्नसम्प्रदायत्वविशेषणेपि विशेष्यस्यास्मर्यमाणकर्तृकत्वस्य वि-
चार्यमाणस्यायोगादसाधनत्वम् । कर्तुरस्मरणं हि वादिनः
प्रतिवादिनः सर्वस्य वा ? वादिनश्चेदनुपलब्धेरभावाद्वा[3] ?
आद्ये पक्षे पिटकत्रये[4]ऽपि स्या[5]दनुपलब्धेरविशेषात् । तत्र[6] परैः[7]
तत्कर्तुरङ्गीकारान्नो[8] चेत्[9] । अत एवात्रा[10]पि न त[11]दस्तु । अभावा-
दिति चेदस्मा[12]त्तदवसिद्धा[13]वितरेतराऽऽश्रयत्वम् । सिद्धे हि त[14]द-
भावे तन्नि[15]बन्धनं त[16]दस्मरणमस्मा[17]च्च तदभा[18]व इति । प्रा-
माण्यान्यथा[19]नुपपत्तेस्त[20]दभावान्नेतरेतराश्रयत्वमिति चेन्न ।

---

१ हेतौ । २ यतः जीर्णकूपादौ विच्छिन्नसंप्रदायत्वं वर्तते । ३ वाशब्दः प्रत्येकमभिसम्बन्ध्यते तेनायमर्थः सम्पादितो भवति यदभावाद्वा वादिनः कर्तुरस्मरणमनुपलब्धेर्वा कर्तुरस्मरणमिति । ४ ज्ञानपिटकवन्दनापिटकचैत्य-पिटकानां त्रयमिति पिटकत्रयम् । बौद्धमतविशेषग्रन्थाः । ५ अपौरुषेयत्वम् । ६ पिटकत्रये । ७ बौद्धैः । ८ पिटकत्रयस्य कर्तास्ति परन्तु स्मरणं न भवतीति बौद्धैः स्वीकारात् । ९ पिटकत्रयेऽपौरुषेयत्वं नो चेत् । १० वेदेऽपि । ११ अनुपलब्ध्यविशेषात्पिटकत्रयवद्वेदेप्यपौरुषेयत्वं मास्तु । १२ अभावात् । १३ कर्तुरभावसिद्धौ । १४ वेदकर्तुरभावे । १५ अभावकारण-कम् । १६ वेदकर्तुरस्मरणम् । १७ वेदकर्तुरस्मरणाच्च । १८ वेदकर्तुरभाव इति । १९ कर्त्रभावसिद्धे हि वेदस्य प्रामाण्यसिद्धिरिति । २० वेदकर्तुरभा-

प्रामाण्येनाप्रामाण्यकारणस्यैव पुरुषविशेषस्य निराकरणात् पुरुषमात्रस्यानिराकृतेः। अथातीन्द्रियार्थदर्शिनोऽभावादन्यस्य च प्रामाण्यकारणत्वानुपपत्तेः सिद्ध एव सर्वथा पुरुषाभाव इति चेत् कुतः सर्वज्ञाभावो विभावितः ? प्रामाण्यान्यथानुपपत्तेरिति चेदितरेतराश्रयत्वम् । कर्तुरस्मरणादिति चेच्चक्रकप्रसङ्गः । अभावप्रमाणादिति चेन्न, तत्साधकस्यानुमानस्य प्राक्प्रतिपादितत्वादभावप्रमाणोत्थानायोगात् प्रमाणपञ्चकाभावेऽभावप्रमाणप्रवृत्तेः—'प्रमाणपञ्चकं यत्र वस्तुरूपे न जायते । वस्त्वसत्तावबोधार्थं तत्राभावप्रमाणतेति' परैरभिधानात् । ततो न वादिनः कर्तुरस्मरणमुपपन्नम् । नापि प्रतिवादिनोऽसिद्धेः । तत्र हि प्रतिवादी स्मरत्येव कर्तारमिति । नापि सर्वस्य, वादिनो

वात् अपौरुषेयत्वम् । १ प्रामाण्यान्यथानुपपत्तेरित्यनेनाप्रामाणिकनिरासः कृतो भवति न तु सामान्यपुरुषनिराकरणम् । २ सर्वज्ञस्य । ३ असर्वज्ञस्य । ४ हेतोः । ५ सिद्धे सर्वज्ञाभावे प्रामाण्यान्यथानुपपत्तिस्तत्सिद्धौ च सर्वज्ञाभाव इति । ६ त्रितयादिसिद्धावव्यवधानेन त्रितयाद्यपेक्षा चक्रकत्वमथवा पूर्वस्य पूर्वापेक्षितमध्यमापेक्षितोत्तरापेक्षितत्वमथवा स्वापेक्षणीयापेक्षितसापेक्षत्वनिबन्धनप्रसङ्गत्वमिति । वेदकर्तुरस्मरणात्सर्वज्ञाभावः सिध्येत्सर्वज्ञाभावसिद्धितो वेदप्रामाण्यान्यथानुपपत्तिः सिध्येत्तस्यां च सिद्धायां कर्तुरभावः सिध्येदिति पुनः पुनः प्रसङ्गान्नैकस्यापि सिद्धिरिति चक्रकप्रसंगः । ७ सर्वज्ञाभावः । ८ सर्वज्ञसाधकस्य । ९ सावरणत्वे करणजन्यत्वे चेत्यादिस्थले सर्वज्ञसद्भावज्ञापकमनुमानं प्रयुक्तं तत्सम्भवादभावस्याप्रवृत्तिरिति । १० केवलभूतलसत्तावबोधार्थम् । ११ मीमांसकैः । १२ वेदे ।

वेदकर्तुरस्मरणेऽपि प्रतिवादिनः स्मरणात् । ननु[1] प्रतिवादिना वेदेऽष्टकादयो बहवः कर्त्तारः स्मर्यन्तेऽतस्तत्[2]स्मरणस्य विवादविषयस्याप्रामाण्याद्भवेदेव सर्वस्य कर्तुरस्मरणमिति चेन्न । कर्तृविशेषविषय एवासौ विवादो न कर्तृसामान्ये । अतः सर्वस्य कर्तुरस्मरणमप्यसिद्धम् । सर्वात्मज्ञान[3]विज्ञानरहितो वा[4] कथं सर्वस्य कर्तुरस्मरणमवैति । तस्मादपौरुषेयत्वस्य वेदे व्यवस्थापयितुमशक्यत्वान्न तल्लक्षण[5]स्याव्यापकत्वमसम्भवितत्वं वा सम्भवति । पौरुषेयत्वे पुनः प्रमाणानि बहूनि सन्त्येव । सजन्ममरण[6]र्षिगोत्रचरणादि[7]नामश्रुते[8]रनेकपद[9]संहितप्रतिनियमसंदर्शनात् । फलार्थि[10]पुरुषप्रवृत्ति[11]निवृतिहेत्वात्मनां श्रुतेश्च मनुसूत्रवत् पुरुषकर्तृकैव श्रुतिः[12] ॥ १ ॥ इति वचनात् । अपौरुषेयत्वेऽपि वा न प्रामाण्यं वेदस्योपपद्यते तद्धेतूनां गुणानामभावात् । ननु[13] न गुणकृतमेव[14] प्रामाण्यं किन्तु दोषाभावप्रकारेणापि, स[15] च दोषाश्रयपुरुषाभावेऽपि निश्चीयते न गुणसद्भाव एवेति ।

---

१ मीमांसकः प्राह । २ कर्तृस्मरणस्य सर्वज्ञवादिनां नैयायिकसौगतजैनानां परस्परविवादादप्रामण्यं तस्मात । ३ सर्वात्मप्राणिनां ज्ञान तस्य विज्ञानं तेन रहितः । ४ मीमांसकः । ५ आगमलक्षणस्य । ६ जन्मसहितमरण । ७ स्वर्गादि । ८ श्रवणात् । ९ छन्दोरूपेणवाक्यरचनादर्शनात् । १० स्वर्गादिफलार्थिपुरुष । ११ अग्निष्टोमेन यजेत्स्वर्गकाम इत्यादिप्रवृत्तिवाक्यानि । न सुरां पिबेद्ब्राह्मणो न पदास्पृष्टव्येत्यादिनिवृत्तिवाक्यानि । १२ वेदः । १३ मीमांसकः प्राह । १४ वेदे । १५ दोषा-

तथाचोक्तम्[1]—शब्दे दोषोद्भवस्तावद्वक्त्रधीन इति स्थितम्। त-द[2]भावः क्वचित्तावद्गुणवद्वक्तृकत्वतः ॥ १ ॥ तद्गुणैरपकृष्टानां शब्दे संक्रान्त्यसम्भवात्। यद्वा वक्तुरभावेन न स्युर्दोषा निराश्रयाः ॥ २ ॥ इति तदप्ययुक्तम्। पराभिप्रायापरिज्ञानात्। नास्मा[3]भिर्वक्तुरभावे वेदस्य प्रामाण्याभावः समुद्भाव्यते। किंतु त[4]द्व्याख्यातृणामतीन्द्रियार्थदर्शनादिगुणाभावे। ततो दोषाणामनपोदि[5]तत्वान्न प्रामाण्यनिश्चय इति। त[6]तोऽपौरुषेयत्वेऽपि वेदस्य प्रामाण्यनिश्चयायोगान्नाने[7]न लक्षण[8]स्याव्याप्तित्वमसम्भवित्वं वेत्यलमतिजल्पितेन। न[9]नु शब्दार्थयो[10]: स[11]म्बन्धाभावादन्यापोह[12]मात्राभिधायित्वादाप्तप्रणीतादपि शब्दात् कथं वस्तुभूतार्थावगम इत्यत्राह—

सहजयोग्यतासङ्केतवशाद्धि शब्दादयो वस्तु-
प्रतिपत्तिहेतवः ॥ १०० ॥

सहजा स्वभावभूता योग्यता शब्दार्थयोर्वाच्यवाचकशक्तिः

भावः। १ बृहत्पञ्चनमस्काराख्यस्तोत्रैः पात्रकेशारिणोक्तम्। २ दोषाभावः। ३ जैनैः। ४ वेद। ५ अनिराकृतत्वात्। ६ तस्मात्कारणात्। ७ अपौरुषेयवेदेन। ८ आगमलक्षणस्य। ९ बौद्धः प्राह। १० नामजल्पादियोजनात्मकः शब्दो नास्ति। ११ वाच्यवाचकरूप। पारतन्त्र्यं हि सम्बन्धः सिद्धे का परतंत्रता। तस्मात्सर्वस्य भावस्य सम्बन्धो नास्ति तत्वतः। १। १२ अस्मिन्घटादावन्यस्य घटस्यापोहो व्यावृत्तिर-

तस्यां[1] सङ्केतस्तद्वशाद्धि[2] स्फुटं शब्दादयः[3] प्रागुक्ताः[4] वस्तुप्रतिपत्तिहेतव इति । उदाहरणमाह—

यथा मेर्वादयः सन्ति ॥ १०१ ॥

ननु[5] य एव शब्दाः सत्यर्थे दृष्टास्त एवार्थाभावे[6]ऽपि दृश्यन्ते तत्कथमर्थाभिधायकत्वमिति[7] । तदप्ययुक्तम्—अनर्थकेभ्यः शब्देभ्यो[8]ऽर्थवतामन्यत्वात् । न चान्यस्य[9] व्यभिचारेऽन्यस्यासौ[10][11] युक्तोऽतिप्रसङ्गात् । अन्यथा[12] गोपालघटिकान्तर्गतस्य धूमस्य पावकस्य व्यभिचारे पर्वतादिधूमस्यापि तत्प्रसङ्गात्[13] । "यत्नतः परीक्षितं कार्यं कारणं नातिवर्तते" इत्यन्यत्रापि[14] समानम् । सुपरीक्षितो हि शब्दोऽर्थं न व्यभिचरतीति । तथा[15] चान्यापोहस्य[16] शब्दार्थत्वकल्पनं प्रयासमात्रमेव । न चान्यापोहः शब्दार्थो व्यवतिष्ठते प्रतीतिविरोधात्[17] । न हि गवादिशब्दश्रव-

भावः सत्यार्थभूतः । १ तस्या इति पाठान्तरम् । २ वाच्यवाचकसम्बन्धः संकेतो यथा पृथुबुध्नोदराकारे मृत्पिंडे घट इति संकेतः । ३ आदिशब्देनाङ्गुलिसंज्ञादयः । ४ आप्तनिबन्धनेन समर्थिताः । ५ बौद्धः वदति । ६ गगनारविन्दादौ । ७ रामादयो न सन्ति तथापि तद्वाचकाः शब्दाः वर्तन्त इति कथमर्थाभिधायिकत्वं शब्दानामिति चेन्न, नहि तैः तेषामस्तित्वं साध्यते किन्तु स्वरूपं प्रतिपाद्यत इति न दोषः ८ शब्दानाम् । ९ अनर्थकशब्दस्य । १० अर्थवतः । ११ व्यभिचारः । १२ अन्यस्य व्यभिचारेऽप्यन्यत्र परिकल्पनायाम् । १३ व्यभिचारः । १४ शब्देऽपि । १५ व्यभिचाराभावे च । १६ अन्योऽपोह्यते व्यावर्त्यतेऽनेनाभावेनेति । १७ यत्र हि प्रतीति-

णादगवादिव्यावृत्तिः[1] प्रतीयते। ततः[2] सास्नादिमत्यर्थे प्रवृत्तिदर्शनादगवादिबुद्धिजनकं तत्र[3] शब्दान्तरं[4] मृग्यम्। अथैकस्मादेव गोशब्दादर्थ[5]द्वयस्यापि सम्भावनान्नार्थः शब्दान्तरेणेति चेन्नैवम्। एकस्य[6] परस्परविरुद्धार्थद्वय[7]प्रतिपादनविरोधात्[8]। किञ्च[9] गोशब्दस्यागोव्यावृत्तिविषयत्वे प्रथमम[11]गौरिति प्रतीयेत[12] न चैवम[13]तो नान्यापोहः शब्दार्थः। किञ्च अपोहाख्यं सामान्यं वाच्य[14]त्वेन प्रतीयमानं[15] पर्युदासरूपं[16] प्रसज्यरूपं वा? प्रथमपक्षे[17] गोत्वमेव नामान्तरेणोक्तं स्यात्। अभावाभावस्य[18] भावान्तरस्वभावेन व्यवस्थित[19]त्वात्। कश्चायमश्वादिनिवृत्तिलक्षणो

प्रवृत्तिप्राप्तयः समधिगम्यन्ते सः शब्दार्थो नान्यः। १ व्यावृत्तौ तु कोऽपि न प्रवर्तते यतो व्यावृत्तिः तुच्छाभावरूपा सामान्या च। २ गवादिशब्दश्रवणात्। ३ गवादौ। ४ गोशब्दाद्भिन्नः शब्दः। ५ विधिनिषेधरूप। ६ शब्दस्य। ७ गवाद्यस्तित्वगवादिव्यावृत्तिरूपार्थद्वयस्य। ८ एकान्तवादिनं न स्याद्वादिनम्। ९ गोशब्दस्य भावार्थो विषयो नास्ति चेत्। १० अश्वादि। ११ अगोर्निवृत्तेः पूर्वम्। १२ भवदभिप्रायेण। १३ अगौरिति प्रतीत्यभावात्। १४ गोशब्दस्यार्थत्वेन। १५ बौद्धमते। १६ पर्युदासः प्रसज्यश्च द्वौ नञौ गदिताविह पर्युदासः सदृग्ग्राही प्रसज्यस्तु निषेधकृत्। १। १७ सिद्धसाध्यता, यतो यदेवागोनिवृत्तिलक्षणं सामान्यं गोशब्देन भवतोच्यते तदेवास्माभिर्गोत्वाख्यं भावलक्षणं सामान्यं गोशब्दवाच्यमित्यभिधीयते। १८ अगौरित्युक्ते महिषादयस्तेषामभावो व्यावृत्तिर्गोपदार्थरूपो भवति नञ्द्वयस्य प्रकृतार्थसद्भावरूपत्वादिति। १९ अगोनिवृत्तिलक्षणोऽभावो भावान्तरेण गोत्वेन व्यवतिष्ठते।

भावोऽभिधीयते ? न तावत्स्वलक्षणरूपस्तस्य[3] सकलविकल्प-वाग्गोचरातिक्रान्तत्वात् । नापि शाबलेयादिव्यक्तिरूपस्तस्या[4]-सामान्यत्वप्रसङ्गात्[5][6] । तस्मात् सकलगोव्यक्तिष्वनुवृत्तप्रत्यय[7]जनकं तत्रैव प्रत्येकं[8] परिसमाप्त्या[9] वर्तमानं सामान्यमेव[10] गोशब्दवाच्यम्[11] । तस्यापोह इति नामकरणे नाममात्रं भिद्येत नार्थत[12] इति, अतो नाद्यः पक्षः श्रेयान् । नापि द्वितीयो[13], गोशब्दादेः[14] क्वचिद्बाह्येऽर्थे प्रवृत्त्ययोगात् । तुच्छाभावाभ्यु[15]पगमे परमतप्रवेशानुषंगाच्च[16] । किञ्च गवादयो ये सामा-न्यशब्दा[17] ये च शाबलेयादयस्तेषां[18] भेदं[19] अभिप्रायेण पर्या-

---

१ अपितु न कोऽप्यभावः किन्तु भाव एव । २ क्षणिकनिरंशनिरन्वयरूपः । ३ स्वलक्षणस्य । ४ अपोहस्य । ५ अन्यथा । ६ सामान्य-स्यापोहस्याभावोऽसामान्यं तस्य प्रसङ्गात् । परन्त्वपोहः सामान्यस्वरूपस्त-दुक्तम्—अगोनिवृत्तिः सामान्यं वाच्यं यैः परिकल्पितम् । गोत्वं वस्त्वेव तैरुक्तमगोपोहगिरा स्फुटम् । ११ । ७ गौरयं गौरयमित्यादि । ८ सास्नादिमत्त्वम् । ९ सर्वात्मना । १० पृथग्विशेषणेन नैयायिका-भिमतसामान्यनिरासस्तन्मते सामान्यमेकं नित्यमनेकसमवायि, जैनमते तु विशेषं विशेषं प्रति सामान्यं पृथगेव । ११ गोत्वम् । १२ किन्तु नाम जात्यादियोजनारूपपदार्थो भवतीत्यायातमिति । १३ प्रसज्यपक्षः । १४ गोशब्दादेः किञ्चिद्वस्तु वाच्यं न स्यादित्यतः प्रवृत्तिनिवृत्त्यभावप्रसङ्ग इति भावः । १५ अत्यन्ताभावः । १६ नैयायिकमत । १७ सामान्यस्या-भिधायिकाः । १८ विशेषशब्दाः । १९ द्रव्यगुणक्रियारूपाणां भेदोऽस्ति शाबलेयत्वं नाम गुणस्तस्माद्भेदो भवतीति लोकव्यवहारः परन्तु भवता-

यता[1] स्यादर्थभेदा[2]भावाद्वृक्षपा[3]दपादिशब्दवत् । न खलु तुच्छा[4]भावस्य[5] भेदो युक्तो[6] वस्तुन्येव[7] संसृष्ट[8]त्वैकत्वनानात्वादि[9]विकल्पानां[10] प्रतीतेः । भेदे वा अभा[11]वस्य वस्तुतापत्तिः तल्ल[12]क्षणत्वाद्वस्तुत्वस्य । न चापोह्य[13]लक्षण[14]सम्बन्धिभेदाद्भेदः[15] । प्र[16]मेयाभिधेयादिशब्दा[17]नामप्रवृत्तिप्रसङ्गात् । व्यव[18]च्छेद्यस्या[19]तद्रूपेणाप्यप्रमेयादिरूपत्वे त[20]तो व्यव[21]च्छेदायोगात्कथं त[22]त्र सम्बन्धिभेदाद्भेदः ? किञ्च शाबले[23]यादिष्वेकोऽपोहो न प्र[24]सज्येत किन्तु प्रतिव्यक्ति

मभिप्रायेण तुच्छाभावरूपेण भेदो नष्ट एव । १ एकार्थता स्यात् । २ सर्वपदार्थानां तुच्छस्वरूपत्वं यतः । ३ वृक्षपादपादिशब्दानामर्थभेदाभावे यथा पर्यायता । ४ निःस्वभाव । ५ अपोहस्य । ६ तथा भवतां मते वस्तु नास्ति प्रसज्यप्रतिषेधस्यांगीकारात् । ७ न तुच्छाभावरूपे । ८ अन्येन सम्बन्धत्व । ९ आदिना प्रमेयत्वादि । १० भेदानाम् । ११ अपोहस्य । १२ भेद । १३ व्यावर्तनीयपदार्था अश्वादयः । १४ गौरित्यत्रागोव्यावृत्तिरश्वादिस्तद्भेदादभावभेद इत्यनूद्य दूषयति । १५ अभावे । १६ अन्यथा अपोह्यलक्षणसम्बन्धिभेदाद्भेदे सतीति भावः । १७ अप्रमेयाद्व्यावृत्तं प्रमेयमनभिधेयाद्व्यावृत्तमभिधेयमित्यत्राप्रमेयानभिधेयादिरूपापोह्यानामसत्वात्कथं सम्बन्धिभेदाद्भेदस्तदभावे च कथं प्रमेयादिशब्दानां प्रवृत्तिरिति । १८ अप्रमेयत्वस्य । १९ यतोऽप्रमेयं स्वरूपेण नास्ति । २० अप्रमेयादित्वतः । २१ अभिधेयादिशब्दानाम् । २२ प्रमेयाभिधेयशब्दवाच्येऽपोहे । २३ गौरित्यत्रागोरश्वादेर्व्यावृत्तिस्तया शाबलेयादावपि कथमन्यव्यावृत्तिर्भवतु । २४ अनेके

भिन्न एव स्यात्। अथ शाबलेयादयस्तन्न[1] भिन्दन्ति तर्ह्यश्वादयोऽपि भेदका माभूवन्। यस्मान्तरङ्गाः[2] शाबलेयादयो न भेदकास्तस्याश्वदयो भेदका इत्यतिसाहसम्। वस्तुनोऽपि सम्बन्धिभेदाद्भेदो नोपलभ्यते किमुतावस्तुनि[3][4]। तथाह्येक एव देवदत्तादिः कटककुण्डलादिभिरभिसम्बन्ध्यमानो न नानात्वमास्तिघ्नुवानः[5] समुपलभ्यत इति। भवतु वा सम्बन्धिमेदाद्भे[6]दस्तथापि न वस्तुभूतसामान्यमन्तरेणान्यापोहाश्रयः[7][8] सम्बन्धी[9] भवतां[10] भवतुमर्हति। तथाहि यदि शाबलेयादिषु वस्तुभूतसारूप्याभावोऽश्वादिपरिहारेण[11][12] तत्रैव[13] विशिष्टाभिधानप्रत्ययौ[14] कथं स्यातां। ततः[15] सम्बन्धिभेदाद्भेदमिच्छतापि[16] सामान्यं वास्तवमङ्गीकर्तव्यमिति। किञ्चापोहशब्दार्थपक्षे संकेत[17] एवानुपपन्नस्तद्ग्रहणोपायासम्भवात्। न प्रत्यक्षं तद्ग्रहणसमर्थं[18] तस्य[19] वस्तुविषयत्वात्। अन्यापोहस्य चावस्तुत्वात्। अनुमानमपि न तत्सद्भावमवबोधयति[20] तस्य[21] कार्यस्वभावलिङ्गसम्पाद्यत्वात्[22]।

भगन्तु परन्तु तथा नास्ति। १ अपोहम्। २ अव्यभिचारि प्रतिनियतमन्तरङ्गम्। ३ किं पुनरवस्तुनीत्यपि पाठः। ४ अपोहे। ५ आस्कंदमानः। ६ अपोहस्य। ७ परमार्थसत्य। ८ गोत्वादि। ९ शाबलेयादिः। १० बौद्धानाम्। ११ सामान्याभावः। १२ व्यावृत्या। १३ गव्येव। १४ अयं सास्नादिमान् गौरिति विशिष्टशब्दज्ञाने। १५ सामान्यानभ्युपगमे विवक्षितोऽपोहाश्रयः सम्बन्धी न सिद्ध्यति यतः। १६ सौगतेन। १७ शब्दापोहयोर्वाच्यवाचकसम्बन्धः १८ अपोह। १९ प्रत्यक्षस्य। २० अपोह। २१ अनुमानस्य। २२ ज-

अपोहस्य निरुपाख्येयत्वेनानर्थक्रियाकारित्वेन च स्वभावकार्ययोरसम्भवात् । किञ्च गोशब्दस्यागोपोहाभिधायित्वेऽगौरित्यत्र गोशब्दस्य किमभिधेयं स्यादज्ञातस्य विधिनिषेधयोरनधिकारात् । अगोऽर्थावृत्तिरिति चेदितरेतराश्रयत्वमगोव्यवच्छेदो हि गोनिश्चये भवति स चागौर्गौनिवृत्त्यात्मा गौश्चागोव्यवच्छेदरूप इति । अगौरित्यत्रोत्तरपदार्थोऽप्यनयैव दिशा चिन्तनीयः । नन्वगौरित्यत्रान्य एव विधिरूपो गोशब्दाभिधेयस्तदाऽपोहः शब्दार्थ इति विघटेत । तस्मादपोहस्योक्तयुक्त्या विचार्यमाणस्यायोगान्नान्यापोहः शब्दार्थ इति, स्थितं सहजयोग्यता संकेतवशाच्छब्दादयो वस्तुप्रतिपत्तिहेतव इति ।

स्मृतिरनुपहतेयं प्रत्यभिज्ञानवज्ञा ।
प्रमितिनिरतचिन्ता लैंगिकं संगतार्थम् ।
प्रवचनमनवद्यं निश्चितं देववाचा ।
रचितमुचितवाग्भिस्तथ्यमेतेन गीतम् ॥ १ ॥

इति परीक्षामुखस्य लघुवृत्तौ परोक्षप्रपञ्चस्तृतीयःसमुद्देशः ॥३॥

न्यत्वात् । १ निःस्वभावत्वेन स्वभावलिङ्गाभावः । २ जलधारणाद्यर्थक्रियाकारित्वाभावेन कार्यलिङ्गाभावः । ३ अगोव्यावृत्यभिधायित्वे । ४ गोशब्दो वर्ततेऽतस्तस्य किं वाच्यं स्यादिति । ५ प्राप्तिपूर्वको हि निषेधः; अगौरित्यत्र गौरित्यस्य परिज्ञानम् नास्ति कथमगौरिति वदति । ६ दूषणान्तरमाह । ७ गोशब्दार्थः । ८ नागोनिवृत्यात्मा । ९ निर्दोषा । १० उपादेया । ११ तर्कः । १२ याथातथ्यम् । १३ आगमः । १४ निर्दोषम् । १५ अकलंकदेववाचा । १६ माणिक्यनन्दिदेवेन । १७ अनन्त-

अथ स्वरूपसङ्ख्याविप्रतिपत्तिं निराकृत्य विषयविप्रतिपत्तिनिरासार्थमाह—

सामान्यविशेषात्मा तदर्थो विषयः ॥ १ ॥

तस्य प्रमाणस्य ग्राह्योऽर्थो विषय इति यावत्। स एव विशिष्यते[1] सामान्यविशेषात्मा । सामान्यविशेषौ वक्ष्यमाणलक्षणौ तावात्मानौ यस्येति विग्रहः । तदुभयग्रहणमात्मग्रहणं च केवलस्य सामान्यस्य विशेषस्य तदुभयस्य वा स्वतं[2]त्रस्य प्रमाणविषयत्वप्रतिषेधार्थम्। तत्र[3] सन्मा[4]त्रदेहस्य परमब्रह्मणो निरस्[5]तत्वात्तदित[6]रद्विचार्यते। तत्र सांख्यैः प्रधा[7]नं सामान्यमुक्तं "त्रि[8]गुणमवि[9]वेकि विष[10]यः, सा[11]मान्यमचे[12]तनं प्रस[13]वधर्मि । व्यक्तं

वीर्येण । १ विशेषरूपेण क्रियते । २ इतरानिरपेक्षस्य । ३ त्रिषु मध्ये । ४ सामान्यस्वरूपस्य । ५ सावरणमित्यादिसूत्रव्याख्यानावसरे । ६ सन्मात्रस्वरूपपरमपुरुषातिरिक्तम् । ७ सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः । ८ सुखदुःखमोहास्त्रयो गुणा अस्येति त्रिगुणमेतेन सुखादिकानामात्मगुणत्वं निराकृतम् । ९ यथा प्रधानं न स्वतो विविच्यते, एवं महदादयोऽपि न प्रधानाद्विविच्यन्त, तदात्मकत्वात् । अथवा सम्भूयकारिताऽत्राविवेकिता नहि किञ्चिदेकं पर्याप्तं स्वकार्ये, अपि तु सम्भूय, तत्र नैकस्माद्य स्यकस्यचित् केनचित्सम्भवः । १० विषयः—ग्राह्यः, विज्ञानाद्बहिरिति यावदेतेन विज्ञानाद्वैतवादिनां योगाचारणां मतं निराकृतम् । ११ साधारणं घटादिवदनेकैः पुरुषैर्गृहीतमित्यर्थः । १२ सर्वे एव प्रधानबुद्ध्यादयोऽचेतनाः, न तु विज्ञानवादिवच्चैतन्यं बुद्धेरित्यर्थः । १३ प्रसव-

तथा[1] प्रधानं, तद्विपरीतस्तथा[2] च पुमानिति ॥ १ ॥" वचनात्[3] । तत्र[4] केवलं प्रधानं महदादिकार्यनिष्पादनाय प्रवर्तमानं किमप्यपेक्ष्य प्रवर्तते निरपेक्ष्य वा ? प्रथमपक्षे[5] तन्निमित्तं वाच्यं यदपेक्ष्य प्रवर्तते । ननु[6] पुरुषार्थ एव तत्र[7] कारणं, पुरुषार्थेन हेतुना[8] प्रधानं[9] प्रवर्तते । पुरुषार्थश्च द्वेधा, शब्दाद्युपलब्धि[10]र्गुणपुरुषान्तर[11]विवेकदर्शनं वेत्यभिधानादिति चेत् सत्यम् । तथा[12] प्रवर्तमानमपि बहुधानकं[13] पुरुषकृतं कञ्चिदुपकारं समासादयत्प्रवर्तेतानासादयद्वा ? प्रथमपक्षे स उपकारस्तस्मा[14]द्भिन्नोऽभिन्नो वा ? यदि भिन्नस्तदा तस्येति व्यपदेशा[15]भावः, सम्बन्धाभावा-

---

रूपो धर्मो यः सोऽस्यास्तीति प्रसवधर्मि प्रसवधर्मेति वक्तव्ये मत्वर्थीयः प्रत्ययः प्रसवधर्मस्य नित्ययोगमाख्यातुम् । सरूपविरूपपरिणामाभ्यां न कदाचिदपि वियुज्यते इत्यर्थः । तत्वान्तरेण परिणामो विरूपरिणामः सत्वरजस्तमोरूपेण परिणामः सरूपरिणामः । १ व्यक्तवृत्तमव्यक्तेऽतिदिशति "तथा प्रधानम्" इति । यथा व्यक्तं तथाऽव्यक्तमित्यर्थः । २ त्रैगुण्यादिरहितः पुरुषः । ३ यद्यप्यत्रैगुण्यादि वैधर्म्यमस्ति तथाप्यहेतुमत्वनित्यत्वादि प्रधानसाधर्म्यं पुरुषस्यास्तीति द्योतनार्थं तथा चेति पाठः । ४ जैनः प्राह । ५ यत्किञ्चिदपेक्ष्य प्रवर्तते तन्निमित्तं प्रतिपादनीयम् । ६ सांख्यः प्राह । ७ प्रवृत्तौ । ८ कारणेन । ९ महदादिकार्यनिष्पादनाय । १० आदिशब्देन रूपरसगन्धस्पर्शाः । ११ प्रकृतिपुरुषभेदविज्ञानम् । १२ पुरुषार्थद्वयमपेक्ष्य । १३ प्रकृतिः । १४ बहुधानकात् । १५ तदोपकारो बहुधानकस्येति व्यपदेशस्य-

त्वदभावश्च समवायादेरनभ्युपगमात् । तादात्म्यं च भेदविरोधीति । अथाभिन्न उपकार इति पक्ष आश्रीयते तदा प्रधानमेव तेन कृतं स्यात् । अथोपकारनिरपेक्षमेव प्रधानं प्रवर्त्तते तर्हि मुक्तात्मानम्प्रत्यपि प्रवर्त्तेताविशेषात् । एतेन निरपेक्षप्रवृत्तिपक्षोऽपि प्रत्युक्तस्तत एव । किञ्च सिद्धे प्रधाने सर्वमेतदुपपन्नं स्यात् न च तत्सिद्धिः कुतश्चिन्निश्चीयत इति । ननु कार्याणामेकान्वयदर्शनादेककारणप्रभवत्वं भेदानां परिमाणदर्शनाच्चेति । तदप्यचारुचर्वितं सुखदुःखमोहरूपतया घटादेरन्वयाभावादन्तस्तत्वस्यैव

कथनस्याभावः प्रधानस्योपकार इति वक्तुं न शक्यत इति भावः ।
१ उपकाराभावश्च । २ आदिपदेन संयोगादयः । ३ सांख्यैः । ४ अयमुपकार इदं प्रधानमिति भेदो न स्यात् । ५ पुरुषेण । ६ तदा नित्यत्वहानिरिति । ७ पुरुषकृतोपकारानिरपेक्षमेव । ८ महदादिकार्यनिष्पादनाय । ९ उपकारानिरपेक्षत्वस्याविशेषात् । १० पुरुषकृतोपकारानिरपेक्षमेव प्रधानं वर्तत इत्यस्य निराकरणेन । ११ महदादिकार्यनिष्पादनाय निरपेक्ष्य वा प्रधानं प्रवर्तत इति द्वितीयविकल्पं दूषयति । १२ अविशेषादेव । १३ प्रमाणात् । १४ सांख्यः प्राह । १५ महदादीनाम् । १६ भेदानां परिमाणात्समन्वयाच्छक्तितः प्रवृत्तेश्च कारणकार्यविभागादविभागाद्वैश्वरूपस्य ।१। महदादिव्यक्तमेककारणसम्भूतमेकान्वदर्शनात् घटघटीसरावोदंचनादिवत् । १७ महदादिव्यक्तमेककारणपूर्वकं परिमाणदर्शनात् घटादिवत् । १८ सत्वरजस्तमसामुदयाज्जाःसमाजाः परिणामाः सुखादयः प्रधानस्य । १९ चित्तस्यांतरात्म-

तथोपलम्भात्[1]। अथान्तस्तत्त्वस्य[2] न सुखादिपरिणामः किन्तु तथापरिणममानप्रधानसंसर्गादात्मनोऽपि तथा[3] प्रतिभास इति तदप्यनुपपन्नम्। अप्रतिभासमानस्यापि संसर्गकल्पनायां तत्त्वेयत्ताया निश्चेतुमशक्तेः तदुक्तम्—संसर्गादविभागश्चेदयोगोलकवह्निवत्[4]। भेदाभेदव्यवस्थैवमुच्छिन्ना[5] सर्ववस्तुषु ॥ १ ॥ इति यदपि परिमाणाख्यं साधनं, तदप्येकप्रकृतिकेषु[6] घटघटीशरावोदञ्चनादिष्वनेकप्रकृतिकेषु[7] पटकुटमकुटशकटादिषु चोपलम्भादनैकान्तिकमिति[8][9] न ततः[10] प्रकृतिसिद्धिः[11]। तदेवं प्रधानग्रहणोपायासम्भवात्सम्भवे वा ततः[12] कार्योदयायोगाच्च[13]। यदुक्तं परेण[14]–प्रकृतेर्महान्[15][16] ततोऽहंकार[17]स्तस्माद्[18]गणश्च[19] षोडशकः[20]। तस्मा[21]-

---

न एव। १ सुखदुःखमोहरूपतयोपलम्भात्। २ चेतनस्य। ३ सुखदुःखादिरूपतया। ४ आत्मनो सह संसर्गकल्पनायामविभागो जात एवेति चेत्। ५ नष्टा। ६ एककारणकेषु। ७ अनेककारणकेषु। ८ परिमाणोपलम्भात्। ९ महदादिव्यक्तमेककारणकं परिमाणोपलम्भादित्यनुमाने परिमाणोपलम्भस्य हेतोरेककारणकेषु घटादिषु भिन्नभिन्नकारणेषु पटकुंडलादिषूपलंभाद्व्यभिचारित्वम्। १० परिमाणोपलम्भसाधनात्। ११ प्रधान। १२ प्रकृतेः। १३ घटादि। १४ सांख्येन। १५ प्रकृतिरव्यक्तम् ततो महत्तत्वमुत्पद्यते। १६ अध्यवसायो बुद्धिर्धर्मो ज्ञानं विराग ऐश्वर्यम्। सात्विकमेतद्रूपं तामसमस्माद्विपर्यस्तम् ॥१॥ सर्वो व्यवहर्ता "अहमत्राधिकृतः" इत्यभिमत्य "कर्तव्यमेतन्मया" इत्यध्यवस्यति, ततश्च प्रवर्तत इति लोकसिद्धम्, योयं कर्तव्यमिति विनिश्चयश्चितिसंनिधानादापन्नचैतन्याया बुद्धेः सोध्यवसायः–बुद्धेरसाधारणो व्यापारस्त-

दपि षोडशकात्पञ्चभ्यः पञ्च भूतानीति ॥ १ ॥ सृष्टिक्रमे, मूलप्र[1]कृतिरविकृ[2]तिर्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः[3] सप्त। षोडश[4]कस्तु[5] विकारो

दभेदा बुद्धिः, स च बुद्धेर्लक्षणं समानासमानजातीयव्यवच्छेदकत्वात् । १७ बुद्धेः । १८ अभिमानोऽहङ्कारस्तस्माद्द्विविधः प्रवर्तते सर्गः । एकादशकश्च गणस्तन्मात्रपञ्चकश्चैव ।१। १९ अहङ्कारात् एकादशेन्द्रियाणि तन्मात्राणि च पञ्च, सोयं षोडशसंख्यापरिमितो गणः षोडशकः। २० बुद्धीन्द्रियाणि चक्षुःश्रोत्रघ्राणरसनत्वगाख्यानि वाक्पाणिपादपायूपस्थानि कर्मेन्द्रियाण्याहुः ।२। मनश्चेत्येकादशेन्द्रियाणि शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाः पञ्च तन्मात्राणि । २१ तस्मादपि षोडशकादपकृष्टेभ्यः पञ्चभ्यस्तन्मात्रेभ्यः पञ्च भूतानि तत्र शब्दतन्मात्रादाकाशं शब्दगुणम्, शब्दतन्मात्रसहितात्स्पर्शतन्मात्राद्वायुः शब्दस्पर्शगुणः, शब्दस्पर्शसहिताद्रूपतन्मात्रात्तेजः शब्दास्पर्शरूपगुणम्, शब्दस्पर्शरूपतन्मात्रसहिताद्रसतन्मात्रादापः शब्दस्पर्शरूपरसगुणाः, शब्दस्पर्शरूपरसतन्मात्रसहिताद्गन्धतन्मात्राच्छब्दस्पर्शरूपरसगन्धगुणा पृथिवी जायते, रूपात्तेजो रसादापो गन्धाद्भूमिः स्वरान्नभः । स्पर्शाद्वायुस्तथैवं च पञ्चभ्यः पञ्चभूतकम् ।३। १ मूलश्चासौ प्रकृतिश्चेति मूलप्रकृतिः विश्वस्य कार्यसङ्घातस्य सा मूलम्, न त्वस्या मूलान्तरमस्ति—अनवस्थाप्रसङ्गात् । २ प्रकृतिरेवेत्यर्थः । ३ प्रकृतिश्च विकृतयश्चेति प्रकृतिविकृतयः सप्त, महत्तत्वमहङ्कारस्य प्रकृतिः, विकृतिश्च मूलप्रकृतेः । अहंकारतत्त्वं तन्मात्राणामिन्द्रियाणां च प्रकृतिः, विकृतिश्च महतः । एवं पञ्च तन्मात्राणि तत्वानि भूतानामाकाशादीनां प्रकृतयो विकृतयश्चाहंकारस्येति । ४ एकादशेन्द्रियाणि पञ्च महाभूतानि चेति षोडशको विकारो विकार एव । ५ तु शब्दोऽवधारणे

न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुषः ॥ २ ॥ इति स्वरूपाख्यानं च वन्ध्यासुतसौरूप्यवर्णनमिवासद्विषयत्वादुपेक्षामर्हति। अमूर्तस्याकाशस्य मूर्तस्य पृथिव्यादेश्चैक[2]कारणकत्वायोगाच्च। अन्यथा[3] अचेतनादपि पञ्चभूतकदम्बकाच्चैतन्यसिद्धेश्चार्वाकमतसिद्धिप्रसङ्गात् सांख्यगन्ध एव न भवेत्। सत्कार्य[3]वादप्रति[4]षेधश्चान्य[5]त्र विस्तरेणोक्त इति नेहोच्यते संक्षेपस्वरूपादस्येति। तथा[6] विशेषा[7] एव तत्त्वं[8] तेषा[9]मसमा[10]नेतरविशेषेभ्योऽशेषात्म[11]ना विश्लेषात्म[12]कत्वात्सामान्यस्यैकस्यानेकत्र[13] व्याप्त्या[14] वर्तमानस्य सम्भवाभावाच्च। त[15]स्यैकव्यक्तिनिष्ठस्य सामस्त्येनोपलब्ध[16]स्य त[17]थैव व्यक्त्यन्तरेऽनुपलम्भप्रसङ्गात्। उ[18]पलम्भे वा त[19]न्नानात्वापत्तेर्यु-

---

भिन्नक्रमश्च। १ प्रधान। २ अमूर्तस्याकाशस्य मूर्तस्य पृथिव्यादेश्चैककारणकल्पनायां तु। ३ असदकरणादुपादानग्रहणात्सर्वसंभवाभावात्। शक्तस्य शक्यकरणात्कारणभावाच्च सत्कार्यम् ।१। ४ न सदकरणादुपादानग्रहणात्सर्वसम्भवाभावात्। शक्तस्य शक्यकरणात्कारणभावाच्च सत्कार्यम् ।२। इत्यादिना सत्कार्यवादस्य प्रतिषेधादिति। ५ प्रमेयकमलमार्तण्डे। ६ बौद्धः प्राह। ७ प्रतिक्षणं विसरारवोऽनित्याः परस्परासम्बधिनः परमाणवः। ८ वस्तुनः स्वरूपम्। ९ विशेषाणाम्। १० विजातीयसजातीयविशेषेभ्यो, यथा घटे घटान्तरं सजातीयं पटान्तरं विजातीयम्। ११ सामस्त्येन। १२ भिन्नात्मकत्वात्। १३ शावलेयादिव्यक्तिषु। १४ परिसमाप्त्या। १५ सामान्यस्य। १६ दृष्टस्य। १७ सामस्त्येन। १८ एकस्मिन्क्षणे सामान्य-

गपत्[1] भिन्नदेशतया[2] सामस्त्येनोपलब्धेस्तद्व्यक्तिवत्[3], अन्यथा[4] व्यक्तयोऽपि भिन्ना माभूवन्निति ततो बुद्ध्यभेद[5] एव सामान्यम्। तदुक्तम्—एकत्र[6] दृष्टो भावो हि क्वचिन्नान्यत्र[7] दृश्यते। तस्मा-न्न भिन्नमस्त्यन्यत्सामान्यं[9] बुद्ध्यभेदतः[10] ॥ १ ॥ इति। ते च विशेषा परस्परासम्बद्धा एव, तत्सम्बन्धस्य[11] विचार्यमाणस्या-योगात्। एकदेशेन[12] सम्बन्धे अणुषट्केन युगपद्योगादणोः षडंशतापत्तेः। सर्वात्मनाभिसम्बन्धे[13] पिण्डस्याणुमात्रकत्वापत्तेः। अवयविनिषेधाच्चासम्बद्धत्वमेषां[14] मुपपद्यत एव। तन्निषेधश्च[15] वृत्तिविकल्पादिबाधनात्। तथा[16] हि—अवयवा अवयविनि वर्तन्त इति नाभ्युपगतम्[17]। अवयी चावयवेषु वर्तमानः किमेकदेशेन वर्त्तते सर्वात्मना वा? एकदेशेन वृत्तावयवान्तरप्रसङ्गः। तत्राप्येकदेशान्तरेणावयविनो[18] वृत्तावनवस्था[19]। सर्वात्मना वर्त-

स्य व्यक्त्यन्तरे। १९ सामान्यस्य। १ सामान्यं नाना युगपद्भिन्न-देशतयोपलब्धेस्तद्व्यक्तिवदिति। २ सामान्यस्य। ३ शावलेयादि-व्यक्तिवदिति। ४ युगपद्भिन्नदेशतयोपलब्धेऽपि तस्यैकत्वे। ५ सर्व-त्र गोव्यक्तिषु बुद्ध्यभेद एव सामान्यं न वस्तुभूतम्। ६ एकस्थाने। ७ द्वितीयस्थाने। ८ एकत्र दृष्टस्य भावस्य तदैव द्वितीयस्थानेऽद-र्शनात्। ९ स्वतन्त्रम्। १० अभेदे हेतुरयम्। ११ विशेषाणां परस्परसम्बन्धस्य। १२ सम्बन्धश्चेदेकदेशेन सर्वात्मना वेति शङ्कायामाह। १३ परस्परानुप्रवेशात्। १४ विशेषाणाम्। १५ अवयविनिषेधश्च। १६ वृत्तिविकल्पादिबाधनम् विवृणोति। १७ नैयायिकैः। १८ अवया-न्तरेषु। १९ अवयवेष्ववियविन एकदेशेन वृत्तावयवान्तरप्रसङ्गोऽवयवा-

मानोऽपि प्रत्यवयवं स्वभावभेदेन वर्तेत, आहोस्विदेकरूपेणेति ? प्रथमपक्षे अवयविबहुत्वापत्तिः । द्वितीयपक्षे तु अवयवानामेकरूपत्वापत्तिरिति । प्रत्येकं परिसमाप्त्या वृत्तावप्यवयविबहुत्वमिति । तथा यत् दृश्यं सन्नोपलभ्यते तन्नास्त्येव यथा गगनेन्दीवरं, नोपलभ्यते चावयवेष्ववयवीति । तथा यद्ग्रहे यद्बुद्ध्यभावस्तत्ततो नार्थान्तरम्, यथा वृक्षाग्रहे वनमिति । ततश्च निरंशा एवान्योन्यासंस्पर्शिणो रूपादिपरमाणवस्ते च एकक्षणस्थायिनो न नित्या, विनाशं प्रत्यन्यानपेक्षणात् । प्रयोगश्च यो यद्भावं प्रत्यन्यानपेक्षः स तत्स्वभावनियतो यथान्त्या कारणसामग्री स्वकार्ये । नाशो हि मुद्गरादिना क्रियमाणस्ततो भिन्नो-

---

न्तष्वेकदेशेन वृत्तावयवान्तरप्रसङ्गस्तत्राप्येकदेशेन वृत्तावयवान्तरप्रसङ्ग इत्यनवस्था । १ प्रत्यवयवमवयविनो हि स्वभावभेदान्नानात्वं स्यादेवेति । २ सर्वेष्वप्यवयवेष्वेकरूपेण वर्तनादवयवानामेकत्वं स्यादेव स्वभावभेदाभावात् । ३ अवयवमवयवं प्रति । ४ साकल्येन । ५ अवयवेष्ववयवी नास्त्येव दृश्यत्वे सत्यनुपलभ्यमानत्वात् । ६ अवयवेभ्योऽवयवी नार्थान्तरमवयवानामग्रहेऽवयविबुद्ध्यभावात् । ७ पूर्वानुमानेनावयवेष्ववयवी नास्तीत्यस्य सिद्धिरनेन त्ववयवेभ्योऽवियविनो भेदोऽपि नास्तीति साधित इति । ८ कारणनिरपेक्षात् । ९ सर्वे भावाः क्षणिकास्तत्स्वभावं प्रत्यन्यानपेक्षणात् । १० विनाशभावम् । ११ कारणनिरपेक्षः । १२ स विनाशस्वभावनियतः । १३ अन्त्यतन्तुसंयोगलक्षणाऽन्त्या कारणसामग्री । १४ पटोत्पत्तौ । १५ घटादिनाशे मुद्गराद्यपेक्षाऽस्त्येवेत्याशंक्य बौद्धो

ऽभिन्नो वा क्रियते ? भिन्नस्य करणे घटस्य स्थितिरेव स्यात्।
अथ विनाशसम्बन्धान्नष्ट[1] इति व्यपदेश इति चेत्, भावाभा-[2]
वयोः कः सम्बन्धः ? न तावत्तादात्म्यं तयो[3]र्भेदात् । नापि
तदुत्पत्तिरभावस्य[4] कार्याधारत्वाघटनात् । अभिन्नस्य[5] करणे
घटादिरेव कृतः स्यात् । तस्य[6] च प्रागेव निष्पन्नत्वाद्व्यर्थं कर-
णमित्यन्यानपेक्षत्वं[7] सिद्धमिति विनाशस्वभावनियतत्वं साधय-
त्येव । सिद्धे चानित्यर्था[10]नां त[11]त्स्वभावनियतत्वे तदितरेषामात्मा-
दीनां विमत्यधिकरणभा[12]वापन्नानां सत्त्वादिना साधनेन तद्दृ[13]-
ष्टान्ताद्भवत्येव क्षणस्थितिस्वभावत्वम् । तथाहि य[14]त्सत्तत्सर्व-
मेकक्षणस्थितिस्वभावं यथा घ[15]टः सन्तश्चामी भावा[16] इति ।

विकल्पद्वयं कृत्वा दूषयति नैयायिकम्, अथवा नैयायिकोक्ततुच्छाभावम-
ङ्गीकृत्य दूषयति । १६ घटादिकार्यात् । १ नाशो भिन्नो भवति
तथापि तेन सह घटस्य सम्बन्धात् घटोऽपि नष्ट इति व्यपदेशः ।
२ घटविनाशयोः । ३ भावाभावयोः । ४ नाप्यभावस्य घटादुत्पत्तिर्येन
कार्यकारणभावसम्बन्धः स्यात् । ५ यथा भावरूपस्य घटस्य मृत्पिंडादुत्प-
त्तिरस्ति तदा तस्य कार्याधारित्वं तथाऽभावस्त्ववस्तुरूपस्तस्मात्तत्र कार्याधारित्वा-
घटनात् । ६ मुद्गरादिना घटादभिन्नस्याभावस्य करणे । ७ घटस्य ।
८ साधनम् । ९ तदन्यानपेक्षत्वं साधनम् । १० विशेषाणाम् ।
११ विनाश । १२ विवादापन्नानाम् । १३ घटादिविशेषदृष्टान्तात् ।
१४ सर्वे भावाः क्षणिकाः सत्वात् । १५ परमार्थरूपेण घटः क्षणिक एव,
पृथुबुध्नोदराकारेण दृश्यमानो घटः कियत्कालस्थायी नत्वाशु विनाशीति

अथवा सत्त्वमेव विपक्षे बाधकप्रमाणबलेन दृष्टान्तनिरपेक्षमशेषस्य वस्तुनः क्षणिकत्वमनुमापयति । तथाहि सत्त्वमर्थक्रियया व्याप्तं, अर्थक्रिया च क्रमयौगपद्याभ्यां, ते च नित्यान्निवर्त्तमाने स्वव्याप्यामर्थक्रियामादाय निवर्तेते । सापि स्वव्याप्यं सत्त्वमिति, नित्यस्य क्रमयौगपद्याभ्यामर्थक्रियाविरोधात्सत्त्वासम्भावनं विपक्षे बाधकप्रमाणमिति । नहि नित्यस्य क्रमेण युगपद्वा सा सम्भवति । नित्यस्यैकेनैव स्वभावेन पूर्वापरकालभाविकार्यद्वयं कुर्वतः कार्याभेदकत्वात्तस्यैकस्वभावत्वात् । तथापि कार्यनानात्वेऽन्यत्र कार्यभेदात् कारणभेदकल्पना विफलैव स्यात् । तादृशमेकमेव किञ्चित्कारणं कल्पनीयं येनैकस्वभावे-

---

भ्रान्तिरेवाविद्यावशादिति । १६ तस्मात्क्षणिकाः । १ वहिर्व्याप्तिमुखेन । २ नित्ये । ३ नित्यः पदार्थो नास्ति क्रमयौगपद्याभ्यामर्थक्रियाकारित्वाभावादिति विपक्षे बाधकप्रमाणबलेन । ४ अन्तर्व्याप्तिमुखेनानुमानं दर्शयति । ५ यदेवार्थक्रियाकारी तदेव परमार्थसत्, नित्यं नार्थक्रियाकारी तन्न तत् परमार्थसत् ।१। ६ क्रमयौगपद्ये । ७ व्युत्पन्नं प्रतीदमनुमानम् । ८ नित्यः पदार्थो नास्ति क्रमयौगपद्याभ्यामर्थक्रियाकारित्वाभावात्खरविषाणवदिति । ९ नित्यमर्थक्रियाकारी न भवति क्रमयौगपद्यरहितत्वात् । १० अर्थक्रिया । ११ एकस्वभावेनानेकस्वभावेन वेति विकल्पद्वयं मनसि कृत्वा क्रमेण दूषयति । १२ नित्यस्य । १३ नित्यस्यैकस्वभावत्वे सति । १४ अनित्ये ।

नैकेनैव चराचरमुत्पद्यत इति । अथ स्वभावनानात्वमेव तस्य[1] कार्यभेदादिष्यत[3] इति चेत्तर्हि, ते स्वभावास्तस्य सर्वदा सम्भविनस्तदा कार्यसाङ्कर्यम्। [6]नो चेत्तदुत्पत्तिकारणं वाच्यम्। तस्मादेवतदुत्पत्तौ तत्स्वभावानां सदा सम्भवात्तस्यैव कार्याणां युगपत्प्राप्तिः । सहकारिक्रमापेक्षया तत्स्वभावानां क्रमेण भावान्नोक्तदोष इति चेत्तदपि न साधुसंगतम्। समर्थस्य नित्यस्य परापेक्षायोगात्[11]। तैः[12] सामर्थ्यकरणे[13] नित्यता-हानिः। तस्माद्भिन्नमेव[14] सामर्थ्यं[15] तैर्विधीयत इति न नित्यता-हानिरिति। चेत्तर्हि नित्यमकिंचित्करमेव स्यात्। सहकारिजनितसामर्थ्यस्यैव कार्यकारित्वात्तत्सम्बन्धात्[16]तस्यापि[17] कार्यकारित्वे तत्सम्बन्धस्यैकस्वभावत्वे[18] सामर्थ्यनानात्वाभावान्न कार्यभेदः । अनेकस्वभावत्वेऽक्रमवत्त्वे[19] च कार्यवत्तस्यापि साङ्कर्य-

---

१ न तु कारणभेदः । २ नित्यस्य । ३ यदि । ४ जीवद्रव्या-दुत्पद्यमाननरनारकादिकार्याणां युगपदुत्पत्तिप्रसङ्गः । ५ सर्वेषां युगपत्प्राप्तिः सङ्करः । ६ ते स्वभावाः सर्वदा सम्भाविनो नो चेत् । ७ स्वाभावोत्पत्ति । ८ नित्यादेव । ९ स्वभावनामुत्पत्तौ । १० निमित्तकारण । ११ निमित्तकारणापेक्षा । १२ सहकारिभिः । १३ नित्यस्य । १४ नित्यात् । १५ सहकारिभिः । १६ सहकारिजनितसामर्थ्यसम्बन्धात् । १७ नित्यस्यापि । १८ तेन सामर्थ्येन सह सम्बन्धो यस्य नित्यस्य स तथा तस्य । १९ सहकारिभिः कृतं सामर्थ्यं तन्नित्येनैकरूपेण सम्बन्ध्यतेऽनेकरूपेण वा, यद्येकरूपेण सम्बन्धस्तदा सामर्थ्यनानात्वाभावात्कार्यभेदो न स्याद्-

मिति सर्वमावर्तेत[1] इति चक्रकप्रसङ्गः । तस्मान्न क्रमेण कार्यकारित्वं नित्यस्य । नापि युगपत् अशेषकार्याणां युगपदुत्पत्तौ द्वितीयक्षणे कार्याकरणादनर्थक्रियाकारित्वेनावस्तुत्वप्रसंगादिति नित्यस्य क्रमयौगपद्याभावः सिद्ध एवेति सौगताः प्रतिपेदिरे । तेऽपि न युक्तवादिनः—सजातीयेतरव्यावृत्तात्मनां[2] विशेषाणामनंशानां[3] ग्राहकस्य प्रमाणस्याभावात् । प्रत्यक्षस्य स्थिर[4]स्थूलसाधारणाकारवस्तुग्राहकत्वेन निरंशवस्तुग्रहणायोगात् । न हि परमाणवः परस्परासंबद्धाश्चक्षुरादिबुद्धौ[5] प्रतिभान्ति तथा[6] सत्यविवादप्रसंगात् । अथा[7]नुभूयन्त[8] एव प्रथमं तथा[9]भूताः क्षणाः[10] पश्चात्तु विकल्पवासनाबलादान्त[11]रादन्त[12]रालानुपलम्भलक्षणाद्[13]बाह्याच्चाविद्यमानोऽपि स्थूलाद्याकारो विकल्पबुद्धौ चकास्ति[14] । स[15] च तदा[16]कारेणानुरज्य[17]मानः स्वव्या[18]पारं

दि नानास्वभावेन संबन्ध्यते तदा युगपत्क्रमेण वा यदि युगपत्तदा घटादिवत्सामर्थ्यस्यापि सांकर्य्यम् । १ तस्मात्सम्बन्धस्य क्रमवत्त्वं स्वीकर्तव्यं क्रमवत्त्वे च तदुत्पत्तौ कारणं वाच्यमिति सम्बन्धः । २ भिन्नस्वरूपणाम् । ३ परमाणूनाम् । ४ क्षणिकत्वव्यवच्छेदार्थं स्थिरपदं परमाणुत्वनिरासार्थं स्थूलपदं विशेषनिरासार्थं साधारणपदमाकारपदं तु प्रत्येकं परिसाप्यते । ५ प्रत्यक्षज्ञाने । ६ प्रतिभासन्ते चेत् । ७ बौद्धः प्राह । ८ निर्विकल्पप्रत्यक्षबुद्धाविन्द्रियार्थसम्बन्धानन्तरं प्रतिभासन्त एव । ९ निरंशाः। १० परमाणवः । ११ आभ्यन्तरात् । १२ मध्ये स्थिरस्थूलसाधारणाकारग्रहणमस्ति । १३ परमाणूनां स्फुटं परस्परं व्यवधानानुपलम्भलक्षणात् । १४ शोभते । १५ विकल्पः ।१६ निर्विकल्पप्रत्यक्षाकारेण । १७ आरोप्यमाणः । १८ आ-

तिरस्कृत्य प्रत्यक्षव्यापारपुरःसरत्वेन प्रवृत्तत्वात्प्रत्यक्षायते[१] इति, तदप्यतिबालविलसितम्। निर्विकल्पकबोध[२]स्यानुपलक्ष[३]णात्। गृहीते हि निर्विकल्प[४]केतरयोर्भेदे अन्याका[५]रानुरागस्या[६]न्यत्र कल्पना युक्ता स्फटिकजपाकुसुमयोरिव ना[७]न्यथेति। ए[८]तेन त[९]योर्युग[१०]पद्वृत्तेर्ल[११]घुवृत्तेर्वा[१२] त[१३]देकत्वाध्यवसाय इति निरस्तं त[१४]स्यापि कोशपानप्रत्येयत्वादिति। के[१५]न वा त[१६]योरेकत्वाध्यव[१७]सायः? न तावद्विकल्पेन, तस्य[१८] विकल्पवार्तानभिज्ञत्वात्। नाप्यनु[१९]भवेन, तस्य विकल्पागोचरत्वात्। न च तदुभ[२०]याविषयं त[२१]देकत्वाध्यवसाये समर्थमतिप्रसङ्गात्। त[२२]तो न प्रत्यक्ष-

---

त्वमव्यापारमविशदमव्यक्तमस्पष्टम्। १ इति बौद्धसिद्धान्तः। २ ज्ञानस्य। ३ अनुपलम्भात्। ४ निर्विकल्पसविकल्पयोः। ५ प्रत्यक्षानुरागस्य। ६ विकल्पे। ७ निर्विकल्पसविकल्पयोर्भेदेऽग्रहीते निर्विकल्पाकारस्य सविकल्पेऽनुरागता न युक्ता। ८ सविकल्पे निर्विकल्पस्याकारनिराकरणेन। ९ निर्विकल्पसविकल्पयोः। १० युगपद्वृत्तेस्तयोरेकत्वाध्यवसाय इति चेत्तर्हि दीर्घशष्कुलीभक्षणादौ रूपादिज्ञानपञ्चकस्याप्यभेदाध्यवसायः स्यात्। ११ क्रमवत्वेऽपि। १२ लघुवृत्तेश्चाभेदाध्यवसाये खरटिंतमिश्यादावप्यभेदाध्यवसायः स्यादिति। १३ निर्विकल्पसविकल्पयोः। १४ युगपद्वृत्तेर्लघुवृत्तेर्वा तदेकत्वाध्यवसायस्यापि। १५ ज्ञानेन। १६ निर्विकल्पसविकल्पयोः। १७ निश्चयः। १८ विकल्पज्ञानस्य। १९ निर्विकल्पज्ञानेन। २० तदुभयमविषयो यस्य ज्ञानान्तरस्य। २१ निर्विकल्पसविकल्प। २२ केनचिदपि प्रमाणेन तदेकत्वाध्यवसायस्य ग्रहणं न भवति

बुद्धौ तथा विधविशेषावभासः। नाप्यनुमानबुद्धौ[2] तदवि[3]नाभूतस्वभावकार्यलिङ्गाभावात्। अनुपलम्भो[4]ऽसिद्ध एव अनुवृत्ताकारस्य स्थूलाकारस्य चोपलब्धे[5]रुक्तत्वात्। यदपि परमाणूनामेकदेशेन सर्वात्मना वा सम्बन्धो नोपपद्यत इति[6] तत्रा[7]नभ्युपगम[8] एव परिहारः। स्निग्धरूक्षाणां सजातीयानां च ह्यधिकगुणानां कथञ्चित्स्कन्धाकारपरिणामात्मकस्य सम्बन्धस्या[9]भ्युपगमात्। यच्चावयविनि वृत्तिविकल्पादि बाधकमुक्तं तत्रा[10]वयविनो वृत्तिरेव यदि नोपपद्यते तदा न वर्तत इत्यभिधातव्यम्। नैकदेशादिविकल्पस्तस्य[11] विशेषनान्तरीय[12]कत्वात्। तथा[13] हि नैकदेशेन वर्तते नापि सर्वात्मनेत्युक्ते प्रकारान्तरेण[14] वृत्तिरि[15]त्यभिहितं स्यात्। अन्यथा[16] न वर्तत

यतः। १ परस्परासंबद्धपरमाणूनाम्। २ परस्परासंबद्धपरमाणूनामवभासः। ३ परस्परासंबद्धपरमाण्वविनाभूत। ४ हेतुः। ५ यद्यनुवृत्ताकारस्य स्थूलाकारस्यानुपलम्भबलेनानुपलब्धिः स्यात्तदा निरंशपरमाणूनां सिद्धिः स्यान्नान्यथा प्रत्यक्षेण हि स्थूलाद्याकारस्य प्रतीतेः। ६ उक्तम्। ७ एकदेशेन सर्वात्मना वा परमाणूनां सम्बन्धानुपपद्यमाने। ८ जैनैरपि तथा स्वीक्रियते। ९ णिद्धस्स णिद्धेण दुराहियेण लुक्खस्स लुक्खेण दुराहियेण णिद्धस्स लुक्खेण दुराहियेण जहण्णवज्जो विसमे समे वा। १० अवयवेषु। ११ एकदेशादिविकल्पस्य। १२ वृत्तिविशेषाविनाभावरूपत्वात्। १३ एतदेव विवृणोति। १४ तादात्म्येन। १५ अवयवेष्ववयवी वर्तते। १६ यद्यवयवेष्ववयविनां सर्वथा वृत्तिर्नास्ति।

इत्येव वक्तव्यमिति विशेषप्रतिषेधस्य शेषाभ्यनुज्ञानरूपत्वात्[1] कथञ्चित्तादात्म्यरूपेण वृत्तिरित्यवसीते । तत्र[2] यथोक्तदोषाणामनवकाशाद्विरोधादिदोषश्चाग्रे प्रतिषेत्स्यत इति नेह प्रतन्यते । यच्चैकक्षणस्थायित्वे[3] साधनं[4] 'यो यद्भावं प्रतीत्याद्युक्तं, तदप्यसाधनमसिद्धादिदोषदुष्टत्वात् । तत्रान्यानपेक्षत्वं तावदसिद्धं[5] घटाद्यभावस्य मुद्गरादिव्यापारान्वयव्यतिरेकानुविधायित्वात् तत्कारणत्वोपपत्तेः[6] । कपालादिपर्यायान्तरभावो हि घटादेरभावस्तुच्छाभावस्य[7] सकलप्रमाणगोचरातिक्रान्तत्वात् । किञ्च[8] अभावो यदि स्वतन्त्रो भवेत्तदाऽन्यानपेक्षत्वं[9] विशेषणं युक्तम् । न च सौगतमते सोऽस्तीति[10] हेतुप्रयोगानवतार[11] एव, अनैकान्तिकं[12] चेदं शालिबीजस्य कोद्रवांकुरजनन-

---

१ यदवयवेष्ववयविनां सर्वात्मनेकदेशेन वा वृत्तिप्रतिषेधो विधीयते तेन तदतिरिक्ततादात्म्यरूपा वृत्तिः सिद्धा भवति । २ तादात्म्यरूपेण वृत्तौ । ३ साध्ये । ४ विनाशभावित्वं प्रत्यन्यानपेक्षणादिति साधनम् । ५ घटविनाशो हि मुद्गरादिना भवत्यतो घटविनाशे मुद्गराद्यपेक्षासम्भवाद्विनाशं प्रत्यन्यानपेक्षणादिति साधनं स्वरूपासिद्धं स्वरूपेणैवास्य हेतोर्घटविनाशेऽनुपलम्भादिति । ६ मुद्गर । ७ सर्वथाऽभावस्य । ८ प्रकारान्तरेण दूषयति । ९ हेतोः । १० अभावः । ११ विनाशस्वभावत्वाभावेऽन्यानपेक्षत्वमपि नोपपद्यते ततो विनाशस्वभावत्वं प्रत्यन्यानपेक्षत्वादिति हेतुरेव न स्यात्तदभावे च कथं साध्यसिद्धिरिति भावः । १२ शालिबीजं हि कोद्रवाङ्कुरजननं प्रत्यन्यानपेक्षं परन्तु शालिबीजे कोद्रवाङ्कुरजननसामर्थ्यं नास्त्यतः सा-

प्रति[1] अन्यानपेक्षत्वेऽपि तज्जननस्वभावानियतत्वात् । तत्स्व-भावत्वे[3] सतीति विशेषणान्न दोष इति चेन्न । सर्वथा पदा-र्थानां विनाशस्वभावासिद्धेः[4] । पर्यायरूपेणैव[5] हि भावानामु-[6]त्पादविनाशावङ्गीक्रियेते, न द्रव्यरूपेण[7]—समुदेति विलयमृ-च्छति भावो नियमेन पर्ययनयस्य[8][9] । नोदेति नो विनश्यति भावनयालिङ्गितो[10] नित्यम् ॥ १ ॥ इति वचनात् । नहि निर-न्वयविनाशे पूर्वक्षणस्य[11] ततो मृताच्छिखिनः केकायितस्येवो-त्तरक्षणस्योत्पत्तिर्घटते । द्रव्यरूपेण कथञ्चिदत्यक्तरूपस्यापि[12] सम्भवात् न सर्वथा भावानां विनाशस्वभावत्वं युक्तम् । न च द्रव्यरूपस्य गृहीतुमशक्यत्वादभावस्तद्ग्रहणोपायस्य[13] प्रत्य-भिज्ञानस्य[14] बहुलमुपलम्भात्तत्प्रमाण्यस्य[15] च प्रागेवोक्तत्वादुक्त-[16]

ध्याभावेऽपि साधनसद्भावादनैकान्तिकोऽयं हेतुः । १ नहि शालिबीज को-द्रवाङ्कुरजननं प्रत्यन्यमपेक्षते तस्य तज्जननसामर्थ्याभावात् । २ कोद्रवा-ङ्कुर । ३ बौद्धः प्राह सर्वे भावाः विनाशस्वभावनियताः तत्स्वभावत्वे सति तद्भाव प्रत्यन्यानपेक्षत्वादित्यनुमाने कृते नोक्तदोष इति । ४ नहि पदार्थानां सर्वथा विनाशस्वभावत्वं सम्भवति तदसम्भवे च पूर्वोक्तदोषः तद-वस्थ एवेति भावः । ५ पर्यायार्थकनयेन, पर्यायो विशेषोऽस्तीति मतिर-स्यासौ पर्यायार्थकनयस्तेन । ६ पदार्थानाम् । ७ द्रव्यार्थकनयेन, द्रव्यं सामान्यमस्तीति मतिरस्यासौ द्रव्यार्थकनयस्तेन । ८ विनश्यति । ९ पर्या-यार्थकनयस्य । १० द्रव्यार्थकनयेन । ११ पूर्वक्षणत् । १२ पदार्थस्य । १३ द्रव्यरूपग्रहणोपायस्य । १४ स एवायं घटो यं पूर्वमपश्यामित्यादिप्रत्य-भिज्ञानस्य । १५ प्रत्यभिज्ञान । १६ तृतीयाध्याये दर्शनस्मरणकारणक-

रकार्योत्पत्यन्यथा[1]नुपपत्तेश्च सिद्धत्वात्। यच्चान्यसाधनं सत्त्वा[2]ख्यं तद[3]पि विपक्ष[4]वत्स्वप[5]क्षेऽपि समान[6]त्वान्न सध्यसिद्धिनिबन्धनम्। तथा[7] हि सत्त्वमर्थक्रियया व्याप्तमर्थक्रिया च क्रमयौगपद्याभ्यां[8] ते च क्षणिकान्निवर्तमाने स्वव्याप्यमर्थक्रियामादाय निवर्तेते। सा[9] च निवर्तमाना स्वव्याप्य सत्वमिति नित्यस्येव क्षणिकस्यापि खरविषाणवद्सत्त्वमिति न त[10]त्र सत्वव्यवस्था। न च क्षणिकस्य वस्तुनः क्रमयौगपद्याभ्यामर्थक्रियाविरोधोऽसिद्धस्तस्य[11] देशकृतस्य कालकृतस्य वा क्रमस्यासम्भवात्। अवस्थितस्यैकस्य हि नानादेशकालकलाव्यापित्वं दे[12]शक्रमः का[13]लक्रमश्चाभिधीयते। न च क्षणिके [14]सोऽस्ति, "यो य[15]त्रैव स तत्रैव यो यदैव तदैव सः। न

मित्यादिस्थले। १ यदि वस्तु द्रव्यरूपेणान्वितं न स्यात्तदोत्तरकार्योत्पत्तिरपि न स्यादित्यन्यथानुपपद्यमानोत्तरकार्योत्पत्तेः द्रव्यरूपस्य सिद्धिः। २ सर्वे भावाः क्षणिकाः सत्वादित्यत्र। ३ साधनम्। ४ नित्यवत्। ५ अनित्यपक्षेऽपि यथा। ६ नित्ये क्रमयौगपद्याभ्यामर्थक्रिया न सम्भवति, क्रमयौगपद्याभ्यामर्थक्रियाकारित्वाभावाच्च तत्सत्त्वाभावस्तत्सत्वाभावे च तदभावस्तथाऽनित्येऽपीति समानम्। ७ एतदेव विवृणोति। ८ क्रमयौगपद्ये च। ९ अर्थक्रिया। १० क्षणिके। ११ क्रमस्येति सम्बन्धः। १२ अवस्थितस्यैकस्य नानादेशव्यापित्वं देशक्रमः। १३ अवस्थितस्यैकस्य कालकलाव्यापित्वं कालक्रमः। १४ देशक्रमः कालक्रमो वा। १५ यो भावो यस्मिन्क्षेत्र उत्पद्यते स तत्रैव विनश्यति, यो यस्मिन्काले समुत्पद्यते स

देशकालयोर्व्याप्तिर्भावानामिह विद्यत" इति "स्व[1]यमेवाभिधानात्। न च पूर्वोत्तरक्षणानामेकसन्तानापेक्षया क्रमः सम्भवति, सन्तानस्य वास्तवत्वे तस्या[2]पि क्षणिकत्वेन क्रमायोगाद[3]क्षणिकत्वे[4]ऽपि वास्तवत्वे तेनै[5]व सत्त्वादिसाधनमनैकान्तिकम्[6]। अ[7]वास्तवत्वे न तद[8]पेक्षः क्रमो युक्त इति। नापि यौगपद्येन त[9]त्रार्थक्रिया सम्भवति, युगपदेकेन स्वभावेन नानाकार्यकरणे तत्कार्यैकत्वं स्यात्। नानास्वभावकल्पनायां ते स्वभावास्ते[10]न व्यापनीयाः। तत्रैकेन स्वभावेन[11] त[12]द्व्याप्तौ तेषा[13]मेकरूपता, नानास्वभावेन चेद[14]नवस्था। अथै[15]क[16]त्रै[17]कस्योपादानभाव एवान्य[18]त्र सहकारिभाव इति न स्व[19]भावभेद इष्यते, त[20]र्हि नित्यस्यैकस्यापि वस्तुनः क्रमेण नानाकार्यकारिणः

तस्मिन्नेव काले विनाशं याति तस्माद्भावानामिह देशकालक्रमापेक्षया देशकालयोर्व्याप्तिर्नास्ति। १ बौद्धः। २ सन्तानस्यापि। ३ सन्तानस्य। ४ नित्यत्वेऽपि। ५ सन्तानेनैव। ६ सत्त्वादित्यस्य हेतोः पक्षे सत्त्वेऽपि साध्यविरुद्धविपक्षनित्यसन्ताने वर्तमानत्वात्तेन सन्तानेन व्यभिचारः। ७ सन्तानस्य। ८ सन्तानापेक्षः। ९ क्षणिके। १० क्षणिकेन। ११ नानास्वभावानाम्। १२ क्षणिकेन। १३ नानास्वभावानाम्। १४ नानास्वभावेन नानास्वभावानां व्याप्तिश्चेत्तेऽपि नानास्वभावाः केन व्यापनीया अपरनानास्वभावेन चेदनवस्थाऽपरापरनानास्वभावपरिकल्पनात्। १५ बौद्धः प्राह। १६ रूपक्षणादौ। १७ रूपक्षणादेः। १८ रसक्षणादौ। १९ क्षणिकवस्तुनि। २० एकस्य क्षणस्यैकत्रोपादानभावेऽन्यत्र सहकारिभावे

स्वभावभेदः कार्यसाङ्कर्यं[1] वा माभूत् । अक्रमात्[2] क्रमिणाम्[3]-नुत्पत्तेर्नैवमिति[4] चेदेकानंशकारणाद्युगपदनेककारणसाध्यानेककार्यविरोधादक्रमिणोऽपि न क्षणिकस्य कार्यकारित्वमिति । किञ्च[5] भवत्पक्षे[6] सतोऽसतो वा कार्यकारित्वम् ? सतः कार्यकर्तृकत्वे सकलकालकलाव्यापिक्षणानामेकक्षणवृत्तिप्रसङ्गः । द्वितीयपक्षे खरविषाणादेरपि कार्यकारित्वमसत्त्वाविशेषात् सत्त्वलक्षणस्य व्यभिचारश्च[7], तस्मान्न विशेषैकान्तपक्षः[8] श्रेयान् ॥ नापि सामान्यविशेषौ परस्परानपेक्षाविति[9] यौगमतमपि युक्तियुक्तमवभाति तयोर्[10]न्योन्यभेदे[11] द्वयोरन्यतरस्या[12]पि व्यवस्थापयितुमशक्तेः । तथा हि—विशेषास्तावत् द्रव्यगुणकर्मात्मनः[13] सामान्यं[14] तु परापरभेदाद्[15]द्विविधं,

---

सत्यपि स्वभावभेदाभावात । १ युगपदेनककार्याणां सम्प्राप्तः कार्यसाङ्कर्यम् । २ नित्यात् । ३ कार्याणाम् । ४ न दोषाभावोऽपि तु दोष एवेति भावः । ५ क्षणिकात् । ६ बौद्धपक्षे । ७ सत्वस्य यदर्थक्रियाकारित्वं लक्षणं तस्यासत्वेऽपि सम्भवात्सत्वलक्षणं व्यभिचारीति भावः । ८ अनित्यनिरंशपरस्परासम्बद्धपरमाणूनां कार्यकारित्वाभावात् । ९ परस्परनिरपेक्षौ । १० सामान्यविशेषयोः । ११ परस्पर । १२ केवलं सामान्यस्य विशेषस्य वा । १३ द्रव्यं गुणः कर्म चात्मा स्वरूपं येषां ते द्रव्यगुणकर्मात्मानः । १४ नित्यत्वे सत्येकसमवेतत्वं सामान्यत्वम् । अनेकसमवेतत्वं संयोगादीनामप्यस्त्यत उक्तं नित्यत्वे सतीति । नित्यत्वे सति समवेतत्व गगनपरमाणादीनामप्यस्त्यत उक्तं मनेकेति । नित्यत्वे सती—अनेकवृत्तित्वमत्य न्ताभावेऽप्यस्त्यतो वृत्तित्वसामान्यं विहाय समवेतत्वमित्युक्तम् । १५ सामान्यं

तत्र[3] परसामान्यात्सत्तालक्षणाद्विशेषाणां[3] भेदेऽसत्त्वापत्तिरिति । तथा च प्रयोगः । द्रव्यगुणकर्माण्यसद्रूपाणि सत्त्वादत्यन्तं भिन्नत्वात्प्रागभावादिवदिति । न सामान्यविशेषसमवायैर्व्यभिचारः । तत्र[4] स्वरूपसत्त्वस्याभिन्नस्य परैरभ्युपगमात् । ननु[6] द्रव्यादीनां प्रमाणोपपन्नत्वे धर्मिग्राहकप्रमाणबाधितो हेतुर्येन हि प्रमाणेन द्रव्यादयो निश्चीयन्ते तेन[9] [10]तत्सत्त्वमपीति[11] । अथ 'न प्रमाणप्रतिपन्ना द्रव्यादयस्तर्हि[12] हेतोराश्रयासिद्धिरिति' तदयुक्तम् । प्रसङ्गसाधनात्प्रागभावादौ हि सत्त्वाद्भेदोऽसत्त्वेन व्याप्त उपलभ्यते ततश्च व्याप्यस्य द्रव्यादावभ्युपगमो व्यापकाभ्यु-

---

द्विविधं प्रोक्तं परं चापरमेव च द्रव्यादित्रिकवृत्तिस्तु सत्ता परतयोच्यते ।१। परभिन्ना च या जातिः सैवापरतयोच्यते । द्रव्यत्वादिकजातिस्तु परापरतयोच्यते ।२। व्यापकत्वात्परापि स्याद्व्याप्यत्वादपरापि च । महद्देशव्यापित्वं परत्वमल्पदेशव्यापित्वमपरत्वमिति । १ द्रव्ययोर्मध्ये । २ द्रव्यगुणकर्मात्मनाम् । ३ सत्वादत्यन्तं भिन्नत्वादिति हेतोः । ४ सामान्यविशेषसमवायेषु । ५ यौगैः । ६ योगः प्राह । ७ द्रव्यादयः प्रमाणोपपन्नाः प्रमाणानुपपन्ना वेति विकल्पद्वयमाश्रित्य दूषयति । ८ सत्वादत्यन्तं भिन्नत्वादिति हेतुः कालात्ययापदिष्ट इति भावो यतो येन प्रमाणेन द्रव्यादयो गृह्यन्ते तेनैव प्रमाणेन द्रव्यादिसत्वमपि गृह्यतामिति प्रमाणबाधितपक्षानन्तरं प्रयुक्तत्वाद्धेतोः कालत्ययापदिष्टत्वमिति । ९ प्रमाणेन । १० द्रव्यादि । ११ निश्चीयतामिति शेषः । १२ द्रव्यादीनां प्रमाणाप्रतिपन्नत्वात् ।

पगमनान्तरीयक[1] इति प्रसङ्गसाधने-अस्य[2] दोषस्याभावात् ।[3] एतेन द्रव्यादीनामप्यद्रव्यादित्वं द्रव्यत्वादेर्भेदे चिन्तितं बोद्धव्यम् । कथं वा षण्णां पदार्थानां परस्परं भेदे प्रतिनियत[4]स्वरूपव्यवस्था ? द्रव्यस्य हि द्रव्यमिति व्यपदेशस्य द्रव्यत्वाभिसम्बन्धाद्विधाने ततः[5] पूर्वं द्रव्यस्वरूपं किञ्चिद्वाच्यं, येन[6] सह द्रव्यत्वाभिसम्बन्धः स्यात् । द्रव्यमेव स्वरूपमिति चेन्न, तद्व्य[7]पदेशस्य द्रव्यत्वाभिसम्बन्धनिबन्धनतया स्वरूपत्वायोगात् । सत्त्वं निजं[8] रूपमिति चेन्न, तस्[9]यापि सत्तासम्बन्धादेव[10] तद्व्य[11]पदेशकरणात् । एवं[12] गुणादिष्वपि वाच्यम् । केवलं सामान्यविशेषसमवायानामेव स्वरूपसत्त्वेन तथा[13]व्यपदेशोपपत्तेस्[14]तत्त्रयव्यवस्थैव स्यात् । ननु जीवादिपदार्थानां सामान्यविशेषात्मकत्वं स्याद्वादिभिरभिधीयते तयोश्च वस्तु

---

१ असत्वं व्यापकः सत्वाद्भेदो व्याप्यः, स च सत्वाद्भेदः प्रागभावादावसत्वेन व्याप्त उपलब्धः सन् द्रव्यादावसत्वं साधयत्येव व्याप्याभ्युपगमो व्यापकाभ्युपगमनान्तरीयकमिति नियमात् । २ पूर्वोक्तदोषस्य । ३ द्रव्यादीनां सत्वादत्यन्तं भेदसाधनेन । ४ द्रव्येभ्यो द्रव्यत्वं भिन्नं गुणाश्च भिन्नास्तथा सति द्रव्यत्वस्य द्रव्य एव सम्बन्ध न गुणादिष्विति प्रतिनियमाभावात्प्रतिनियतपदार्थव्यवस्था कथं स्यादिति भावः । ५ द्रव्यत्वाभिसम्बन्धात् । ६ द्रव्यस्वरूपेण । ७ द्रव्यव्यपदेशस्य । ८ द्रव्यस्य सत्वमेव द्रव्यस्वरूपम् । ९ सत्वस्यापि । १० द्रव्ये । ११ सत्वव्यपदेश । १२ द्रव्यवत् । १३ सत्वव्यपदेशोपपत्तेः । १४ सामान्यविशेषसमवाय । १५ सामान्यविशे–

नोर्भेदाभेदाविति । तौ[1]च विरोधादिदोषोपनिपातान्नैकत्र[2] सम्भ-
विनाविति । तथाहि[3]—भेदाभेदयोर्विधिनिषेधयोरेकत्राभिन्ने
वस्तुन्यसम्भवः[4] शीतोष्णस्पर्शयोर्वेति[5] ॥ १ ॥ भेदस्यान्यदधि
करणमभेदस्य चान्यदिति वैयधिकरण्यम् ॥ २ ॥ यमात्मानं[6]
पुरोधाय[7] भेदो यं च समाश्रित्याभेदः तावात्मनौ भिन्नौ
चाभिन्नौ च[8] तत्रापि[9] तथा परिकल्पनादनवस्था[10] ॥ ३ ॥ येन
रूपेण[11] भेदस्तेन भेदश्चाभेदश्चेति सङ्करः[12] ॥ ४ ॥ येन भेदस्ते-
नाभेदो येनाभेदस्तेन भेद इति व्यतिकरः ॥ ५ ॥ भेदाभेदा-
त्मकत्वे च वस्तुनोऽसाधारणाकारेण[13] निश्चेतुमशक्तेः संशयः[14]
॥६॥ ततश्चा[15]प्रतिपत्तिस्ततो[16]ऽभावः ॥ ७-८ ॥ इत्यनेकान्तात्म-
कमपि न सौस्थ्यमाभजतीति केचित्[17] । तेऽपि न प्रातीतिकवा[18]-

षयोः । १ भेदाभेदौ । २ एकस्मिन्वस्तुनि । ३ तदेवाष्टदोषोपनि-
पातित्वं दर्शयति । ४ यथा शीतोष्णयोरेकत्राभिन्नवस्तुन्यसम्भवस्तथा
भिन्नाभिन्नयोस्तस्माद्भिन्नाभिन्नयोरेकत्र विरोधः । एकावच्छेदेनैकाधिकरणकत्वा-
भावो विरोधः । ५ इवार्थे वाशब्दः । ६ स्वरूपम् । ७ पुर-
स्कृत्य । ८ द्वयोरात्मनोरपि । ९ भिन्नाभिन्नपरिकल्पनात् । १० अप्रा-
माणिकानन्तप्रवाहमूलकप्रसङ्गत्वमिति । ११ स्वरूपेण । १२ परस्परा-
त्यन्ताभावसमानाधिकरणयोर्धर्मयोरेकत्र समावेशः शङ्करः । १३ असाधार-
णस्वरूपेण । १४ शुक्तिकेयं रजतं वेति चलितप्रतिपत्तिः संशयः । १५ संश-
याच्च । १६ प्रतिपत्त्यभावात् । १७ यौगादयः । १८ यथार्थवादिनः ।

दिनः । विरोधस्य प्रतीयमानयोरसम्भवादनुपलम्भसाध्यो हि विरोधः, तत्रोपलभ्यमानयोः को विरोधः ? यच्च शीतोष्णस्पर्शयोर्वेति दृष्टान्ततयोक्तं तत्र धूपदहनाद्येकावयविनः शीतोष्णस्पर्शस्वभावस्योपलब्धेरयुक्तमेव । एकस्य चलाचलरक्तारक्तावृतानावृतादिविरुद्धधर्माणां युगपदुपलब्धेश्च प्रकृतयोरपि न विरोध इति । एतेन वैयधिकरण्यमप्यपास्तम् । तयोरेकाधिकरणत्वेन प्रतीतेः । अत्रापि प्रागुक्तनिदर्शनान्येव बोद्धव्यानि । यच्चानवस्थानं दूषणं तदपि स्याद्वादिमतानभिज्ञैरेवापादितम् । तन्मतं हि सामान्यविशेषात्मके वस्तुनि सामान्यविशेषावेव भेदः । भेदध्वनिनो तयोरेवाभिधानात् । द्रव्यरूपेणाभेद इति द्रव्यमेवाभेद, एकानेकात्मकत्वाद्वस्तुनः । यदि वा भेदनयप्राधान्येन वस्तुधर्माणामानन्त्यान्नानवस्था । तथा हि—यत्सामान्यं यश्च विशेषस्त-

१ भेदाभेदयोः । २ एकस्मिन्वस्तुनि । ३ भेदाभेदयोः । ४ इवार्थे वा शब्दः । ५ शीतस्पर्शयोर्दृष्टान्ततया कथनम् । ६ वस्तुनः । ७ भेदाभेदयोरपि । ८ एकत्रोपलब्धौ । ९ एकत्र वस्तुनि भेदाभेदयोर्विरोधनिराकरणेन । १० भेदाभेदयोः । ११ वैयधिकरण्यनिराकरणप्रकरणेऽपि । १२ एकस्य चलाचलादिनिदर्शनानि योज्यानि । १३ स्याद्वादिनां मतम् । १४ सामान्यविशेषयोरेव । १५ द्रव्यार्थिकनयप्राधान्येन । १६ द्रव्यदृष्ट्या वस्त्वेकरूपं पर्यायदृष्ट्याऽनेकरूपमिति भावः । १७ अथवा । १८ वस्तुधर्मानन्त्यप्रकारमेव प्रदर्शयति । १९ सामान्य-

योरनुवृत्त[1]व्यावृत्ताकारेण भेदस्तयो[3]श्चार्थक्रियाभेदाद्भेद[4]श्च शक्तिभेदात् सो[5]ऽपि सहकारिभेदादित्यनन्तधर्माणामङ्गीकरणात् कुतोऽनवस्था । तथा चोक्तम् । मूलक्षतिकरीमाहुरनवस्थां हि दूषणम् । वस्त्वानन्त्येप्यश[6]क्तौ च नानवस्था विचार्यते ॥ १ ॥ इति । यौ च सङ्करव्यतिकरौ तावपि मेचकज्ञा[7]ननिदर्शनेन सामान्यविशेषदृष्टान्तेन च परिहृतौ । अथ तत्र[8] तथा[9] प्रतिभासनं पर[10]स्यापि वस्तुनि तथैव[11] प्रतिभासोऽस्तु तस्य[12] पक्षपाताभावान्निर्णीते[13] संशयोऽपि न युक्तः तस्य[14] चलितप्रतिपत्तिरूपत्वादचलितप्रतिभासे दुर्घटत्वात् । प्रतिपन्ने

विशेषयोः । १ गौर्गौरित्यनुवृत्ताकारः । २ श्यामः शवलो न भवतीति व्यावृत्ताकारः । ३ अनुवृत्ताकारव्यावृत्ताकारयोः । ४ अर्थक्रियायां च शक्तिभेदाद्भेदः । ५ शक्तिभेदोऽपि । ६ वस्तुविकल्पपरिसमाप्तौ । ७ सङ्करो मेचकज्ञाननिर्देशनेन, व्यतिकरः सामान्यविशेष्यदृष्टान्तेन परिहृतः । ८ यथा मेचके नीलाद्यनेकप्रतिभासे सति नहि शक्यं वक्तुं यद्येन रूपेण पीतप्रतिभासस्तेन रूपेण पीतप्रतिभासश्च नीलप्रतिभासश्च, भिन्नाकारेण प्रतिभासश्चास्ति तथैकस्मिन्वस्तुनि भेदाभेदव्यवस्था सुघटा । ९ नहि येन रूपेण विशेषस्तेन रूपेण सामान्यं, येनरूपेण सामान्यं तेन रूपेण वा विशेषः पर्यायदृष्ट्या सामान्यं तथैव भेदाभेदयोरपि योज्यमिति न व्यतिकरदोषावकाशः । १० मेचकज्ञाने सामान्यविशेषयोर्वा । ११ चित्राकारेण सामान्यविशेषरूपेण च । १२ जैनस्यापि । १३ भेदाभेदरूपेण । १४ प्रतिभासस्य । १५ प्रतिभासबलेन । १६ संशयस्य ।

वस्तुन्यप्रतिपत्तिरित्यतिसाहसम् । उपलभ्यभिधानादनुपलम्भोऽपि[1] न सिद्धस्ततो नाभाव इति दृष्टेष्टाविरुद्धमनेकान्तशासनं सिद्धम् । एतेनावयवावयविनो[2][3]र्गुणगु[4]णिनोः कर्मतद्वतो[5]श्च कथंचिद्भेदाभेदौ प्रतिपादितौ बोद्धव्यौ । अथ समवायवशाद्भिन्नेष्वप्यभेदप्रतीतिरनुपपन्नब्रह्मतुल्याख्यज्ञानस्येति[6][7] चेन्न, तस्यापि[8] ततो[9] भिन्नस्य व्यवस्थापयितुमशक्तेः । तथा हि—समवायवृत्तिः स्वसमायिषु वृत्तिमती स्यादवृत्तिमती वा ? वृत्तिमत्त्वे[10] स्वेनैव वृत्त्यन्तरेण वा ? न तावदाद्यः पक्षः[11] समवाये समवायानभ्युपगमात् । पञ्चानां समवायित्वमिति वचनात् । वृत्त्यन्तरकल्पनायां[12][13] तदपि[14] स्वसम्बन्धिषु वर्तते न वेति

१ अनुपलम्भाभावात् । २ विरोधादिदोषपरिहारेण । ३ कपालघटयोः । ४ ज्ञानात्मनोः । ५ क्रियाक्रियावतोः । ६ घटादीनां कपालादौ द्रव्येषु गुणकर्मणोः । तेषु जातेश्च सम्बन्धः समवायः प्रकीर्तितः ।१। अवयवावयविनोर्जातिव्यक्त्योर्गुणगुणिनोः क्रियाक्रियावतोर्नित्यद्रव्यविशेषयोश्च यः सम्बन्धः स समवाय इति समवायवशात् । ७ अनुत्पन्नं ब्रह्मतुल्याख्यं ब्रह्मसदृशं ज्ञानं यस्य तस्य किंचिज्ज्ञस्येति भावः । ८ समवायस्यापि । ९ पदार्थेभ्यः । १० वृत्तिमत्त्वे स्वेनैव स्वसमायिषु वृत्तिमती वृत्त्यन्तरेण वा स्वसमवायिषु वृत्तिमती । ११ समवायेन समवायः समवायिषु वर्तते चेद्द्रव्यादयः पञ्च भावा अनेके समवायिन इति ग्रन्थविरोधः स्यात्, नहि परैः समवाये समवायः स्वीकृतः । १२ द्वितीयपक्षमवलम्ब्य दूषयति । १३ विशेषणविशेष्यभावेन समवायः समवायिषु वर्तते च । १४ वृत्त्यन्तरमपि ।

कल्पनायां[1] वृत्यन्तरपरम्पराप्राप्तेरनवस्था । वृत्यन्तरस्य[2] स्वसंबन्धिषु[3] वृत्यन्तरानभ्युपगमन्नानवस्थेति चेत्तर्हि समवायेऽपि वृत्यन्तरं माभूत् । अथ समवायो न स्वाश्रयवृत्तिरङ्गीक्रियते, तर्हि षण्णामाश्रितत्वमिति ग्रन्थो विरुध्यते । अथ समवायिषु सत्स्वेव समवायप्रतीतेस्तस्य[4]ाश्रितत्वमुपकल्प्यते[5] तर्हि मूर्तद्रव्येषु सत्स्वेव दिग्लिङ्गस्येदमतः पूर्वेण इत्यादिज्ञानस्य काललिङ्गस्य च परापरादिप्रत्ययस्य सद्भावात्तयोरपि[6] तदाश्रितत्वं[7] स्यात् । तथा चायुक्तमेतदन्यत्र नित्यद्रव्येभ्य इति । किञ्च समवायस्य[8]नाश्रितत्वे सम्बन्धरूपतैव न घटते । तथा च प्रयोगः—समवायो न सम्बन्धः । अनाश्रितत्वाद्दिगादिवदिति । अत्र[9] समवायस्य धर्मिणः कथंचित्तादात्म्यरूपस्यानेकस्य च परैः[10] प्रतिपन्नत्वाद्धर्मिग्राहक

---

१ व्यत्यन्तरं स्वसम्बन्धिषु वर्तते नवा वर्तते चेत्स्वेनैव वृत्यन्तरेण वा, स्वेनैव स्वसम्बन्धिषु वर्तते चेत्समवायेऽपि वृत्यन्तरं माभूत् । वृत्यन्तरेण वर्तते चेत्तदपि वृत्यन्तरं स्वेनैव वृत्यन्तरेण वा स्वसमवायिषु वर्तते प्रथमपक्षे समवायेऽपि वृत्यन्तरं माभूत् द्वितीयपक्षे परापरवृत्यन्तरपरिकल्पनायामनवस्था । २ विशेषणविशेष्यभावस्य । ३ दण्डदण्डिषु । ४ समवायस्य । ५ उपचर्यते । ६ दिक्कालयोरपि । ७ मूर्तद्रव्याश्रितत्वं स्यादिति । ८ यदि समवायः स्वाश्रयवृत्तिर्न स्यात्तदा सम्बन्ध एव न स्यात् । ९ समवायः प्रमाणप्रतिपन्नोऽप्रतिपन्नो वा, प्रथमपक्षे धर्मिग्राहकप्रमाणानन्तर हेतोः प्रयोगात्कालात्ययापदिष्टत्वमनाश्रितत्वादिति हेतोः, द्वितीयपक्षे हेतोराश्रयासिद्धिरिति योगशङ्कां मनसि कृत्वा परिहरति जैनः । १० जैनैः ।

प्रमाणबाध आश्रयासिद्धिश्च न वाच्येति, तस्या[1]श्रितत्वे-ऽप्येतदभिधीयते न समवाय एकः सम्बन्धा[2]त्मकत्वे सत्याश्रितत्वात् संयोगवत् । सत्तयाऽनेकान्त इति सम्बन्धविशेषणम् । अथ संयोगे निविडशिथिलादिप्रत्ययनानात्वान्नानात्वं नान्यत्र[3] विपर्ययादिति[4] चेन्न, समवायेऽप्युत्पत्तिमत्त्वनश्वरत्वप्रत्ययनानात्वस्य सुलभत्वात् । सम्बन्धिभेदाद्भेदोऽन्यत्रापि[5] समान इति नैकत्रैव[6] पर्यनुयोगो युक्तः । तस्मात्समवायस्य परपरिकल्पितस्य विचारासहत्वान्न तद्वशाद्गुणगुण्यादिष्वभेदप्रतीतिः । अथ भिन्नप्रतिभासादवयव्याद्ययवयव्यादीनां भेद एवेति चेन्न, भेदप्रतिभासस्याभेदा[10]विरोधात् । घटपटादीनामपि कथञ्चिदभेदोपपत्तेः । सर्वथा प्रतिभासभे-दस्यासिद्धेश्च[11] । इदमित्याद्यभेदप्रतिभासस्यापि भावात्ततः

---

१ समवायस्य । २ सत्ताऽप्याश्रिताऽनेका च तस्मात्तद्वारणाय सम्बन्धत्वे सतीति विशेषणम् । ३ समवाये । ४ निविडशिथिलादिप्रत्ययनानात्वाभावात् । ५ समवायेऽपि । ६ संयोग एव । ७ यौग । ८ समवाय । ९ यौगः प्राह । १० द्रव्यार्थिकं गुणं कृत्वा पर्यायार्थिकप्राधान्येनान्यो गुणोऽन्यद्द्रव्यमन्यो पर्याय इति । पर्यायार्थिकं गुणं कृत्वा द्रव्यार्थिकप्राधान्येन एकमेव सन्मात्रं तत्वं यतोऽनादिपारिणामिकद्रव्यस्यैव घटाद्यनेके पर्यायाः प्रतीयन्ते नहि तद्व्यतिरिक्ताः घटादिपर्यायाः गुणाः वा सन्ति ॥ ११ नहि रूपादिगुणाः पुद्गलद्रव्यात्सर्वथा भिन्ना प्रतीयन्ते रूपादिगुणानां प्रतीतिरस्त्वस्ति तस्मात्कथञ्चिद्भेदोऽभ्युपेयः सर्वथाभेदेऽभेदे च प्रमाणविरोधात् ॥

कथंचिद्भेदाभेदात्मकं द्रव्यपर्यायात्मकं सामान्यविशेषात्मकं च तत्त्वं तीरादर्शिशकुनिन्यायेनायातमित्यलमतिप्रसंगेन। इदानीमनेकान्तात्मकवस्तुसमर्थनार्थमेव हेतुद्वयमाह—

अनुवृत्त[1]व्यावृत्त[2]प्रत्ययगोचरत्वात्पूर्वोत्तराकार[3]परिहारावाप्तिस्थिति[4]लक्षणपरिणामेनार्थक्रियोपपत्तेश्चेति॥ २॥

अनुवृत्ताकारो हि गौर्गौरित्यादिप्रत्ययः। व्यावृत्ताकारः श्यामः शवल इत्यादिप्रत्ययः। तयोर्गोचरस्तस्य भावस्तत्त्वं तस्मात्। एतेन तिर्यक्सामान्यव्यतिरेकलक्षणविशेषद्वयात्मकं वस्तु साधितम्। पूर्वोत्तराकारयोर्यथासंख्येन परिहारावाप्ती ताभ्यां स्थितिः, सैव लक्षणं यस्य, स चासौ परिणामश्च तेनार्थक्रियोपपत्तेश्चेत्यनेन तूर्ध्वतासामान्यपर्यायाख्यविशेषद्वयरूपं वस्तु समर्थितं भवति। अथ प्रथमोद्दिष्टसामान्यभेदं

---

१ अनुवृत्ताकारप्रत्ययेन तिर्यक्सामान्यं साधितम्। २ व्यावृत्ताकारप्रत्ययेन व्यतिरेकविशेषः साधितः। ३ पूर्वोत्तराकारौ पर्यायौ, पर्यायविशेषः। ४ स्थितिलक्षणं द्रव्यमूर्ध्वतासामान्यम्। ५ प्रमाणविषयः सामान्यविशेषात्मा अनुवृत्तव्यावृत्तप्रत्ययगोचरत्वात् यो यदाकारोल्लेखिप्रत्ययगोचरः स तदात्मको दृष्टो यथा नीलाकारोल्लेखिप्रत्ययगोचरो नीलस्वभावोऽर्थः सामान्यविशेषाकारोल्लेख्यनुवृत्तव्यावृत्तप्रत्ययगोचरश्चाखिलो बाह्याध्यात्मिकप्रमेयोऽर्थः। तस्मात्सामान्यविशेषात्मेति तथा पूर्वोत्तराकारपरिहारावाप्तिस्थितिलक्षणपरिणामेनार्थक्रियोपपत्तेश्च प्रमाणविषयः सामान्यविशेषात्मा सिद्धय-

दर्शयन्नाह—

सामान्यं द्वेधा तिर्यगूर्ध्वताभेदात् ॥ ३ ॥

प्रथमभेदं सोदाहरणमाह—

सदृशपरिणामस्तिर्यक्, खण्डमुण्डादिषु गोत्ववत् ॥ ४ ॥

नित्यैकरूपस्य गोत्वादेः क्रमयौगपद्याभ्यामर्थक्रियाविरोधात्। प्रत्येकं परिसमाप्त्या[2] व्यक्तिषु[3] वृत्त्ययोगाच्चानेकं[4] सदृशपरिणामात्मकमेवेति तिर्यक्सामान्यमुक्तम्। द्वितीयभेदमपि सदृष्टान्तमुपदर्शयति—

परापरविवर्त्तव्यापि[6] द्रव्यमूर्ध्वता मृदिव स्थासादिषु[7]विति ॥ ५ ॥

सामान्यमिति वर्तते तेनायमर्थः—ऊर्ध्वतासामान्यं भवति। किंतत्? द्रव्यम्, तदेव विशिष्यते परापरविवर्तव्यापीति पूर्वापरकालवर्ति त्रिकालानुयायीत्यर्थः। चित्रज्ञानस्यैकस्य युगपद्भाव्यनेकस्वगतनीलाद्याकारव्याप्तिवदेकस्य क्रमभाविपरिणामव्यापित्वमित्यर्थः। विशेषस्यापि द्वैविध्यमुप

तीति भावः। १ सास्नादिमत्वेन। २ साकल्येन। ३ प्रत्येकं गोव्यक्तिषु। ४ नित्यैकरूपस्य गोत्वादेः। ५ प्रत्येकगोव्यक्तिभिन्नं सदृशपरिणामात्मकं गोत्वाद्यनेकमिति। ६ पर्यायरूपविशेषव्यापित्वाद्व्यक्तिनिष्ठत्वमूर्ध्वतासामान्यं सिद्धम्। ७ पर्यायेषु। ८ तदेव जैनैरुपादानकारणं प्रोक्तं नैयायिकादिभिश्च समवायिकारणमुक्तमित्यर्थः। ९ द्रव्यस्य।

दर्शयति—

विशेषश्चेति[1][2] ॥ ६ ॥

द्वेधेत्यधिक्रियमाणेनाभिसम्बन्धः। तदेव[3] प्रतिपादयति—

पर्यायव्यतिरेकभेदादिति ॥ ७ ॥

प्रथमविशेषभेदमाह—

एकस्मिन्द्रव्ये क्रमभाविनः परिणामाः पर्यायाः[4][5] आत्मनि हर्षविषादादिवदिति ॥ ८ ॥

अत्रात्मद्रव्यं स्वदेहप्रमितिमात्रमेव[6] न व्यापकम्। नापि वटकणिकामात्रम्[7]। न च कायाकारपरिणतभूतकदम्बकम्[8] इति, तत्र[10] व्यापकत्वे[11] परेषामनुमानमात्मा व्यापक द्रव्यत्वे

---

१ यथा द्वेधा सामान्यं तथा विशेषश्चेत्याभिसम्बन्धः। २ चकारोऽपिश-ब्दार्थे। ३ द्विविधमेव। ४ ज्ञानसुखवीर्यादयः। ५ ज्ञानसुखवीर्य-दर्शनादय आत्मनः सहभावित्वाद्गुणाः स्युः, क्रमभावित्वाच्च ते पर्यायाश्च भवन्ति कुतो—वस्तुनोऽनेकधर्मात्मकत्वात्। ६ सुख्यहं दुःख्यहं घटादिक-महं वेद्मीत्यहमहमिकया स्वदेह एव सुखादिस्वभावतयाऽऽत्मा प्रतीयते, पर-सम्बन्धिनि देहान्तरेऽन्तराले वा न प्रतीयते। तथापि व्यापकत्वपरिकल्पनायां तस्य सर्वदर्शित्वं भोजनादिव्यवहारसङ्करश्च स्यात्तस्य सर्वैरात्मभिः सम्बन्धा-दिति। ७ सर्वशरीरे सुखादिप्रतीतेर्विरोधान्नापि वटकणिकामात्रमिति। ८ पृथिव्यप्तेजोवायुरूपभूतकदम्बकमिति। ९ अचेतनैर्भूतकदम्ब-कैश्चेतनात्मन उत्पत्तिविरोधात्। १० त्रिषु मध्ये। ११ यौगानाम्।

सत्यमूर्तत्वादाकाशवदिति तत्र यदि रूपादिलक्षणं मूर्तत्वं तत्प्रतिषेधोऽमूर्तत्वं तदा मनसाऽनेकान्तः। अथासर्वगतद्रव्यपरिमाणं मूर्तत्वं तन्निषेधस्तथा चेत्परंप्रति साध्यसमो हेतुः । यच्चापरमनुमानं-आत्मा व्यापकः अणुपरिमाणानधिकरणत्वे सति नित्यद्रव्यत्वादाकाशवदिति। तदपि न साधुसाधनम् । अणुपरिमाणानधिकरणत्वमित्यत्र किमयं नञर्थः पर्युदासः प्रसज्यो वा भवेत् ? तत्राद्यपक्षे अणुपरिमाणप्रतिषेधेन महापरिमाणमवान्तरपरिमाणं परिमाणमात्रं वा ? महापरिमाणं चेत् साध्यसमो हेतुः । अवान्तरपरिमाणं चेत् विरुद्धो

---

१ द्रव्यत्वे सत्यमूर्तत्वादिति साधने । २ रूपादिलक्षणप्रतिषेधोऽमूर्तत्वम् । ३ मनसि द्रव्यत्वे सति रूपादिलक्षणप्रतिषेधरूपामूर्तत्वं वर्तते परन्तु व्यापकत्वं नास्ति तस्माद्द्रव्यत्वे सत्यमूर्तत्वादिति हेतोः पक्षसपक्षविपक्षवृत्तित्वादनैकान्तिकत्वमिति । ४ अमूर्तत्वम् । ५ जैनं प्रति । ६ यद्यसर्वगतद्रव्यपरिमाणनिषेधोऽमूर्तत्वं तर्हि व्यापकत्वामूर्तत्वयोर्न कश्चिद्विशेषः स्यादेवं सत्यात्मा व्यापको व्यापकत्वादित्यायातमिति साध्यसमोऽयं हेतुः यथा साध्ये विवादस्तथा हेतावपीत्यर्थः । ७ परमाणुभिरनेकान्तपरिहारार्थमणुपरिमाणानधिकरणत्वे सतीति विशेषणं यतः परमाणुषु नित्यत्वमस्ति व्यापकत्वं नास्ति । ८ साधने । ९ भावान्तरस्वभावः । १० तुच्छाभावरूपो वा । ११ पर्युदासपक्षे । १२ महापरिमाणस्यार्थो हि व्यापकत्वं, तथा सत्यात्मा व्यापको व्यापकत्वादित्यायातमिति यथाऽनित्यः शब्दोऽनित्यत्वे सति बाह्येन्द्रियप्रत्यक्षत्वादित्यत्र हेतोः साध्यसमत्वं तथा प्रकृतेऽपीति भावः । १३ व्यापकत्वविरुद्धाव्यापकत्वेनावान्तरपरिणा-

हेतुरवान्तरपरिमाणाधिकरणत्वं ह्यव्यापकत्वमेव साधयतीति । परिमाणमात्रं चेत्—तत्परिमाणसामान्यमङ्गीकर्तव्यम्[1] । तथा चाणुपरिमाणप्रतिषेधेन परिमाणसामान्याधिकरणत्वमात्मन इत्युक्तम् । तच्[2]चा[3]नुपपन्नं, व्यधिकर[4]णासिद्धिप्रसंगात् । न हि परिमाणसामान्यमात्मनि व्यवस्थितं किन्तु परिमाणव्यक्तिष्वेवेति । न[5] चावान्तरमहापरिमाणद्वयाधारतयाऽऽत्मन्यप्रतिपन्ने परिमाणमात्राधिकरणता त[6]त्र निश्चेतुं शक्[7]या । दृष्टान्तश्च साधनविकलः । आकाशस्य महापरिमाणाधिकरणतया[8] परिमाणमात्राधिकरणत्वायोगात् । नित्यद्र[9]व्यत्वं च सर्वथाऽसिद्धम् । नित्यस्य क्रमाक्र[10]माभ्यामर्थक्रियाविरोधादिति । प्रसज्यपक्षेऽपि तुच्छाभावस्य ग्रहणोपायासं[11]भवात् न विशेषणं[12]

मस्य हेतोर्व्याप्त्यत्वाद्विरुद्धत्वमणुपरिमाणानधिकरणत्वे सति नित्यद्रव्यत्वादिति हेतोः । १ भवतीति शेषः । २ परिमाणसामान्याधिकरणम् । ३ आत्मनः । ४ यथा द्रव्यत्वस्य द्रव्य एव समवायो, गुणत्वस्य गुण एव तथा परिमाणसामान्यस्य (परिमाणत्वस्य) परिमाण एव समवाय नात्मनीति व्यधिकरणासिद्धिरिति । ५ दूषणान्तरं दीयते । ६ आत्मनि । ७ आत्मनि परिमाणविशेषाधिकरणाऽसिद्धे नहि परिमाणसामान्याधिकरणकल्पना युज्यते, सामान्यस्याशेषविशेषनिष्ठत्वात् । ८ प्रतिपन्नत्वात् । ९ हेतोर्विशेष्यासिद्धिमुद्भावयति । १० युगपत् । ११ सर्वथाऽभावस्य ग्राहकं प्रमाणं नास्तीति भावः । १२ अणुपरिमाणानधिकरणत्वे सतीति हेतोर्विशेषणं यदि तुच्छाभावरूपं तर्हि तद्ग्रहणोपायाभावाद्धेतोर्विशेषणासिद्धिर्नागृही-

त्वम् । न चागृहीतविशेषणं नाम, न चागृहीविशेषणा विशेष्ये बुद्धिरितिवचनाच्च प्रत्यक्षं तद्ग्रहणोपायः सम्बन्धाभावादिन्द्रियार्थसन्निकर्षजं हि प्रत्यक्षं तेन्मते प्रसिद्धम् । विशेषणविशेष्यभावकल्पनायामभावस्य नागृहीतस्य विशेषणत्वमिति तदेव दूषणम् । तस्मान्न व्यापकमात्मद्रव्यम् । नापि वटकणिकामात्रं कमनीयकान्ताकुचजघनसंस्पर्शकाले प्रतिलोमकूपमाल्हादनकारस्य सुखस्यानुभवनात् । अन्यथा सर्वाङ्गीण रोमाञ्चादिकार्योदयायोगात् । आशुवृत्त्यालातचक्रवत् क्रमेणैव तत्सुखमित्यनुपपन्नम् । परापरान्तःकरणसम्बन्धस्य तत्कारणस्य परिकल्पनायां व्यवधानप्रसङ्गात् । अन्यथा सुखस्य मानसप्रत्यक्षत्वायोगादिति । नापि पृथिव्यादिचतुष्टयात्मकत्वमात्मनः सम्भाव्यते । अचेतनेभ्यश्चैतन्योत्पयोगाद्धारणेरणद्रवोष्णतालक्षणान्वयाभावाच्च । तद्देहजाति

तावशेषणं नामेति नियमात्तदासद्धौ च नित्यद्रव्यत्वादिति विशेष्यासिद्धिश्च । ना गृहीतविशेषणा विशेष्ये बुद्धिरिति नियमात् । नहि दंडाग्रहणे दंडिनि बुद्धिर्युज्यते । १ अगृहीतं विशेषणं न भवतीति भावः । २ अगृहीतं विशेषणं यया सा । ३ दण्डिनि । ४ तुच्छाभाव । ५ सौगमते । ६ पूर्वोक्तमेव । ७ आत्मनो व्यापककल्पनायामनेकदोषसंभवात् । ८ सर्वाङ्गीणम् । ९ यदि कमनीयकान्ताकुचजघनसंस्पर्शकाले प्रतिलोमकूपमाल्हादनाकारं सुखं न भवति चेत् । १० शीघ्रवृत्त्या । ११ सुखकारणस्य । १२ तत्सुखं मानसं नेति शंकायामाह तत्सुखस्य मानसत्वाकल्पेन । १३ धारणलक्षणा पृथिवी । १४ ईरणलक्षणो वायुः । १५ द्र-

बालकस्य स्तनादावभिलाषाभावप्रसङ्गाच्च । अभिलाषो हि प्रत्यभिज्ञाने भवति, तच्च[1] स्मरणे. स्मरणं चानुभावे भवतीति पूर्वानुभवः सिद्धः । मध्यदशायां[2] तथैव[3] व्याप्तेः । मृतानां रक्षोयक्षादिकुलेषु स्वयमुत्पन्नत्वेन कथयतां दर्शनात्, केषाञ्चित् भवस्मृतेरुपलम्भाच्चानादिश्चेतनः सिद्ध एव । तथा चोक्तम्–

तदहर्जस्तनेहातो रक्षोदृष्टेर्भवस्मृतेः । भूतानन्वयनात्[4] सिद्धः प्रकृतिज्ञः सनातनः ॥ १ ॥ इति । न च स्वदेहप्रमितिरात्मेत्यत्रापि प्रमाणाभावात् सर्वत्र संशय इति वक्तव्यं तत्रानु[6]मानस्य सद्भावात् । तथाहि देवदत्तात्मा तद्देह[8] एव तत्र सर्वत्रैव च विद्यते तत्रैव तत्र सर्वत्रैव च स्वासाधारणगुणाधारतयोपलम्भात् । यो यत्रैव यत्र सर्वत्रैव च स्वासाधारणगुणाधारतयोपलभ्यते स तत्रैव तत्र सर्वत्रैव च विद्यते यथा देवदत्तगृहे एव तत्र सर्वत्रैव चोपलभ्यमानः स्वासाधारणभासुरत्वादिगुणः प्रदीपः तथा[9]चायं तस्मा[10]त्तथेति । त

बलक्षणं जलम् । १६ उष्णतालक्षणोऽग्निः । १७ तत्कालीनसमुत्पन्न ।

१ प्रत्यभिज्ञानं च । २ युवावस्थायाम् । ३ अभिलाषायाः कारणं प्रत्यभिज्ञानं तच्च सति स्मरणे, स्मरणं च सति पूर्वानुभवे इति व्याप्तेः । ४ भूतसंघातस्यान्वयाभावात् । ५ स्वदेहप्रमितौ व्यापके वटकणिकामात्रे च । ६ आत्मा स्वदेहप्रमितिरित्यत्र । ७ अस्मिन्ननुमाने साध्यसाधनयोरात्मनो वटकणिकापरिमाणप्रतिषेधार्थं तत्र सर्वत्रैवेति पदं दत्तं, व्यापकत्वनिरासार्थं तद्देह एवेति पदं दत्तमिति । ८ देहे । ९ तत्रैव तत्र सर्वत्रैव च स्वासाधारणगुणाधारश्चायं देवदत्तात्मा । १० तस्मात्तद्देह एव तत्र सर्वत्रैव च किं

[1]साधारणगुणा ज्ञानदर्शनसुखवीर्यलक्षणास्ते[2] च सर्वाङ्गीणा-स्तत्रैव[3] चोपलभ्यन्ते ॥ सुखमाल्हादनाकारं विज्ञानं मेयबोध-नम् । शक्तिः क्रियानुमेया स्याद्यूनः कान्तासनागमे ॥१ ॥ इति वचनात् । तस्मा[4]दात्मा देहप्रमितिरेव स्थितः । द्वितीयं विशेषभेदमाह—

अर्थान्तरगतो[5] विसदृश[6]परिणामो व्यतिरेको[7] गोमहिषादिवत्[8] ॥ ८ ॥

वैसादृश्यं हि प्रतियोगिग्रहणे सत्येव भवति । न चापेक्षि-कत्वाद[9]स्यावस्तुत्वमवस्तु[10]न्यापेक्षिकत्वायोगात् । अपेक्षाया वस्तुनिष्ठत्वात् ॥

स्यात्कारलाञ्छितमबाध्यमनन्तधर्म
संदोहवर्मितम[11]शेषमपि प्रमेयम् ॥
देवैः[12] प्रमाणबलतो निरचायि[13] यच्च[14] ।

यूनः । १ आत्मासाधारणगुणाः । २ गुणाश्च । ३ आत्मन्येव । ४ अनुमानसामर्थ्यात् । ५ एकस्मादर्थात्सजातीयो विजातीयो वार्थोऽर्था-न्तरम्, ततोऽर्थान्तरगतः । ६ खण्डलक्षणाद्गोः सजातीयो मुण्डलक्षणो गौः, विजातीयो महिषः, खण्डापेक्षया मुण्डो विसदृशाकारो महिषापेक्षया च विसदृशाकार इत्यर्थः । ७ विशेष इति सम्बन्धः । ८ यथा गोषु खण्डमु-ण्डादिलक्षणा, महिषेषु विशालविसंकटत्वलक्षणो, गोमहिषेषु च परस्परमसाधार-णस्वरूपलक्षणो विसदृशपरिणामोऽस्ति । ९ वैसादृश्यस्य । १० सर्वा-र्थोऽभावे । ११ संयुक्तम् । १२ अकलंकदेवैः । १३ विरचितम् । १४ प्रमे-

संक्षिप्तमेव मुनिभिर्विवृतं मयैतत् ॥ १ ॥

इति परीक्षामुखस्य लघुवृत्तौ विषयसमुद्देशश्चतुर्थः ॥ ४ ॥

अथेदानीं फलविप्रतिपत्तिनिरासार्थमाह—

अज्ञाननिवृत्तिर्हानोपादानोपेक्षाश्च फलम् ॥ १ ॥

द्विविधं हि फलं साक्षात्पारम्पर्येणेति । साक्षादज्ञाननिवृत्तिः पाराम्पर्येण हानादिकमिति, प्रमेयनिश्चयोत्तरकालभावित्वात्तस्येति । तद्द्विविधमपि फलं प्रमाणाद्भिन्नमेवेति यौगाः । अभिन्नमेवेति सौगताः । तन्मतद्वयनिरासेन स्वमतं व्यवस्थापयितुमाह—

प्रमाणादभिन्नं भिन्नं च ॥ २ ॥

कथंचिदभेदसमर्थनार्थं हेतुमाह—

यः[6] प्रमिमीते[7] स एव निवृत्ताज्ञानो जहात्यादत्ते[10]

यम् । १ माणिक्यनन्दिदेवैः । २ अनन्तवीर्येण । ३ अज्ञानमज्ञप्तिः स्वपररूपव्यामोहस्तस्य निवृत्तिर्यथावत्तद्रूपयोर्ज्ञप्तिः । ४ अज्ञाननिवृत्तिः प्रमाणस्याभिन्नं फलमत्र कथंचिदभेदो द्रष्टव्यः कारणकार्यभेदादिति । ५ हानोपादानोपेक्षाश्च प्रमाणस्य भिन्नं फलमत्रापि कथंचिद्भेदौ द्रष्टव्यौ, सर्वथा भेदे प्रमाणफलव्यवहारविरोधादिति । ६ यः प्रतिपत्ता । ७ स्वार्थग्रहणपरिणामेन परिणमते । ८ स्वविषये व्यामोहरहितः । ९ अभिप्रेतप्रयोजनाप्रसाधकमर्थं जहाति । १० अभिप्रेतप्रयोजनप्रसाधका-

उपेक्षते चेति प्रतीतेः[२] ॥ ३ ॥

अयमर्थः—यस्यैवात्मनः प्रमाणाकारेण परिणतिस्तस्यैव फलरूपतया परिणाम इत्येकप्रमात्रपेक्षया प्रमाणफलयोरभेदः । करणक्रियापरिणामभेदाद्भेद इत्यस्य[३] सामर्थ्यसिद्धत्वान्नोक्तम् ॥

परम्पर्येण साक्षाच्च फलं द्वेधाऽभिधायि यत् ।
देवैर्भिन्नमभिन्नं च प्रमाणात्तदिहोदितम्[६] ॥ १ ॥

इति परीक्षामुखलघुवृत्तौ फलसमुद्देशः पञ्चमः ॥ ५ ॥

अथेदानीमुक्तप्रमाणस्वरूपादिचतुष्टयाभासमाह—

ततोऽन्यत्तदाभासमिति ॥ १ ॥

तत उक्तात् प्रमाणस्वरूपसंख्याविषयफलभेदादन्यद्विपरीतं तदाभासमिति । तत्र क्रमप्राप्तं स्वरूपाभासं दर्शयति—

अस्वसंविदितगृहीतार्थदर्शनसंशयादयः

धकमर्थमादत्ते । १ उभयप्रयोजनाऽप्रसाधकं तूपेक्षणीयमुपेक्षते । २ प्रमाणफलयोः कथञ्चिद्भेदाभेदव्यवस्था प्रतिपत्तव्येति सम्बन्धः । ३ भेदस्य । ४ भेदरूपफलं सूत्ररूपेण न निबद्धम् । ५ अकलंकदेवैर्माणिक्यनन्दिदेवैश्च । ६ अनन्तवीर्येण । ७ अस्वसंविदितस्य स्वग्राहकत्वाभावेनार्थप्रतिपत्त्योगात्प्रवृत्तिविषयोपदर्शकत्वाभावः । ८ निर्विकल्पकं दर्शनं तस्य प्रवृत्तिविषयोपदर्शकत्वाभावस्तज्जनितविकल्पस्यैव तदुपदर्शकत्वात् । १० आ-

प्रमाणाभासाः ॥ २ ॥

अस्वसंविदितश्च गृहीतार्थश्च दर्शनञ्च संशय आदिर्येषां ते संशयादयश्चेति सर्वेषां द्वन्द्वः । आदिशब्देन विपर्ययानध्यवसाययोरपि ग्रहणम् । तत्रास्वसंविदितं ज्ञानं ज्ञानान्तर[1]प्रत्यक्षत्वादिति नैयायिकाः । तथाहि ज्ञानं स्वव्यतिरिक्तवेदनवेद्यं वेद्यत्वात्[2] घटवदिति । तदसङ्गतम्—धर्मिज्ञानस्य ज्ञानान्तरवेद्यत्वे साध्यान्तःपातित्वेन धर्मित्वायोगात्[3] । स्वसंविदितत्वे[4] तेनैव[5] हेतोरनेकान्तात्[6] । महेश्वरज्ञानेन च व्यभिचाराद्[7] प्रमिज्ञानेनाप्यनेकान्तादर्थप्रतिपत्त्ययोगाच्च[8][10][11] । नहि ज्ञापे-

---

दिना विपर्ययानध्यवसायौ ग्राह्यौ । १ ज्ञानान्तरवेद्यमित्यर्थः । २ प्रमेयत्वात् । ३ प्रत्यक्षादिप्रमाणप्रसिद्धो हि धर्म्मी भवति, न चात्रानुमाने धर्मिज्ञानं प्रमाणप्रसिद्धमस्ति ततस्तस्य साध्यान्तःपातित्वेन धर्मित्वायोगात्, धर्मिणो ज्ञानस्यासिद्धेश्च वेद्यत्वादिति हेतुराश्रयासिद्ध इति भावः । ४ धर्मिज्ञानं स्वसंविदितं ततो न यथोक्तदोषानुषङ्ग, इति शंकायामाह । ५ धर्मिज्ञानेनैव । ६ वेद्यत्वादिति हेतोः । ७ धर्मिज्ञाने हि वेद्यत्वमस्ति परन्तु स्वव्यतिरिक्तवेदनवेद्यत्वं नास्ति ततः साध्याभाववति विपक्षेऽपि हेतोः सद्भावाद्व्यभिचारित्वमिति । ८ महेश्वरज्ञाने ज्ञानान्तरवेद्यत्वं नास्ति वेद्यत्वमस्ति ततस्तेन व्यभिचारः । ९ ज्ञानान्तरेण व्याप्तिज्ञाने व्यवधानाभावात् । १० ज्ञानं स्वपरप्रकाशकं ज्ञानत्वान्महेश्वरज्ञानवदव्यवधानेनार्थप्रकाशकत्वाद्वाऽर्थग्रहणात्मकत्वाद्वा, महेश्वरज्ञानवत् यत्पुनः स्वपरप्रकाशकं न भवति न तज्ज्ञानमव्यवधानेनार्थप्रकाशकमर्थग्रहणात्मकं वा यथा चक्षुरादि । ११ ज्ञानम् ।

कमप्रत्यक्षं [1]ज्ञाप्यं गमयति [2]शब्दलिङ्गादीनामपि [3]तथैव ग-
मकत्वप्रसङ्गात् । [4]अनन्तरभाविज्ञानग्राह्यत्वे [5]तस्याप्य[6]गृहीतस्य
[7]परोक्षापकत्वात्तदन[8]न्तरं कल्पनीयम् । [9]तत्रापि तदनन्तरमित्य-
नवस्था तस्मान्नायं प[10]क्षः श्रेयान् । एते[11]न करणज्ञानस्य परोक्ष-
त्वेनास्वसंविदितत्वं ब्रुवन्नपि मीमांसकैः[12] प्रत्युक्तः । [13]तस्यापि
[14]ततोऽर्थप्रत्यक्षत्वायोगात् । [15]अथ [16]कर्मत्वेनाप्रतीयमानत्वादप्रत्य-
क्षत्वे [17]तर्हि फलज्ञानस्याप्रत्यक्षता [19]तत एव स्यात् । [21]अथ फल-
त्वेन प्रतिभा[22]सनं नो चेत् [23]करणज्ञानस्यापि करणत्वेनावभास-
नात् प्रत्यक्षत्वमस्तु । तस्मादर्थप्रतिपत्त्यन्यथाऽनुपपत्तेः करण-
ज्ञानकल्पनावदर्थप्रत्यक्षत्वान्यथाऽनुपपत्तेर्ज्ञानस्यापि प्रत्यक्ष[24]त्वं-
मस्तु । अथ करणस्य चक्षुरादेरप्रत्यक्षत्वेऽपि रूपप्राकट्याद्वय-

---

१ ज्ञेयम् । २ अन्यथा । ३ अप्रत्यत्यक्षत्वेनैव । ४ प्रथमज्ञानस्य । ५ अनन्तरभाविज्ञानस्यापि । ६ अपरज्ञानेनागृहीतस्य । ७ प्रथमज्ञा-नस्य । ८ ज्ञानम् । ९ तदनन्तरज्ञानेऽपि । १० ज्ञानं ज्ञानान्तरवेद्यं प्रमेयत्वादिति पक्षः । ११ ज्ञानान्तरवेद्यज्ञाननिराकरणेन । १२ भाट्टः प्रभाकरश्च । भाट्टमते आत्मा प्रत्यक्षः प्रभाकरमते तु फलज्ञानं प्रत्यक्षम् । १३ मीमांसकस्यापि । १४ करणज्ञानतः । १५ प्रभाकर आह । १६ करणज्ञानस्य । १७ यदि कर्मत्वेनाप्रतीयमानत्वात्करणज्ञानस्य परोक्षता तर्हि । १८ प्रमितिक्रियायाः । १९ कर्मत्वेनाप्रतीयमानत्वादेव । २० भाट्टस्य तु कर्मत्वेनाप्रतीयमानत्वादात्मनोऽप्यप्रत्यक्षता स्यादिति । २१ फलज्ञानस्य । २२ अतः परोक्षता नो चेदिति सम्बन्धः । २३ तर्हि । २४ करण-

भिचार[1] इति चेन्न, भिन्नकर्तृककरणस्यैव[2] तद्व्यभिचारात्[3]। अभिन्नकर्तृके करणे सति कर्तृ[4]प्रत्यक्षतायां तदभिन्न[4]स्यापि करणस्य कथञ्चित्प्रत्यक्षत्वेनाप्रत्यक्षतैकान्तविरोधात्प्रकाशात्मनोऽप्रत्यक्षत्वे प्रदीपप्रत्यक्षत्वविरोधवदिति । गृहीतग्राहिज्ञानं गृहीतार्थं, दर्शनं सौगताभिमतं निर्विकल्पकं, तच्च[5] स्वविषयानुपदर्शकत्वादप्रमाणं व्यवसायस्यैव तज्जनितस्य[6] तदुपदर्श[7]कत्वात् । अथ व्यवसाय[8]स्य प्रत्यक्षाकारेणानुरक्तत्वात्ततः प्रत्यक्षस्यैव प्रामाण्यं व्यवसायस्तु गृहीत[9]ग्राहित्वादप्रमाणमिति तन्न सुभाषितं—दर्शनस्याविकल्पकस्यानुपलक्षणात्तत्[10]सद्भावायोगात् सद्भावे[11] वा नीलादाविव क्षणक्षयादावपि तदुपदर्शकत्वप्रसङ्गात् । तत्र[12] विप[13]रीतसमारोपान्नेति चेत्तर्हि सिद्ध नी-

---

ज्ञानमस्त्यर्थप्रतिपत्त्यन्यथानुपपत्तेरिति चेत् करणज्ञानं प्रत्यक्षमर्थप्रत्यक्षत्वान्यथानुपपत्तेरित्यपि भवत्विति भावः । १ करणभूते चक्षुरादौ रूपादिप्राकट्यमस्ति प्रत्यक्षत्वं नास्ति ततः साध्याभाववति हेतोः सद्भावाद्व्यभिचार इति । २ करणं द्वेधा विभक्ताविभक्तकर्तृकभेदात् , कर्तुरन्यद्विभक्तकर्तृकंकरणं यथा परशुना छिनत्ति देवदत्तः । कर्तुरनन्यदविभक्तकं यथाऽग्निर्दहत्यौष्ण्येनेति, इह त्वाविभक्तकर्तृककरणं विवक्षितं तस्माद्विभक्तकर्तृककरणेन व्यभिचारोऽपि न दोषायेति भावः । ३ हेतोः । ४ कर्तृ । ५ दर्शनम् । ६ दर्शन । ७ प्रत्यक्षविषयोपदर्शकत्वात् । ८ सविकल्पज्ञानस्य । ९ प्रत्यक्षगृहीतविषयस्यैव ग्राहकत्वाद्व्यवसायस्येति भावः । १० दर्शन । ११ दर्शन । १२ क्षणक्षयादौ । १३ न क्षणिकं

लादौ समारोपविरोधिग्रहणलक्षणो निश्चय इति तदात्मकमेव[1] प्रमाणमितरत्तदाभासमिति । संशयादयश्च प्रसिद्धा एव । तत्र संशय उभयकोटिसंस्पर्शी स्थाणुर्वा पुरुषो वेति परामर्शः । विपर्ययः पुनरतस्मिंस्तदिति विकल्पः । विशेषानवधारणमनध्यवसायः । कथमेषामस्वसंविदितादीनां तदाभासतेत्यत्राह—

स्वविषयोपदर्शकत्वाभावात्[3] ॥ ३ ॥

गतार्थमेतत् । अत्र दृष्टान्तं यथाक्रममाह—

पुरुषान्तरपूर्वार्थगच्छत्तृणस्पर्शस्थाणुपुरुषादिज्ञानवत् ॥४॥

पुरुषान्तरं च पूर्वार्थश्च गच्छत्तृणस्पर्शश्च स्थाणुपुरुषादिश्च तेषां ज्ञानं तद्वत् । अपरं च सन्निकर्षवादिनं प्रति दृष्टान्तमाह—

चक्षूरसयोर्द्रव्ये[4] संयुक्तसमवायवच्च ॥ ५ ॥

अयमर्थो यथा चक्षूरसयोः संयुक्तसमवायः सन्नपि न प्रमाणं तथा चक्षूरूपयोरपि । तस्मादयमपि प्रमाणाभास एवेति । उपलक्षणमेतत् अतिव्याप्तिकथनमव्याप्तिश्च[5] सन्निकर्षप्रत्यक्षवादिनां चक्षुषि सन्निकर्षस्याभावात्[6] । यथा चक्षुः प्राप्तार्थपरि-

नित्यमिति विपरीतसमारोपात् । १ निश्चयात्मकमेव । २ निर्विकल्पात्मकम् । ३ प्रवृत्तिविषयोपदर्शकत्वाभावात् । ४ सन्निकर्षः प्रमाणमिति लक्षणे सति चक्षूरसयोः संयुक्तसमवायसन्निकर्षोऽस्ति परन्तु तत्र चक्षुषा रसप्रतिपत्तिर्नास्ति तस्मात्प्रमित्यभावेऽपि लक्षणसद्भावादतिव्याप्तिरिति । ५ चक्षुर्मनसोः प्रमित्युत्पादकत्वमस्ति सन्निकर्षत्वं नास्ति तस्माल्लक्ष्यमात्राव्याप्तत्वाल्लक्षणस्याव्याप्तिरिति । ६ अप्राप्यकारि चक्षुः स्पृष्टानक-

च्छेदकं व्यवहितार्थाप्रकाशकत्वात् प्रदीपवदिति तत्सिद्धिरिति मतं तदपि न साधीयः। काचाभ्रपटलादिव्यवहितार्थानामपि चक्षुषा प्रतिभासनाद्धेतोरसिद्धेः। शाखाचन्द्रमसोरेककालदर्शनानुपपत्तिप्रसक्तेश्च। न च तत्र क्रमेऽपि यौगपद्याभिमान इति वक्तव्यम्। कालव्यवधानानुपलब्धेः। किञ्च क्रमप्रतिपत्तिः प्राप्तिनिश्चये सति भवति। न च क्रमप्राप्तौ प्रमाणान्तरमस्ति। तैजसत्वमस्तीति चेन्न तस्यासिद्धेः। अथ चक्षुस्तैजसं रूपादीनां मध्ये रूपस्यैव प्रकाशकत्वात् प्रदीपवदिति। तदप्यप-

---

ग्रहात्। यदि प्राप्यकारि चक्षुः त्वगिन्द्रियवत्स्पृष्टमंजनं गृह्णीयात्, न च गृह्णात्यतो मनोवदप्राप्यकारीत्यवसेयम्। १ प्राप्तार्थपरिच्छेदकत्वसिद्धिरिति। २ शाखाचन्द्रमसोरेककालग्रहणे। ३ शाखाचन्द्रमसोरेककालग्रहणे कालव्यवधानो नोपलभ्यत इति भावः। ४ क्रमप्राप्तिनिश्चये। ५ क्रमप्राप्तिनिश्चये तैजसत्वं प्रमाणमस्ति, चक्षुषः तेजोद्रव्यत्वात्क्रमेणैव शाखाचन्द्रमसोः प्राप्तिरिति भावः। ६ अतैजसं चक्षुर्भासुरत्वानुपलब्धेरित्यनेन चक्षुषः तैजसत्वमसिद्धमिति। ७ आदिपदेन रसगन्धस्पर्शाश्च गृह्यन्ते। ८ चक्षुस्तैजसं रूपस्यैव प्रकाशकत्वादित्युच्यमाने येनेन्द्रियेण यद्गृह्यते तेनैव तज्जातिस्तदभावश्च गृह्यत इति नियमाद्धेतुः स्वरूपासिद्धः स्यादतस्तद्वारणाय रूपादीनां मध्ये–इति विशेषणं दत्तमिति प्रदीपस्य स्वीयस्पर्शव्यञ्जकत्वादत्र दृष्टान्तेऽतिव्याप्तिवारणाय परकीयरसाद्यव्यञ्जकत्व इति विशेषणम्, तथा घटादेः स्वीयरूपव्यञ्जकत्वाद्व्यभिचारवारणाय परकीयरूपव्यञ्जकत्वादिति विशेष्यम् चक्षुः सन्निकर्षे, व्य-

र्यालोचिताभिधानं मण्यञ्जनादेः पार्थिवत्वेऽपि रूपप्रकाशक-त्वदर्शनात् । पृथिव्यादिरूपप्रकाशकत्वे पृथिव्याद्यारब्धत्व-प्रसङ्गाच्च । तस्मात्सन्निकर्षस्याव्यापकत्वान्न प्रमाणत्वं करणज्ञानेन व्यवधानाच्चेति । प्रत्यक्षाभासमाह—

अवैशद्ये प्रत्यक्षं तदाभासं बौद्धस्याकस्माद् धूम-दर्शनाद्वह्निविज्ञानवदिति ॥ ६ ॥

परोक्षाभासमाह—

वैशद्येऽपि परोक्षं तदाभासं मीमांसकस्य करणज्ञानवत् ॥ ७ ॥

भिचारवारणाय द्रव्यत्वं देयम् तथा सति चक्षुस्तैजस द्रव्यत्वे सति परकीररसाद्यव्यञ्जकत्वे सति च परकीयरूपव्यंजकत्वात्प्रदीपव-दित्यनुमानं भवति । १ मण्यंजनादौ तैजसत्वं नास्ति रूपस्य प्रकाशकत्वमस्ति तस्मात्साध्याभाववति मण्यंजनादौ हेतोः सद्भावा-द्व्यभिचारित्वं तस्येति भावः । २ चक्षुषस्तेजोरूपाभिव्यंजकत्वात्तेजः कार्य-त्ववत्पृथिव्यप्कार्यत्वप्रसङ्ग इति भावः । ३ यतश्चक्षुर्मनश्चाप्राप्तमर्थमुपल-भते । ४ प्रमाणोत्पत्तौ सन्निकर्षस्य करणज्ञानेन व्यवधानमस्ति, "साधकतमं करणमिति" नियमात्तत्र साधकतमं करणं ज्ञानमेव न स-न्निकर्ष इति भावः । ५ यथा धूमवाष्पादिविवेकनिश्चयाभावाद्व्याप्ति ग्रहणाभावादकस्माद्धूमाज्जातं यद्वह्निविज्ञानं तत्तदाभासं भवति कस्माद-निश्चयात् । तथा बौद्धपरिकल्पितं अनिर्विकल्पकप्रत्यक्षं तत्प्रत्य-क्षाभासं कस्मादनिश्चयात् । ६ परोक्षाभासम् । ७ मीमांसकमते

प्राक् प्रपञ्चितमेतत् । परोक्षभेदाभासमुपदर्शयन् प्रथमं क्रमप्राप्त स्मरणाभासमाह—

अतस्मिंस्तदिति ज्ञानं स्मरणाभासं जिनदत्ते स देवदत्तो यथेति ॥ ८ ॥

अतस्मिन्ननुभूत इत्यर्थः शेषं सुगमम् । प्रत्यभिज्ञानाभासमाह—

सदृशे[1] तदेवेदं तस्मिन्नेव तेन सदृशं[2] यमलकव[3]-दित्यादि प्रत्यभिज्ञानाभासम् ॥ ९ ॥

द्विविधं प्रत्यभिज्ञानाभासमुपदर्शितं, एकत्वनिबन्धनं सा-सादृश्यनिबन्धनं चेति । तत्रैकत्वे सादृश्यावभासः सादृस्ये चैकत्वावभासस्तदाभासमिति । तर्काभासमाह—

असम्बद्धे तज्ज्ञानं तर्काभासम् ॥ १० ॥

यावाँस्तत्पुत्रः स श्याम इति यथा । तज्ज्ञानमिति व्याप्ति-लक्षणसम्बन्धज्ञानमित्यर्थः इदानीमनुमानाभासमाह—

इदमनुमानाभासम् ॥ ११ ॥

इद वक्ष्यमाणमिति भावः तत्र तदवयवाभासोपदर्शनेन

करणज्ञानं ज्ञानान्तरवेद्यमिति परन्तु नहि करणज्ञानेऽव्यवधानेन प्रतिभासलक्षणं वैशद्यमसिद्धं स्वार्थयोः प्रतीत्यन्तरनिरपेक्षतया तत्र प्रतिभा-सनादिति । १ एकत्वप्रत्यभिज्ञानाभासम् । २ सादृश्यप्रत्यभिज्ञानाभासम् स्वयं स्वेन सदृशमित्यर्थः । ३ युगल । ४ प्रत्यभिज्ञानाभासम् । ५ अ-

समुदायरूपानुमानाभासमुपदर्शयितुकामः प्रथमावयवाभासमाह—

तत्रानिष्टादिः[1] पक्षाभासः[2] ॥ १२ ॥

इष्टमबाधितमित्यादि तल्लक्षणमुक्तमिदानीं तद्विपरीतं तदाभासमिति कथयति—

अनिष्टो मीमांसकस्यानित्यः[3] शब्दः ॥ १३ ॥

असिद्धाद्विपरीतं तदाभासमाह—

सिद्धः[4] श्रावणः[5] शब्दः इति ॥ १४ ॥

अबाधितमविपरीतं तदाभासमावेदयन् स[6] च प्रत्यक्षादिबाधित एवेति दर्शयन्नाह—

बाधितः प्रत्यक्षानुमानागमलोकस्ववचनैः ॥ १५ ॥

[7]तेषां क्रमेणोदाहरणमाह—

तत्र प्रत्यक्षबाधितो यथा अनुष्णोऽग्निर्द्रव्यत्वाज्जलवत् ॥ १६ ॥

स्पार्शनप्रत्यक्षेण ह्युष्णस्पर्शात्मकोऽग्निरनुभूयते । अनुमान-

---

विनाभावाभावेऽव्याप्तौ । ६ व्याप्तिज्ञानम् । १ अनुमानाभासे । २ वादिनोऽनभिप्रेतादिः । ३ स हि प्रतिवादिसभ्यसभापतिदर्शनात्कदाचिदाकुलितबुद्धिः स्वाभिप्रेतं नित्यः शब्द इति पक्षं विस्मरन्ननभिप्रेतमपि पक्षं करोति । ४ पक्षाभासः । ५ वादिप्रतिवादिनोः प्रसिद्धेऽर्थेऽविप्रतिपत्तेः । ६ बाधितपक्षाभासः । ७ प्रत्यक्षादिबाधितपक्षाभासानाम् ।

बाधितमाह—

अपरिणामी शब्दः कृतकत्वात् घटवत् ॥ १७ ॥

अत्र पक्षोऽपरिणामी शब्दः कृतकत्वादित्यनेन बाध्यते[1] । आगमबाधितमाह—

प्रेत्यासुखप्रदो धर्मः पुरुषाश्रितत्वादधर्मवत् ॥ १८ ॥

आगमे हि पुरुषाश्रितत्वाविशेषेऽपि परलोके धर्मस्य सुख-हेतुत्वमुक्तम् । लोकबाधितमाह—

शुचि नरशिरःकपालं प्राण्यंगत्वाच्छंखशुक्तिवत्[2] ॥ १९ ॥

लोके हि प्राण्यंगत्वेऽपि कस्यचिच्छुचित्वमशुचित्वं च तत्र नरकपालादीनामशुचित्वमेवेति लोकबाधितत्वम् । स्ववचन-बाधितमाह—

माता मे वन्ध्या पुरुषसंयोगेऽप्यगर्भत्वात्प्रसि-द्धवन्ध्यावत् ॥ २० ॥

इदानीं हेत्वाभासान् क्रमापन्नानाह—

हेत्वाभासा असिद्धविरुद्धानैकान्तिकाकिञ्चित्कराः ॥२१॥

एषां यथाक्रमं लक्षणं सोदाहरणमाह—

असत्सत्तानिश्चयोऽसिद्धः ॥ २२ ॥

---

१ परिणामी शब्दोऽर्थक्रियाकारित्वात्कृतकत्वाद् घटवदित्यनेनानुमानेनापरिणामी शब्द इति पक्षो बाध्यते । २ यथा गोपिण्डत्वाविशेषेऽपि किञ्चिद् दुग्धादि शुद्धं न गोमांसमिति तथा प्राण्यंगत्वाविशेषेऽपि नरशिरःकपालस्याशुचित्वं शंख-

सत्ता च निश्चयश्च सत्तानिश्चयौ, असन्तौ सत्तानिश्चयौ यस्य स भवत्यसत्सत्तानिश्चयः । तत्र प्रथमभेदमाह--

अविद्यमानसत्ताकः[1] परिणामी शब्दश्चाक्षुषत्वात् ॥२३॥

कथमस्यासिद्धत्वमित्याह--

स्वरूपेणासत्त्वात्[2] ॥ २४ ॥

शुक्त्यादेः शुचित्वमिति । १ अविद्यमाना साध्येनासाध्येन (दृष्टान्तेन) उभयेन वाऽविनाभाविनी सत्ता यस्यासावसिद्धः । २ चक्षुर्ज्ञानग्राह्यत्वं हि चाक्षुषत्वं, तच्च शब्दे स्वरूपेणैवासत्वात्स्वरूपासिद्धम् । ये च विशेष्यासिद्धादयोऽसिद्धप्रकाराः परैर्नैयायिकादिभिरिष्टास्तेऽसत्सत्ताकत्वलक्षणासिद्धप्रकारान्नार्थान्तरं तल्लक्षणभेदाभावात् तत्र विशेष्यासिद्धो यथा—अनित्यः शब्दः सामान्यवत्वे सति चाक्षुषत्वात् । विशेषणासिद्धो यथा—अनित्यः शब्दश्चाक्षुषत्वे सति सामान्यवत्वात् । आश्रयासिद्धो यथाऽस्ति प्रधानं विश्वपरिणामित्वात् वस्तुतः प्रधानं नास्तीति भावः । आश्रयैकदेशासिद्धो यथानित्याः परमाणुप्रधानात्मेश्वरा अकृतकत्वात् । व्यर्थविशेष्यासिद्धो यथाऽनित्याः परमाणवः कृतकत्वे सति सामान्यवत्वात् । व्यर्थविशेषणासिद्धो यथाऽनित्याः परमाणवः सामान्यवत्वे सति कृतकत्वात् । व्यधिकरणासिद्धो यथाऽनित्यः शब्दः परस्य कृतकत्वात् । भागासिद्धो यथा नित्यः शब्दः प्रयत्नानंतरीयकत्वात् । व्यधिकरणासिद्धत्वं च परप्रक्रियाप्रदर्शनमात्रं न वस्तुतो हेतुदोषो व्यधिकरणस्याप्युपदेक्ष्यति शकटं कृत्तिकोदयादित्यादेर्गमकत्वप्रतीतेः । भागासिद्धस्याप्यविनाभावसद्भावाद्गमकत्वमेव न खलु प्रयत्नानन्तरीयकत्वमनित्यत्वमन्तरेण क्वापि दृश्यते यावति शब्दे तत्प्रवर्तते तावतः शब्दस्यानित्यत्वं ततः सिद्ध्यति अन्यस्यत्वन्यतः कृत-

द्वितीयासिद्धभेदमुपदर्शयति—

अविद्यमाननिश्चयो मुग्धबुद्धिं प्रत्यग्निरत्रधूमादिति ॥२५॥

अस्याप्यसिद्धता कथमित्त्यारेकायामाह—

तस्य बाष्पादिभावेन भूत[1]सङ्घाते संदेहा[2]त् ॥ २६ ॥

तस्येति मुग्धबुद्धिं प्रतीत्यर्थः । अपरमसिद्धभेदमाह—

सांख्यम्प्राति परिणामी शब्दः कृतकत्वादिति॥ २७ ॥

अस्यासिद्धतायां कारणमाह—

तेनाज्ञात[3]त्वादिति ॥ २८ ॥

विरुद्धं हेत्वाभासमुपदर्शयन्नाह—

विपरीतनिश्चि[4]ताविनाभावो विरुद्धोऽपरिणा[5]मी शब्दः कृत[6]कत्वात् ॥ २९ ॥

तेन सांख्येनाज्ञातत्वात्, तन्मते ह्याविर्भावतिरोभावावेव प्रसिद्धौ नोत्पत्त्यादिरिति । अस्याप्यनिश्चयादसिद्धत्वमित्यर्थः।

कत्वादेः । १ पृथिव्यादिलक्षणानां भूतानां सङ्घातो धूमस्तस्मिन् धूमे । २ विद्यमानधूमेऽपि । ३ सन्दिग्धविशेष्यादयोऽप्यविद्यमाननिश्चयतालक्षणातिक्रमाभावान्नार्थान्तरम् तत्र संदिग्धविशेष्यासिद्धो यथाऽद्यापि रागादियुक्तः कपिलमुनिः पुरुषत्वे सत्यप्यस्यानुत्पन्नतत्वज्ञानत्वात् । सन्दिग्धविशेषणासिद्धो यथाऽद्यापि रागादियुक्तः कपिलमुनिः सर्वदा तत्वज्ञानरहितत्वे सति पुरुषत्वात् । ४ साध्यस्वरूपाद्विपरीतेन निश्चितोऽविनाभावो यस्यासौ विरुद्धः । ५ एकस्वभावक्षणिकलक्षणो नित्यैकलक्षणः । ६ ये चाष्टौ विरुद्धभेदाः परैरिष्टास्ते-

कृतकत्वं ह्यपरिणामविरोधिना परिणामेन व्याप्तमिति । अनैकान्तिकं हेत्वाभासमाह—

विपक्षेऽप्यविरुद्धवृत्तिरनैकान्तिकः ॥ ३० ॥

प्येतल्लक्षणलक्षितत्वाविशेषतोऽत्रैवान्तर्भवति, सति सपक्षे चत्वारो विरुद्धाः पक्षविपक्षव्यापकः सपक्षावृत्तिर्यथानित्यः शब्द उत्पत्तिधर्मकत्वात् । विपक्षैकदेशवृत्तिः पक्षव्यापकः सपक्षावृत्तिश्च यथा नित्यः शब्दः सामान्यवत्वे सत्यस्मदादिबाह्येन्द्रियप्रत्यक्षत्वात् । पक्षविपक्षैकदेशवृत्तिः सपक्षावृत्तिश्च यथा सामान्यविशेषवती—अस्मदादिबाह्यकरणप्रत्यक्षे वाग्मनसे नित्यत्वात् । पक्षैकदेशवृत्तिः सपक्षावृत्तिर्विपक्षव्यापको यथा नित्ये वाग्मनसे उत्पत्तिधर्मकत्वात् । तथाऽसति सपक्षे चत्वारो विरुद्धाः पक्षविपक्षव्यापकोऽविद्यमानसपक्षो यथाऽऽकाशविशेषगुणः शब्दः प्रमेयत्वात् । पक्षविपक्षैकदेशवृत्तिरविद्यमानसपक्षो यथा सत्तासम्बन्धिनः षट्पदार्था उत्पत्तिमत्वात् । पक्षव्यापको विपक्षैकदेशवृत्तिरविद्यमानसपक्षो यथा ऽऽकाशविशेषगुणः शब्दो बाह्येन्द्रियग्राह्यत्वात् । पक्षैकदेशवृत्तिर्विपक्षव्यापकोऽविद्यमानसपक्षो यथा नित्ये वाङ्मनसे कार्यत्वात् ।

१ एकस्मिन्नंते नियतो ह्यैकान्तिकस्तद्विपरीतोऽनैकान्तिकः । २ पराभ्युपगतश्च पक्षत्रयव्यापकाद्यनैकान्तिकप्रपंच एतल्लक्षणलक्षितत्वाविशेषान्नातोऽर्थान्तरम् । पक्षत्रयव्यापको यथा अनित्यः शब्दः प्रमेयत्वात् । सपक्षविपक्षैकदेशवृत्तिर्यथा नित्यः शब्दोऽमूर्तत्वात् । पक्षसपक्षव्यापको विपक्षैकदेशवृत्तिर्यथा गौरयं विषाणित्वात् पक्षविपक्षव्यापकः सपक्षैकदेशवृत्तिर्यथाऽ गौरयं विषाणित्वात् । पक्षत्रयैकदेशवृत्तिर्यथाऽनित्ये वाग्मनसेऽमूर्तत्वात् । पक्षसपक्षैकदेशवृत्तिर्विपक्षव्यापको यथा द्रव्याणि दिक्कालमनांस्यमूर्तत्वात् । पक्षवि-

अपिशब्दान्न केवलं पक्षसपक्षयोरिति द्रष्टव्यम्। स च द्विविधो विपक्षे निश्चितवृत्तिः शङ्कितवृत्तिश्चेति। तत्राद्यं दर्शयन्नाह—

निश्चितवृत्तिरनित्यः शब्दः प्रमेयत्वात् घटवदिति ॥३१॥

कथमस्य विपक्षे निश्चिता वृत्तिरित्याशङ्क्याह—

आकाशे नित्येऽप्यस्य निश्चयात् ॥ ३२ ॥

शङ्कितवृत्तिमुदाहरति—

शङ्कितवृत्तिस्तु नास्ति सर्वज्ञो वक्तृत्वादिति ॥ ३३ ॥

अस्यापि कथं विपक्षे वृत्तिराशंक्यत इत्यत्राह—

सर्वज्ञत्वेन वक्तृत्वाविरोधादिति ॥ ३४ ॥

अविरोधश्च ज्ञानोत्कर्षे वचनानामपकर्षादर्शनादिति निरूपितप्रायम्। अकिञ्चित्करस्वरूपं निरूपयति—

सिद्धे[1] प्रत्यक्षादिबाधिते च साध्ये हेतुरकिञ्चित्करः[2] ॥३५॥

तत्र सिद्धे साध्ये हेतुरकिञ्चित्कर इत्युदाहरति—

सिद्धः श्रावणः शब्दः शब्दत्वात्[3] ॥ ३६ ॥

कथमस्याकिञ्चित्करत्वमित्याह—

किञ्चिदकरणात् ॥ ३७ ॥

पक्षैकदेशवृत्तिः सपक्षव्यापको यथाऽद्रव्याणि दिक्कालमनांस्यमूर्तत्वात्। सपक्षविपक्षव्यापकः पक्षैकदेशवृत्तिर्यथा पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशान्यऽनित्यान्यगंधवत्त्वात्। १ प्रमणान्तरात्साध्ये निर्णीते। २ न किञ्चित्करोतीत्यकिञ्चित्करः। ३ न—

अपरं च भेदं प्रथमस्य दृष्टान्तीकरणद्वारेणोदाहरति—

यथाऽनुष्णोऽग्निर्द्रव्यत्वादित्यादौ किञ्चित्कर्तुमशक्यत्वात् ॥ ३८ ॥

अकिञ्चित्करत्वमिति शेषः । अयं च दोषो हेतुलक्षणविचारावसर एव, न वादकाल इति व्यक्तीकुर्वन्नाह—

लक्षण[१] एवासौ[२] दोषो व्युत्पन्नप्रयोगस्य पक्षदोषेणैव[३] दुष्टत्वात् ॥ ३९ ॥

दृष्टान्तोऽन्वयव्यतिरेकभेदाद्द्विविध इत्युक्तं तत्रान्वयदृष्टान्ताभासमाह—

दृष्टान्ताभासा अन्वयेऽसिद्धसाध्यसाधनोभयाः ॥ ४० ॥

साध्यं च साधनं च उभयं च साध्यसाधनोभयानि असिद्धानि तानि येष्विति विग्रहः । एतानेकत्रैवानुमाने दर्शयति—

अपौरुषेयः शब्दोऽमूर्तत्वादिन्द्रियसुखपरमाणुघटवत् ॥ ४१ ॥

इन्द्रियसुखमसिद्धसाध्यं तस्य पौरुषेयत्वात् । परमाणुरसिद्धसाधनं तस्य मूर्तत्वात् । घटश्चासिद्धोभयः पौरुषेयत्वा-

---

ह्यसौ स्वसाध्यं साधयति तस्याध्यक्षादेव सिद्धेः । १ लक्षणव्युत्पादनशास्त्रे । २ अकिञ्चित्करलक्षणो दोषः । ३ पक्षाभासलक्षणेनैव । ४ इन्द्रियसुखे साधनत्वमस्ति साध्यत्वं नास्ति । ५ परमाणुषु साध्यत्वमस्ति साधनत्वं नास्ति तस्मात्साधनविकलोऽयं दृष्टान्तः । ६ घटे तूभयमपि नास्ति तस्मादुभ-

-मूर्तत्वाच्च । साध्यव्याप्तं साधनं दर्शनीयमिति दृष्टान्तावसरे प्रतिपादितं तद्विपरीतदर्शनमपि तदाभासमित्याह—

विपरीतान्वयश्च[1] यदपौरुषेयं तदमूर्तम् ॥ ४२ ॥

कुतोऽस्य तदाभासतेत्याह—

विद्युदादिनाऽतिप्रसङ्गात्[2] ॥ ४३ ॥

तस्याप्यमूर्तताप्राप्तेरित्यर्थः । व्यतिरेकोदाहरणाभासमाह—

व्यतिरेकेऽसिद्धतद्व्यतिरेकाः[3] परमाण्विन्द्रियसुखाकाशवत् ॥ ४४ ॥

अपौरुषेयः शब्दोऽमूर्तत्वादित्यत्रैवासिद्धाः साध्यसाधनोभयव्यतिरेका यत्रेति विग्रहः । तत्रासिद्धसाध्यव्यतिरेकः परमाणुस्तस्यापौरुषेयत्वात् इन्द्रियसुखमसिद्धसाधनव्यतिरेकम् । आकाशं त्वसिद्धोभयव्यतिरेकमिति । साध्याभावे साधनव्यावृत्तिरिति व्यतिरेकोदाहरणप्रघट्टके स्थापितं तत्र तद्विपरीतमपि तदाभासमित्युपदर्शयति—

विपरीतव्यतिरेकश्च यन्नामूर्तं[4] तन्नापौरुषेयम् ॥ ४५ ॥

बालव्युत्पत्त्यर्थं तत्त्रयोपगम इत्युक्तमिदानीं तान्प्रत्येव कि-

---

याविकलोयं दृष्टान्तः । १ विपरीतान्वयो व्याप्तिप्रदर्शनं यस्मिन्निति यथा योऽग्निमान्स धूमवानिति यथा । २ विद्युद्वनकुसुमादौ ह्यपौरुषेयत्वेप्यमूर्तत्वं नास्ति । ३ असिद्धस्तेषां साध्यसाधनोभयानां व्यतिरेको येषु ते । ४ यत्र

यद्धीनतायां प्रयोगाभासमाह—

बालप्रयोगाभासः पञ्चावयवेषु कियद्धीनता ॥ ४६ ॥[1]

तदेवोदाहरति—

अग्निमानयं देशो धूमवत्वात् यदित्थं तदित्थं यथा महानस इति ।

इत्यवयवत्रयप्रयोगे सतीत्यर्थः । चतुरवयवप्रयोगे तदाभासत्वमाह—

धूमवांश्चायमिति वा ॥ ४८ ॥

अवयवविपर्ययेऽपि[2] तत्त्वमाह[3]—

तस्मादग्निमान् धूमवांश्चायमिति ॥ ४९ ॥

कथमवयवविपर्यये प्रयोगाभास इत्यारेकायामाह—

स्पष्टतया प्रकृतप्रतिपत्तेरयोगात्[4] ॥ ५० ॥

इदानीमागमाभासमाह—

रागद्वेषमोहाक्रान्तपुरुषवचनाज्जातमागमाभासम् ॥ ५१ ॥

धूमवान् तस्मादग्निमानितिवत् । १ यो ह्यव्युत्पन्नप्रज्ञोऽनुमानप्रयोगे पञ्चावयवैव गृहीतसङ्केतः स उपनयनिगमनरहितस्य निगमनरहितस्य वानुमानप्रयोगस्य तदाभासतां मन्यते । सूत्रद्वयेन क्रमेण तदेव दर्शयति । २ न केवलं कियद्धीनतैव बालप्रयोगाभासः किन्तु तद्विपर्ययश्चेति प्रदर्श्यते । ३ बालप्रयोगाभासत्वम् । ४ केवलं बालव्युत्पत्त्यर्थमयं प्रयोगाभासो न पुनो व्युत्पन्नप्रज्ञं प्रति, सर्वप्रकारेण बालप्रयोगे व्युत्पन्नप्रज्ञस्य केनापि प्रकारेणाऽनुमान-

उदाहरणमाह—

यथा नद्यास्तीरे मोदकराशयः सन्ति, धावध्वं माणवकाः ॥ ५२ ॥

कश्चिन्माणवकैराकुलीकृतचेतास्तत्सङ्गपरिजिहीर्षया प्रतारणवाक्येन नद्या देशं तान् प्रस्थापयतीत्याप्तोक्तेरन्यत्वादागमाभासत्वम् । प्रथमोदाहरणमात्रेणातुष्यन्नुदाहरणान्तरमाह—

अङ्गुल्यग्रे हस्तियूथशतमास्त इति च ॥ ५३ ॥

अत्रापि सांख्यःस्वदुरागमजनितवासनाहितचेता दृष्टेष्टविरुद्धं सर्वं सर्वत्र विद्यत इति मन्यमानस्तथोपदिशतीत्यनाप्तवचनत्वादिदमपि तथेत्यर्थः । कथमनन्तरयोर्वाक्ययोस्तदाभासत्वमित्यारेकायामाह—

विसंवादात् ॥ ५४ ॥

अविसंवादरूपप्रमाणलक्षणाभावान्न तद्विशेषरूपमपीत्यर्थः । इदानीं संख्याभासमाह—

प्रत्यक्षमेवैकं प्रमाणमित्यादि संख्याभासम् ॥ ५५ ॥

प्रत्यक्षपरोक्षभेदात् द्वैविध्यमुक्तं तद्वैपरीत्येन प्रत्यक्षमेव, प्रत्यक्षानुमाने एवेत्याद्यवधारणं संख्याभासम् । प्रत्यक्षमेवैकमिति कथं संख्याभासमित्याह—

लौकायतिकस्य प्रत्यक्षतः परलोकादिनिषेधस्य

प्रयोगस्य ग्रहणसम्भवात् । १ प्रतिपन्नार्थविचलनं हि विसंवादो विपरीता॰

परबुद्ध्यादेश्चासिद्धेरतद्विषयत्वात् ॥ ५६ ॥

अतद्विषयत्वदत्यक्षाविषयत्वादित्यर्थः । शेषं सुगमम् । प्रपञ्चितमेवैतत्सङ्ख्याविप्रतिपत्तिनिराकरण इति नेह पुनरुच्यते । इतरवादिप्रमाणेयत्तावधारणमपि विघटत इति लौकायतिकदृष्टान्तद्वारेण तन्मतेऽपि सङ्ख्याभासमिति दर्शयति—

सौगतसांख्ययौगप्राभाकरजैमिनीयानां प्रत्यक्षानुमानागमोपमानार्थपत्त्यभावैरेकैकाधिकैर्व्याप्तिवत् ॥ ५७ ॥

यथा प्रत्यक्षादिभिरेकैकाधिकैर्व्याप्तिः प्रतिपत्तुं न शक्यते सौगतादिभिस्तथा प्रत्यक्षेण लौकायतिकैः परबुद्ध्यादिरपीत्यर्थः । अथ परबुद्ध्यादिप्रतिपत्तिः प्रत्यक्षेण माभूदस्मान्द्भविष्यतीत्याशङ्क्याह—

अनुमानादेस्तद्विषयत्वे प्रमाणान्तरत्वम् ॥ ५८ ॥

तच्छब्देन परबुद्ध्यादिरभिधीयते । अनुमानादेः परबुद्ध्यादिविषयत्वे प्रत्यक्षैकप्रमाणवादो हीयत इत्यर्थः । अत्रोदाहरणमाह—

तर्कस्येव व्याप्तिगोचरत्वे प्रमाणान्तरत्वमप्रमाणस्याव्यवस्थापकत्वात् ॥ ५९ ॥

सौगतादीनामिति शेषः किञ्च प्रत्यक्षैकप्रमाणवादिना प्रत्य-

र्थोपस्थापकप्रमाणावसेयः । १ लौकायतिकस्य प्रत्यक्षतः परलोकादिनिषेधस्य परबुद्ध्यादेश्च कुतोऽसिद्धिरित्याह । २ मते । ३ व्याप्तिर्न सिद्ध्यति

क्षाद्येकैकाधिकप्रमाणवादिभिश्च स्वसंवेदनेन्द्रियप्रत्यक्षभेदोऽनुमानादिभेदश्च प्रतिभासभेदेनैव वक्तव्यो गत्यन्तराभावात्। स च तद्भेदो लौकायतिकं प्रति प्रत्यक्षानुमानयोरितरेषां व्याप्तिज्ञानप्रत्यक्षादिप्रमाणेष्विति सर्वेषां प्रमाणसंख्या विघटते। तदेव दर्शयति—

प्रतिभासभेदस्य च भेदकत्वात् ॥ ६० ॥

इदानीं विषयाभासमुपदर्शयितुमाह—

विषयाभासः सामान्यं विशेषो द्वयं वा स्वतंत्रम् ॥ ६१ ॥

कथमेषां तदाभासतेत्याह—

तथाऽप्रतिभासनात्कार्याकरणाच्च ॥ ६२ ॥

किञ्च तदेकान्तात्मकं तत्त्वं स्वयं समर्थमसमर्थं वा कार्यकारि स्यात्? प्रथमपक्षे दूषणमाह—

समर्थस्य करणे सर्वदोत्पत्तिरनपेक्षत्वात् ॥ ६३ ॥

सहकारिसान्निध्यात् तत्करणान्नेति चेदत्राह—

परापेक्षणे परिणामित्वमन्यथा तदभावात् ॥ ६४ ॥

वियुक्तावस्थायामकुर्वतः सहकारिसमवधानवेलायां कार्य-

पूर्वोक्तप्रत्यक्षादिप्रमाणाविषयत्वात्तथा प्रकृतमपि। १ प्रतिभासभेदश्च। २ अस्तु प्रामाण्यमनुमानस्य किन्तु तत्प्रत्यक्षे एवान्तर्भविष्यतीत्युक्ते सत्याह। ३ ततः प्रत्यक्षेऽनुमानस्यान्तर्भावाभावः। ४ अन्योन्यनिरपेक्षम्। ५ केवलसामान्यतया केवलविशेषतया द्वयस्य स्वतंत्रतया वा। ६ परस्य। ७ अनपेक्षाकारपरित्यागेनापेक्षाकारेण परिणमनात्। ८ परानपेक्षे।

कारिणः पूर्वोत्तराकारपरिहारावाप्तिस्थितिलक्षणपरिणामोपपत्तेरित्यर्थः। अन्यथा कार्यकारणाभावात् । प्रागभावावस्थायामेवेत्यर्थः। अथ द्वितीयपक्षदोषमाह—

स्वयं समर्थस्य अकारकत्वात्पूर्ववत् ॥ ६५ ॥

अथ फलाभासं प्रकाशयन्नाह—

फलाभासं प्रमाणादभिन्नं भिन्नमेव वा ॥ ६६ ॥

कुतः पक्षद्वयेऽपि तदाभासतेत्याशङ्कायामाद्यपक्षे तदाभासत्वे हेतुमाह—

अभेदे तद्व्यवहारानुपपत्तेः ॥ ६७ ॥

फलमेव प्रमाणमेव वा भवेदिति भावः । व्यावृत्त्या संवृत्यपरनामधेयया तत्कल्पनाऽस्त्वित्याह—

व्यावृत्त्यापि न तत्कल्पना फलान्तराद्व्यावृत्त्याऽफलत्वप्रसङ्गात् ॥ ६८ ॥

अयमर्थः—यथा फलाद्विजातीयात् फलस्य व्यावृत्त्या फलव्यवहारस्तथा फलान्तरादपि सजातीयाद्व्यावृत्तिरप्यस्तीत्यफलत्वम् । अत्रैवाभेदपक्षे दृष्टान्तमाह—

प्रमाणाद्व्यावृत्त्येवाप्रमाणत्वस्येति ॥ ६९ ॥

---

१ कार्योत्पत्त्यभावात्सर्वं वस्तुजातं प्रागभावावस्थायामेव विद्यमानं स्यात् । २ सर्वथा । ३ तयोः प्रमाणफलयोः । ४ अफलाद्व्यावृत्तेः कथं यथा तथा फलान्तराद्व्यावृत्त्या भाव्यम् । तथा सति फलान्तराद्व्यावृत्तिः फलविशेषाद्व्यावृत्तिरित्यर्थः। ५ अफलत्वप्रसंगो गोर्व्यावृत्त्याऽगोत्वं भवति यथा ।

अत्रापि प्राक्तन्येव प्रक्रिया योजनीया। अभेदपक्षं निराकृत्य आचार्य उपसंहरति—

तस्माद्वास्तवो भेद[1] इति ॥७०॥

भेद[2]पक्षं दूषयन्नाह—

भेदे त्वात्मान्तरवत्त[3]दनुपपत्तेः ॥ ७१ ॥

अथ यत्रैवात्मनि प्रमाणं समवेतं फलमपि तत्रैव समवेतमिति समवायलक्षणप्रत्यासत्त्या प्रमाणफलव्यवस्थितिरिति, नात्मान्तरे त[4]त्प्रसङ्ग इति चेत्तदपि न सूक्तमित्याह—

समवायेऽतिप्रसङ्ग इति ॥ ७२ ॥

समवायस्य नित्यत्वाद्व्यापकत्वाच्च सर्वात्मनामपि समवायसमानधर्मिकत्वान्न ततः प्रतिनिय[5]म इत्यर्थः। इदानीं स्वपरपक्षसाधनदूषणव्यवस्थामुपदर्शयति—

प्रमाणतदाभासौ दुष्टतयोद्भावितौ परिहृतापरिहृतदोषौ वादिनः साधनतदाभासौ प्रतिवादिनो दूषणभूषणे च ॥ ७३ ॥

वादिना प्रमाणमुपन्यस्तं तच्च प्रतिवादिना दुष्टतयोद्भावितं पुनर्वादिना परिहृतं तदेव तस्य साधनं भवति प्रतिवादिनश्च

---

१ वास्तवभेदाभावे प्रमाणफलव्यवहारानुपपत्तेरिति। २ तर्हि सर्वथा भेदोऽस्त्विति शङ्कापनोदार्थमाह। ३ इदं फलमस्येति व्यवहाराभावात् फलानुत्पत्तेः ४ फलप्रसङ्गः। ५ इदं फलमस्यैव नान्यस्येति प्रतिनियमाभावः।

दूषणमिति। यदा तु वादिना प्रमाणाभासमुक्तं प्रतिवादिना तथैवोद्भावितं वादिना चापरिहृतं तदा तद्वादिनः साधनाभासो भवति प्रतिवादिनश्च भूषणमिति । अथोक्तप्रकारेणाशेष विप्रतिपत्तिनिराकरणद्वारेण प्रमाणत्वं स्वप्रतिज्ञातं परीक्ष्य नयादितत्वमन्यत्रोक्तमिति[1] दर्शयन्नाह —

सम्भवदन्यद्[2]विचार[3]णीयमिति ॥ ७४ ॥

सम्भवद्विद्यमानमन्यत्प्रमाणत्वान्नय[4]स्वरूपं शास्त्रान्तरप्रसिद्धं विचारणीयमिह[5] युक्त्या प्रपिपत्तव्यम् । तत्र मूलनयौ द्वौ द्रव्यार्थिक[6]पर्यायार्थिक[7]भेदात् । तत्र द्रव्यार्थिकस्त्रेधा नैगमसंग्रहव्यवहारभेदात् । पर्यायार्थिकश्चतुर्धा ऋजुसूत्रशब्दसमभिरूढैवम्भूतभेदात् । अन्योऽन्य[8]गुणप्रधान[9]भूतभेदाभेदप्ररूपणो नैगमः[10] । नैकं गमो नैगम इति निरुक्तेः । सर्वथाऽभेदवाद-

१ नयचक्रादौ । २ कथितात्प्रमाणतदाभासलक्षणादन्यन्नयनयाभासयोर्लक्षणं । ३ नयनिष्ठैः । ४ अनिराकृतप्रतिपक्षो वस्त्वंशग्राही ज्ञातुरभिप्रायो नय इति नयसामान्यलक्षणम् । ५ अस्मिन् शास्त्रे । ६ द्रव्यमेवार्थो विषयो यस्यास्ति स द्रव्यार्थिकः । ७ पर्याय एवार्थो यस्यास्त्यसौ पर्यायार्थिकः । ८ धर्मधर्मिणोः । ९ गौणमुख्यभावेन । १० यथा—जीवगुणः सुखमित्यत्र हि जीवस्याप्राधान्यं विशेषणत्वात्सुखस्य प्राधान्यं विशेष्यत्वात् । सुखी-जीव इत्यत्र तु जीवस्य प्राधान्यं विशेष्यत्वात्सुखस्याप्राधान्यं विशेषणत्वात् । अथवाऽनिष्पन्नार्थसङ्कल्पमात्रग्राही नैगमः । निगमो हि सङ्कल्पस्तत्र भवस्तत्प्रयोजनो वा नैगमः । यथा कश्चित्पुरुषो गृहीतकुठारो गच्छन् किमर्थं भव-

स्तदाभासः। प्रतिपक्षव्यपेक्षः सन्मात्रग्राही संग्रहः। ब्रह्मवाद-स्तदाभासः। सङ्ग्रहगृहीतभेदको व्यवहारः। काल्पनिको भेद-स्तदाभासः। शुद्धपर्यायग्राही प्रतिपक्षसापेक्ष ऋजुसूत्रः। क्षणिकैकान्तनयस्तदाभासः। कालकारकलिङ्गानां भेदाच्छब्दस्य कथञ्चिदर्थभेदकथनं शब्दनयः। अर्थभेदं विना शब्दानामेव नानात्वैकान्तस्तदाभासः। पर्यायभेदात्पदार्थनानात्वनिरूपकः समभिरूढः। पर्यायनानात्वमन्तरेणापीन्द्रादिभेदकथनं तदा-भासः। क्रियाश्रयेण भेदप्ररूपणमित्थम्भावः। क्रियानिरपेक्षत्वेन क्रियावाचकेषु काल्पनिको व्यवहारस्तदाभास इति। इति

न् गच्छतीति पृष्टः सन्नाह प्रस्थमानेतुमिति। न चासौ प्रस्थपर्यायसन्निहितः कि-न्तु तन्निष्पत्तये सङ्कल्पमात्रे प्रस्थव्यवहारात्। १ प्रतिपक्षसापेक्षः। २ सर्वं वै खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चनेत्यादिः सङ्ग्रहाभासः। ३ सङ्ग्रहनयग्रहीतानां विधिपूर्वको भेदकः यथा सद्द्रव्यं पर्यायो वेत्यादि। ४ द्रव्य पर्यायप्रविभागः। ५ वर्तमानमात्र। ६ भूतभविष्यतपर्याय। ७ ऋजु प्राञ्जलं वर्तमानक्षणमात्रं सूत्रयतीत्यृजुसूत्रमिति निरुक्तेः। यथा सुख-पर्यायः सम्प्रत्यस्ति। ८ बौद्धाभिमतसर्वथाक्षणिकवादस्तदाभासः। ९ शब्दनयो हि पर्यायशब्दभेदान्नार्थभेदमभिप्रैति कालादिभेदत एवार्थभेदाभि-प्रायादिति। अत्र तु भेदः पर्यायभेदादिति यथा शक्र इन्द्रः पुरन्दरः। १० यथा शकनक्रियायां सत्यामेव शक्रः, समभिरूढनये तु तस्यां सत्यामसत्यां वा तत्शब्दव्यवहारात्तथा रुढेः सद्भावात्। एतेषु ऋजुसूत्रान्ताश्चत्वारोऽर्थ-प्रधानाः शेषास्तु त्रयः शब्दप्रधानाः। ११ शक्रादिशब्देषु। एतेषु सर्वैक-

नयतदाभासलक्षणं संक्षेपेणोक्तं विस्तरेण नयचक्रात्प्रतिपत्तव्यम् । अथवा सम्भवद्विद्यमानमन्यद्वादलक्षणं पत्रलक्षणं वाऽन्यत्रोक्तमिह द्रष्टव्यं तथाचाह, समर्थवचनं वाद इति, प्रसिद्धावयवं वाक्यं स्वेष्टस्यार्थस्य साधकम् । साधुगूढपदप्रायं पत्रमाहुरनाकुलम् ॥ १ ॥ इति ॥

परीक्षामुखमादर्शं हेयोपादेयतत्त्वयोः ।
संविदे मादृशो बालः परीक्षादक्षवद्व्यधाम् ॥ १ ॥

येषु पूर्वः पूर्वो बहुविषयः कारणभूतश्च परः परोऽल्पविषयः कार्यभूतश्चेति । सङ्ग्रहनयान्नैगमो बहुविषयो भावाभावविषयत्वात् । यथैव हि सति सङ्कल्पस्तथाऽसत्यपि । सङ्ग्रहनयस्तु ततोल्पविषय सन्मात्रगोचरत्वात्, नैगमपूर्वकत्वाच्च तत्कार्यः । सङ्ग्रहाद्व्यवहारोऽपि तत्पूर्वकः सद्विशेषाववोधकत्वादल्पविषय एव । कालत्रितयवृत्त्यर्थगोचराद्व्यवहारादृजुसूत्रोऽपि तत्पूर्वको वर्तमानार्थगोचरतयाऽल्पविषय एव । कारकादिभेदेनाऽभिन्नमर्थं प्रतिपाद्यमानादृजुसूत्रतस्तत्पूर्वकः शब्दनयोप्यल्पविषय एव तद्विपरीतार्थगोचरत्वात् । शब्दनयात्पर्यायभेदेनार्थाभेदं प्रतिपाद्यमानात्तद्विपर्ययात्तत्पूर्वकः समभिरूढोऽप्यल्पविषय एव । समभिरूढतश्च क्रियाभेदेन भिन्नमर्थं प्रकटयतस्तद्विपर्ययात्तत्पूर्वक एवम्भूतोप्यल्पविषय एव । यत्रोत्तरोत्तरो नयोऽर्थांशे प्रवर्तते तत्र पूर्वः पूर्वो नयो वर्तत एव, यथा सहस्रे सप्तशती तस्यां वा पञ्चशती । १ वादस्य चत्वार्यङ्गानि सभ्यसभापतिवादिप्रतिवादिनः । २ पदानि त्रायन्ते गोप्यन्ते रक्ष्यन्ते परेभ्यः (प्रतिवादिभ्यः) स्वयं विजिगीषुणा यस्मिन्वाक्ये तत्पत्रमिति पत्रस्य व्युत्पत्त्यर्थः । ३ पत्रपरीक्षादौ । ४ अवाधितम् ।

व्यधाम् कृतवानस्मि । किमर्थं ? संविदे[1] । कस्य ? अहं च कथंभूत इत्याह बालो मन्दमतिः । अनौद्धत्यसूचकं वचनमेतत् । तत्त्वतस्त्वञ्च प्रारब्धनिर्वहणादेवावसीयते । किं तत् ? परीक्षामुखम् । तदेव निरूपयति आदर्शमिति । कयोः ? हेयोपादेयतत्वयोः । यथैवादर्श आत्मनोऽलङ्कारमण्डितस्य सौरूप्यं वैरूप्यं वा प्रतिबिम्बोपदर्शनद्वारेण सूचयति तथेदमपि हेयोपादेयतत्त्वं साधनदूषणोपदर्शनद्वारेण निश्चाययतीत्यादर्शत्वेन निरूप्यते । क इव ? परीक्षादक्षवत् परीक्षादक्ष इव, यथा परीक्षादक्षः स्वप्रारब्धशास्त्रं निरूढवाँस्तथाऽहमपीत्यर्थः ॥

अकलङ्कशशाङ्कैर्यत्प्रकटीकृतमखिलमाननिभानिकरम् ।
तत्संक्षिप्तं सूरिभिरुरुमतिभिर्व्यक्तमेतेन ॥ १ ॥

इति परीक्षामुखलघुवृत्तौ प्रमाणाद्याभाससमुद्देशः षष्ठः ॥ ६ ॥

श्रीमान् वैजेयनामाभूदग्रणीर्गुणशालिनाम् ।
वदरीपालवंशालिव्योमद्युमणिरूर्जितः ॥ १ ॥

तदीयपत्नी भुविविश्रुतासी-
न्नाणाम्बनाम्ना गुणशीलसीमा ।
यां रेवतीति प्रथिताम्बिकेति
प्रभावतीति प्रवदन्ति सन्तः ॥ २ ॥

---

१ संज्ञानाय ।

तस्यामभूद्विश्वजनीनवृत्तिर्दानाम्बुवाहो भुवि हीरपाख्यः ।
स्वगोत्रविस्तारनभोंऽशुमाली सम्यक्त्वरत्नाभरणार्चिताङ्गः ॥ ३

तस्योपरोधवशतो विशदोरुकीर्ते-
र्माणिक्यनन्दिकृतशास्त्रमगाधबोधम् ।
स्पष्टीकृतं कतिपयैर्वचनैरुदारै-
र्बालप्रबोधकरमेतदनन्तवीर्यैः ॥ ४ ॥

इति प्रमेयरत्नमालापरनामधेया परीक्षामुखलघुवृत्तिः समाप्ता ॥

आवश्यक सूचना

यह निश्चित है कि बनारस सर्व विद्याओं की विशेष कर संस्कृत विद्या की खनि है। यहां पर जितनी सरलता से ग्रन्थ सम्बन्धी कोई भी कार्य थोड़े में हो सकता है उतना अच्छा कार्य दूसरी जगह बहुत अधिक खर्च कर करने पर भी नहीं हो सकता है। इसलिये जिन महाशयों को संस्कृत या हिन्दी सम्बन्धी कोई भी कार्य कराना हो वे हमारे द्वारा करवा सकते हैं।

फूलचन्द्र जैन शास्त्री।
भदैनी बनारस।

सटिप्पणी प्रमेयरत्नमाला मिलने का पता

१ सिं० दरयावसिंह सिलावन पो० महरौनी (झांसी)

२ पं० भैयालाल जैन क्षेत्रपाल ललितपुर (झांसी)

३ संपादक या प्रकाशक बल्देवदास म्यू० क० की धर्मशाला
भदैनी घाट बनारस।